युगपुरुष राम

लेखक
अक्षयकुमार जैन

भूमिका-लेखक
जैनेन्द्रकुमार

प्रकाशक की ओर से
सादर सम्मत्यर्थ

१९५४
आत्माराम एण्ड संस
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता
कश्मीरी गेट
दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट, दिल्ली ६

मूल्य चार रुपये

मुद्रक
नेशनल प्रिंटिंग वर्क्स
दरियागंज, दिल्ली

प्रकाशक की ओर से

सादर सम्मत्यर्थ

भूमिका

राम भारतीय परम्परा के मूर्धन्स्थ पुरुष हैं। जिन दो ध्रुवों के बीच भारतीय संस्कृति इतिहास को चुनौती देती हुई आज तक अविच्छिन्न और अक्षुण्ण बनी रही है—वे हैं राम और कृष्ण। भारत ने उन्हें ऐतिहासिक से शाश्वतिक और नर से नारायण बना देखा है। उसके राम अमुक देश और युग से जड़ित नहीं रह गए हैं; वह घट-घट में रमे हुए मर्यादा-पुरुषोत्तम के प्रतीक हो गए हैं। हर युग को अवकाश है कि वह अपनी आकांक्षा-अभिलाषाओं को उनमें सम्पूर्ण बना देखे। इस तरह युग-युग में भक्तों और कवियों ने राम-चरित्र को नव-नवीन संस्करण दिए हैं। वह राम इस तरह जातीय आदर्श हो गए हैं, जिनमें हर पीढ़ी अपनी ओर से कुछ-न-कुछ जोड़ती चली गई है। भूगोल और इतिहास से वह अतीत हैं और मानो मानव-संदर्भ तक से उत्तीर्ण हैं।

हमारा यह भारत देश इसी मानवोत्तर और लोकोत्तर रूप में राम को देखता और भजता आया है। यह रूप विविध है और उसमें नए-नए आविष्कारों के लिए अनन्त अवकाश है।

लेखक ने युगपुरुष राम को—परम्परागत रूप में तो लिया ही है, साथ ही अपनी व्यक्तिगत कल्पना और स्पृहा से भी उसे मंडित किया है। यह अनुकूल ही है और अध्यारोप का कोई दोष इसमें नहीं देखा जा सकता। कारण, लेखक और पाठक की आस्था अभंग रहती है। विशेषकर दो स्थलों पर अक्षयकुमारजी ने नई उद्भावना से काम लिया है। कैकेयी के राम-बनवास का वर माँगने में भरत-प्रेम से अधिक राम-प्रेम ही कारण दिखाया गया है। सूझ यह नई है और मार्मिक है। इसी भाँति रावण में राक्षस की जगह मनीषी मर्यादाशील विद्वान को देखा गया है। कैकेयी और रावण का इन दोनों भूमिकाओं में समीचीन निर्वाह हुआ है और लेखक के लिए यह बधाई की बात है।

पुस्तक में रामचरित्र के स्फुट प्रसंग हैं। वे समय का अन्तराल देकर लिखे गए हैं और उनमें निश्चित अनुक्रम नहीं है। किन्तु कुल मिलाकर

चरित्रों का अच्छा परिपाक हुआ है। यद्यपि जगह-जगह पर इच्छा होती है कि यहाँ दृश्य को विशदता मिली होती और तूलिका कुछ रुककर विरामता के साथ चली होती तो छटा और भर आती।

रामचरित्र के प्रेमियों के लिए पुस्तक विशेषतः उपादेय हो, हिंदी-साहित्य के लिए भी मूल्यवान् अनुदान समझी जायगी।

ऋषिभवन, दिल्ली। **जैनेन्द्रकुमार**
२३-१२-५३

प्रस्तावना

भगवान् राम पर कुछ लिखना हर भारतीय के लिये गौरव की बात है। और जैसा कि आदरणीय श्री मैथिलीशरण गुप्त ने अपने साकेत के प्रारम्भ में लिखा—

"राम तुम्हारा चरित स्वयं ही काव्य है,
कोई कवि बन जाय सहज सम्भाव्य है।"

राम की कथा लिखकर तो कोई भी लेखक बन सकता है। इसलिये अपनी लघुता का भान होते हुए भी मुझे इन पंक्तियों से सम्बल मिला। इस "युगपुरुष राम" को उपन्यास भी कहा जा सकता है क्योंकि इस में राम-जन्म से पूर्व से लगाकर उनके परमधाम को जाने तक की कथा वर्णित है। वैसे हर परिच्छेद अपने में एक पूर्ण कहानी है। और पाठकों को वह कहानी-संग्रह भी लग सकता है।

इस कथा में एक लेखक के नाते मैंने थोड़ी स्वतंत्रता बरती है, यद्यपि मूल कथा में कोई विशेष अन्तर नहीं है। ऋषि वाल्मीकि की रामायण, तुलसी का रामचरितमानस, कम्ब रामायण और श्री मैथिलीशरण का साकेत मुझे प्राप्त हैं और मैं उनका अध्ययन कर सका। इस पुस्तक की कथा में इन सबका समावेश हो सकता है। वैसे कथा के जो उपेक्षित स्थल मुझे अच्छे लगे, कल्पना के आधार पर उन्हें मैंने लिख डालने का यत्न किया है। इसलिये मेरा यह निवेदन है कि पाठकों को जो कुछ इसमें से अच्छा लगे उसका श्रेय उपरोक्त ऋषि, सन्त और कवियों को है और जो अरुचिकर है वह मेरी लघुता की निशानी है।

जैसा कि मैंने स्वीकार किया कुछ स्वतंत्रता मैंने बरती है, इसी कारण कथा के प्रवाह के लिये कुछ चरित्रों का निर्माण भी मैंने किया। भुवनेश्वर, चन्द्र, अनन्त, बच्छराज, अपाप, जयदेव, माधवी, प्रधान, भास्कर और दिनकर इसी प्रकार के काल्पनिक व्यक्ति हैं। अयोध्या के श्याम-लोद्यान तथा शाद्वलोद्यान और अजेय बैल भी मेरी कल्पना की उपज हैं।

यह मैं इसलिये बता देना चाहता हूँ कि इन चरित्रों को किसी ग्रन्थ में खोजने का कष्ट पाठक न करें। हाँ, इस पुस्तक में रावण महापंडित हैं और महारानी कैकेयी छोटी माता। उनमें निर्बलताएँ हैं पर महत्ता भी कम नहीं।

इस पुस्तक की कुछ कहानियाँ दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'नव-भारत टाइम्स' दैनिक पत्र में धारावाहिक रूप से हर सोमवार को प्रकाशित हुई थीं। उस समय पाठकों की ओर से जो पत्र मुझे प्राप्त हुए उनसे मुझे ऐसा लगा कि यदि इन सबको पुस्तकाकार कर दिया जाय तो अच्छा होगा। उन्हीं दिनों आत्माराम एण्ड संस के संचालक श्री रामलाल पुरी ने मुझ से इन्हें प्रकाशित करने के लिये माँगा तो मुझे प्रसन्नता हुई कि जो मेरी इच्छा थी वह पूर्ण हो जायगी। आदरणीय श्री जैनेन्द्रकुमार ने पुस्तक की भूमिका लिखने की कृपा की है। उनके प्रति आभार प्रदर्शित करने की हिम्मत मैं न कर सकूँगा।

पुस्तक जैसी बन पड़ी आपके सामने है, इससे अधिक मुझे कुछ नहीं कहना।

ता० ३०-१२-१९५३
नवभारत टाइम्स,
१० दरियागंज, दिल्ली।

अक्षयकुमार जैन

शीर्षक-सूची

: १ :

राम-जन्म से पूर्व

अयोध्या के निकट ही एक कृषि-घेर में सायंकाल होते ही कृषि-कर्मचारी और वृद्ध भुवनेश्वर आकर एक अलाव के निकट बैठ गये हैं। अलाव में से सुगन्धयुक्त धूम निकल रहा है और थोड़ी-थोड़ी जल रही अग्नि ने आस-पास के वातावरण को गर्म कर रखा है।

एक कर्मचारी ने उत्सुकतापूर्वक वृद्ध भुवनेश्वर से प्रश्न किया—

"महाभाग ! सुना है महाराज दशरथ कोई पुत्रेष्टि यज्ञ करने जा रहे हैं ?"

भुवनेश्वर—"ठीक ही है बंधु, ऋष्यश्रृंग को कई चतुर उपायों द्वारा आने के लिये तैयार किया जा चुका है और अब सन्देह ही क्या रह गया है युवराज होने में ?"

कर्मचारी—"यह तो ठीक है तात, पर महाराज को अभी से उत्तराधिकारी की चिन्ता क्यों व्याप्त हो गई ?"

भुवनेश्वर—"भैया यह सब राजकाज की बातें हैं। एक दिन दर्पण में कहीं महाराज को कानों के निकट श्वेत रोम दिखाई दे गये तो उन्हें चिन्ता हो निकली कि वयस्कता बढ़ती जा रही है और युवराज का पदार्पण अभी तक नहीं हुआ। और वैसे भी तो वह घर ही क्या जिसमें बालमूर्ति न हो ?"

कर्मचारी—"महाभाग ! इतने राजवैद्य और इतने विशाल साधन फिर भी महाराज को यज्ञ की आवश्यकता पड़ गई ?"

भुवनेश्वर—"तुम तो खोज-खोजकर प्रश्न कर रहे हो। यह तो स्वाभाविक ही है कि जब सन्तान न हुई तो यज्ञ किया जाय। वैसे भी तो कोई धार्मिक अनुष्ठान करना कर्मजाल को नष्ट करता है।"

कर्मचारी—"मेरा सन्तोष नहीं हुआ। बड़ी महारानी कौशल्या, सुमित्रा और कैकेयी की कुक्ष जो अब तक निष्क्रिय थीं यज्ञ से कैसे चल निकलेंगी ?"

भुवनेश्वर—"पुत्र ! तुम नहीं जानते, प्रार्थना और भावना से क्या सम्भव नहीं है। श्रवणकुमार की कथा उस दिन हमने तुम्हें सुनाई थी। उस शाप से त्रस्त महाराज दशरथ युवावस्था में पुत्र-प्राप्ति की कामना भी नहीं करते थे तथा एक कारण और भी था—पर क्या करोगे यह सब तुम जानकर, कोई और चर्चा छेड़नी चाहिए।"

कर्मचारी—"यदि यह चर्चा अप्रिय हो तो जो आज्ञा, किन्तु आपन यह कहकर उत्सुकता और बढ़ा दी कि एक कारण और भी था। तात, कम-से-कम वह कारण तो बता ही दीजिये।"

भुवनेश्वर—"मेरी आयु सौ को पार कर चुकी, किन्तु तुम लोगों के साथ रहने से अभी भी मन से युवा ही हूँ। मुझे वह समय याद है जब

महाराज दशरथ प्रथम बार स्वयंवर में जाकर महारानी कौशल्या का बरण करके लाये थे। कितनी धूम मची थी इस अयोध्या में। मैं उन दिनों राज्य कृषि-घेर में वास करता था और हम सब को नये परिधान, धनुष-वाण और न जाने क्या-क्या भेंट प्राप्त हुई थीं। हाँ, तो संभवतः महाराज के लौटने पर उत्सव हो ही रहे थे कि एक उपाध्याय ने महाराज को एक अप्रिय बात बता दी। उन्होंने कहा कि महारानी कौशल्या की अभी और बहिन आने को है। फिर क्या था रघुकुल की रीति का प्रभाव हो गया। महाराज का भाव महारानी की ओर से कुछ अटपटा-सा हो गया। हमारा तो अनुमान है कि महारानी कौशल्या के शयन कक्ष में महाराज का पदार्पण भी हुआ या नहीं यह भी कहना कठिन है।"

सब लोग—"अच्छा महाभाग!"

भुवनेश्वर—"इतना ही नहीं महारानी सुमित्रा का स्वयंवर हुआ। महाराज ने उन्हें भी वरण कर लिया। ठीक महारानी कौशल्या की भाँति वे ही उपाध्याय अकस्मात् फिर आ गये और उत्सव-समारोह समाप्त भी न हुआ था कि उन्होंने फिर कह दिया कि महारानी कौशल्या की तरह महारानी सुमित्रा की भी अभी एक बहिन और रनिवास में आने को है। महाराज का चित्त फिर खिन्न हो गया।"

सब एक साथ साश्चर्य—"ओह हो!"

भुवनेश्वर—"इसीलिये मेरे भाइयो, जब महाराज को पता चला कि कैकेय राज्य में स्वयंवर होने वाला है तो उन्होंने सदलबल वहाँ की यात्रा की और शेष सब आप जानते ही हैं कि किस प्रकार कैकेयी अयोध्या के राजभवन में सबसे अधिक प्रभावशाली महिषी रही हैं।"

कर्मचारी—"अच्छा तात, यह तो ठीक है, पर फिर महारानी कैकेयी के सन्तान क्यों न हुई?" भुवनेश्वर इस सम्बन्ध में बातें करते-करते थक गये थे, उन्होंने कहा—"यह हमें क्या मालूम? हाँ, इतना हम भलीभाँति जानते हैं कि महाराज सायंकाल के बाद से नवपरिणीता के कक्ष से बाहर नहीं निकलते थे।"

कर्मचारी—"तब तो सन्तान का न होना एक समस्या हो गया"...

भुवनेश्वर खिन्न से होकर बीच ही में बोल पड़े—"प्राकृतिक नियमों

की अवहेलना भी तो सन्तानोत्पत्ति में बाधक हो जाया करती है।"

पास ही बैठे एक बालक ने जो इस प्रकार की कथा में अधिक रस न ले रहा था कहा—"बाबा दादा की बात से रुष्ट हो गये जान पड़ते हैं। अच्छा अब आप मुझसे बातें कीजिये।"

भुवनेश्वर के चेहरे पर फिर प्रसन्नता दौड़ गई, वे बोले—"चन्द्र, तुम्हारे दादा की बात से हम रुष्ट नहीं हुए। देखो, अयोध्या के राजभवन में एक वृहद यज्ञ होने जा रहा है, हम तुम सब को उसमें ले चलेंगे।"

कर्मचारी—"महाभाग कभी रुष्ट नहीं होते चन्द्र। तुम बहुत दिनों से अपनी माता से नगर जाने की इच्छा प्रकट किया करते हो, अब बाबा के साथ शीघ्र ही चलेंगे।" भुवनेश्वर से—"तात, हम सब भी चलेंगे न, आपने अभी-अभी सबके चलने की बात कही थी।"

भुवनेश्वर—"हाँ, हाँ चलना भाई, पर शीघ्र ही हमें कार्तिकी का धान्य घेर में ले आना है। क्या यह सम्भव होगा?"

कर्मचारी—"इसका दायित्व मुझ पर छोड़ दीजिये। प्रभु की कृपा और आपके आशीर्वाद से अधिकांश काम तो समाप्त हो ही चुका है।"

रघुकुल के राज्य-परिवार की इतनी बातों पर वृद्ध भुवनेश्वर के वहाँ से जाते ही विभिन्न प्रकार की चर्चाएँ चल पड़ीं। सबकी कामना यज्ञ में जाने की उत्कट रूप से हो गई और रात्रि के द्वितीय प्रहर के आगमन के साथ ही सब लोग उठकर अपने-अपने निवास की ओर चल पड़े।

: २ :

त्रेता के महामानव का जन्म

पुत्रेष्टि यज्ञ समाप्त हो गया। और अब ऋषिराज श्रृंग ने खड़े होकर महाराज दशरथ को यज्ञ-शेष प्रदान किया। इस महान् फल को महाराज ने अपनी तीनों महारानियों को प्रदान किया, उस समय यज्ञशाला में घोर जयनाद हुआ। भला ऋष्य श्रृंग स्वयं आचार्य हों और यज्ञ सफल न हो, यह हो भी कैसे सकता है, विभिन्न प्रकार की चर्चायें यज्ञशाला में इधर-उधर हो रही हैं।

भुवनेश्वर और उनके साथी कर्मकर तथा उनके परिकर उस महान् यज्ञ के आयोजन को देखकर ही भूले भूले से हो रहे हैं। उनमें से चन्द्र उत्सुकता संवरण न कर सका, बोला—"तात, अब क्या होगा ? हम जो अपनी यज्ञशाला में प्रतिदिन होम करते हैं उसमें तो इस प्रकार का यज्ञ-शेष कभी प्राप्त नहीं होता ?"

भुवनेश्वर—"चन्द्र ! हमारे यहाँ जो यज्ञ होता है क्या उसमें यही हव्य-पदार्थ होते हैं जो यहां पर व्यवहार किये गये हैं ? अरे भैया, जिस भावना और पदार्थों से यज्ञ किया जाता है उससे वैसा ही फल प्राप्त होता है, और अब होने को शेष ही क्या रह गया है। यज्ञ-शेष को महारानियां ग्रहण करेंगी तो उनके सूर्य और चन्द्र जैसे पुत्र जन्म लेंगे।"

चन्द्र—"महाभाग, हम किस प्रकार का यज्ञ किया करते हैं ?"

भुवनेश्वर—"अरे हमारे यज्ञ से जो पदार्थ भस्म होकर धूम रूप में आकाश में व्याप्त होते हैं उनमें इस प्रकार के पर्जन्य बनते हैं कि जब उनसे वृष्टि होती है तो हमारे यवों के लहलहाते खेत उनसे शक्ति और धी को समृद्धि करने वाले गुण ग्रहण करते हैं। उन्हीं यवों को हम खाते हैं और तुम देख ही रहे हो कि मैं आज इस जरायु में भी तुम्हारे साथ यहाँ आ गया हूँ।"

बातचीत हो रही थी कि कुछ राज्य-कर्मचारी नैवेद्य और परिधानों के थाल लेकर आ पहुँचे और उन्होंने विनय-पूर्वक भुवनेश्वर से अपने साथियों सहित महाराज दशरथ की ओर से प्रस्तुत की जाने वाली भेंट ग्रहण करने का निवेदन किया। भुवनेश्वर को उस समय दशरथ के विवाह का स्मरण हो आया।

इसी भाँति कुछ समय तक यज्ञशाला में भेंट अर्पण का कार्य चलता रहा कि तभी मंत्री सुमंत्र ने घोषणा की—"पूज्यपाद आचार्य, अन्य साधु-गण एवं उपस्थितम हाजनो! महाराज दशरथ कुछ कहना चाहते हैं, अतः आप महानुभाव अपने-अपने आसनों पर विराजने की कृपा कीजिये।"

महाराज दशरथ ने भाषण प्रारम्भ किया—"पूज्य आचार्य एवं उपस्थित महानुभावो! भगवान् की परम अनुकम्पा और आपके आशीर्वाद से आज एक महान् आयोजन सम्पन्न हो गया। चिरकाल से हमारी यह कामना थी कि एक महान् यज्ञ का आयोजन किया जाय और उससे रघु-कुल की वृद्धि के लिये आपके आशीर्वाद ग्रहण किये जायें। आप सबने हम पर महान अनुग्रह किया, उसके लिये मैं अति आभारी हूँ। वास्तव में हमारे विश्वासानुसार और धार्मिक रूप से भी सन्तान की आवश्यकता है। एक विकट अभाव मुझे अनुभव होता रहा है उसकी पूर्ति आज आचार्यश्री के इस महान् आशीर्वाद से पूर्ण हुई। निकट भविष्य में ही फिर हमें आपको आमन्त्रित करने का सुअवसर प्राप्त हो, यही कामना है।"

मंत्री सुमंत्र बोले—"जिस अभाव के कारण महाराज निरन्तर आकुलता अनुभव करते थे, वह भगवान् की कृपा से शीघ्र दूर हो जायगा

ऐसी निश्चित आशा है। इस महान् आयोजन में अनेक भूलें हमसे हो जाना सम्भव है, मुझे आशा ही नहीं विश्वास है आप हमें अति अल्पज्ञ समझकर क्षमा करेंगे। आज सायंकाल को ही एक समारोह की व्यवस्था की जा रही है, उसमें परिचय सम्मेलन भी होगा। हमें आशा है कि आप उसमें पधारकर हमें कृतार्थ करेंगे।"

यज्ञ-समाप्ति के एक मास बाद ही राजभवन से समाचार प्राप्त हुए कि महारानियों को विचित्र-विचित्र प्रकार के स्वप्न दिखाई देने लगे हैं। राज्य के ज्योतिषियों को आमन्त्रित किया गया। प्रधान परिचारिका ने बताया—"महारानी कौशल्या को देवविमान, मंगल-कलश दिखाई दे रहे हैं। महारानी सुमित्रा को देवदूत, सूर्य और युगल अमृतघट दीख रहे हैं तथा महारानी कैकेई को पुष्प एवं फलों के उद्यान दिखाई दे रहे हैं।"

ज्योतिषियों ने महाराज दशरथ की सभा में गणित करके बताया कि महाराज शीघ्र ही पुत्रवान् होने वाले हैं और महारानी सुमित्रा के युगल अमृतघट का तात्पर्य यह भी हो सकता है कि वे युगल पुत्रवती हों।

महाराज दशरथ को ये भविष्यवाणियाँ सुनकर एक अभूतपूर्व आनन्द और उल्लास प्राप्त हुआ। राज्य की ओर से पुरस्कार और भेंट वितरण करने का आदेश दे दिया गया। अयोध्या में एक नई आभा जागृत हो रही है। घर-घर मंगल गान हो रहे हैं मानो राजपुत्र उनके अपने आत्मज ही होने वाले हों।

कुछ समय और व्यतीत हुआ। स्वप्न और भविष्यवाणियाँ, भले ही लगभग एक-सी ही होती हैं किन्तु महाराज दशरथ प्रतिदिन ही सपरिषद् उसे सुनने को उत्सुक रहते हैं। आशा की जा रही है कि श्यामलोद्यान प्रवास से महारानियों के लौटते ही सम्भवतः वह शुभ संवाद सुनने को मिल जायगा जिसके लिये न जाने कब से प्रतीक्षा की जा रही है।

अन्त में महारानियों की श्यामलोद्यान से वापसी हुई और रनिवास को प्रसूति-ग्रह में परिवर्तित किया गया। अनेक प्रकार के फल, पुष्प और मेवाएँ एकत्र की गईं। मलयागिर से चन्दन के पौधे मंगाये गये। कदली पत्रों की वाटिका सजा दी गई। सिंदूर और गुलाल से द्वारों पर चित्रकारी कर दी गई। वातावरण मानो जन्म से पूर्व एक साथ सुन्दर बना

दिया गया।

प्रसव-वेदना की प्रथम सूचना महाराज दशरथ को प्राप्त हो गई और वे अपने विचार-कक्ष में स्थिर बैठने योग्य न रह गये। अयोध्या-वासियों को भी मानो शुभ संवाद की गंध मिल गई और देखते-ही-देखते भीड़ की भीड़ राजप्रासाद के सिंहद्वार पर एकत्र हो गई।

और वह घड़ी आ पहुँची जब राजमहल से शंख और तूर्य की ध्वनि का घोष सुनाई दिया। सुसमाचार यह गाकर दिया गया कि त्रेतायुग के महामानव ने जन्म ले लिया। पूजा स्थानों में प्रार्थनाएँ होने लगीं। हर मुख पर आनन्द छा गया।

अयोध्या के घर-घर में उत्सव हो निकले। बधाइयाँ गाई जाने लगीं। महाराज दशरथ की प्रसन्नता का पारावार कहाँ ?

× × ×

अयोध्या के निकट गाँव में भुवनेश्वर के कृषि-घेर में युवराज के जन्म की सूचना पहुँच गई जान पड़ती है। वहां पर दिन को होली और रात को दिवाली-सी मनाने का आयोजन हो रहा है। वृद्ध भुवनेश्वर ने समस्त कर्मकरों की इच्छानुसार उत्सव मनाने और उसमें स्वयं सपरिवार सम्मिलित होने का आदेश दे दिया है।

आज जम्बू द्वीप में ही नहीं ब्रह्माण्ड के कोने-कोने में राम-जन्म की खुशियाँ मनाई जा रही हैं। देवताओं में एक संतोष की लहर दौड़ गई है कि अब संसार से अनैतिकता और अनाचार समाप्त हो जायगा।

घर-घर बाजे आज बधाई !

: ३ :

ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में

विश्वामित्री नदी के किनारे ऋषिराज विश्वामित्र के आश्रमवासी स्थान-स्थान पर सामयिक में संलग्न हैं। कोई संध्या करके होम में व्यस्त है तो कोई स्नान करके अभी धार्मिक क्रियाओं को प्रारम्भ ही करने जा रहा है। एक आतंक के वातावरण में मानों हर कोई खिन्न हो और किसी प्रत्याशित भय से अपनी सामयिक शीघ्र ही समाप्त कर लेना चाहता हो।

कुछ ही देर में चारों ओर चिल्लाहट का शब्द गूंजने लगा। सामयिक करने वाले ब्रह्मचारी तथा अन्य उदासीन वृत्ति के लोग एक साथ उठ पड़े और सब मिलकर विश्वामित्र के पास चल दिये।

ब्रह्मचारी अनन्त का सीधा हाथ क्षत हो रहा है, उसमें से रक्तस्राव हो रहा है, आपस में धीरे धीरे चर्चाएँ भी जारी हैं। एक वृद्ध साधु ने कहा––"आखिर कब तक यह अत्याचार होते रहेंगे। अब तो अति हो गई है। गुरुदेव की आज्ञा प्राप्त कर हम सबको राज्याश्रय प्राप्त करना चाहिए।"

अनन्त––"राज्याश्रय? भूल गये, अभी कुछ समय पहले ही तो गुरुदेव ने कहा था कि जल्दबाजी न करो, समय पर सब कार्य हो जायेंगे।"

साधु––"पर ब्रह्मचारी श्रेष्ठ, वह समय हमारे जीवन काल में भी आवेगा कि नहीं, प्रश्न तो यह है कि कितने वर्ष व्यतीत हो गये। असुरों

के अत्याचार दिनोंदिन बढ़ते ही जा रहे हैं ।"

अनन्त—"देख नहीं रहे महाराज, मेरा दाहिना कर कितना क्षत हो रहा है । मैं आज ऋषिवर से यही पूछ लेना चाहता हूँ कि हम लोगों की मुक्ति का कभी समय आवेगा भी या नहीं ।"

साधु—"अब तो धैर्य समाप्त होता जा रहा है । कुछ-न-कुछ किया ही जाना चाहिए ।"

कुछ लोग एक साथ बोल पड़े—"आज तो गुरुदेव को कुछ निश्चयात्मक निर्णय कर ही लेना चाहिए ।"

बातचीत करते-करते लोग ऋषि विश्वामित्र की कुटिया पर पहुँच गये । अभी-अभी ऋषि सामयिक से निवृत्त होकर फलाहार करने बैठे हैं और सुन्दर कदलीफल, सीताफल एवं सुचिक्कन बेर आदि फल उनके सम्मुख पलाश पत्रों पर रखे हुए हैं ।

भीड़ को सामने आते देखकर अन्य आश्रमवासी भी आ गये और क्षतविक्षत ब्रह्मचारियों और साधुओं की ओर देखकर विश्वामित्र बोले—"अनन्त ! आहतों और आतुरों को चिकित्सालय में ले जाओ और स्वयं भी वस्त्र वेष्टन करालो, तब मेरे पास आना कुछ आवश्यक काम है ।"

उत्तेजित अनन्त तथा अन्य ब्रह्मचारी स्तब्ध रह गये । और दिन कम-से-कम गुरुदेव सान्त्वना के दो शब्द तो कह देते थे, पर आज सीधे ही चिकित्सालय के आदेश से उपस्थित आश्रमवासियों को निराशा हुई । चलते-चलते अनन्त ने अति विनम्र स्वर में कहा—"प्रभु ! आज तो कुछ निर्णय आपको करना ही होगा । हम लोगों के दैन्य की पराकाष्ठा हो गई, यह तो मैं कैसे कहूँ कि असुरों ने सीमा पार कर दी है ।"

विश्वामित्र—"यही तो आयुष्यमान, इसी कारण से तो तुम्हें वस्त्र-वेष्टन के बाद बुलाने की बात कही थी । आज निर्णय अवश्य हो जायगा । पहले निवृत्त होकर आओ तो ।"

कुछ ही देर में आहत हाथ पैरों में पट्टी बँधवाकर लौट आये । आज बात पहले ऋषिराज ने ही प्रारम्भ की—"आप लोगों को प्रतिदिन इस प्रकार आहत होते देखकर मेरा हृदय निरंतर आहत होता रहता है । पर हर पाप की एक सीमा होती है । जब तक सीमा पार नहीं होती उसका

समय नहीं आता और अब हमें लगता है कि वह अवसर आ गया।" वे कुछ काल के लिये मौन हुए कि अनन्त ने कहा—

"देव ! हम सबका विचार है कि अब हम राज्याश्रय की याचना करें। आपके आदेश की प्रतीक्षा है ।"

विश्वामित्र—"अनन्त, हमें आवेश में नहीं आना चाहिए। धैर्यपूर्वक व्यवस्था करनी होगी वरना जानते हो हम लोगों की स्थिति आज दाँतों के बीच जिह्वा जैसी है ।"

अनन्त—"गुरुवर, धैर्य रखते-रखते तो यह दशा हो गई है कि कुछ कहा नहीं जा सकता । आश्रम के निकट वाले कृषि-घर में कल ही सोम की माता और भगिनी के साथ अत्यन्त असभ्य दुर्व्यवहार किया गया । उनके सिरों में चोटें आई हैं और पीठ तो नीली पड़ी हुई है । वैद्य का कहना है कि कम-से-कम तीन पक्ष से कम समय उनके उठने बैठने योग्य होने में न लगेगा ? क्या राज्य का यह कर्त्तव्य नहीं कि वह अपने प्रजाजनों की रक्षा करे ? आप भी तो सदा सुराज्य के गुण बताते हुए यही कहा करते हैं ।"

विश्वामित्र—"कहा न अनन्त कि हर कार्य के होने का समय होता है । हमारे महाराज दशरथ ठीक है बड़े उदार और कर्त्तव्य-परायण हैं, किन्तु वे जम्बू द्वीप के संगठित असुरों से लोहा ले सकेंगे ऐसा हम नहीं समझते । अतः वर्तमान में जो थोड़ी बहुत शांति नाम मात्र की है वह भी नष्ट हो जायगी ।"

अनन्त—"तब प्रभु हम कब तक प्रतीक्षा करते रहें ?"

विश्वामित्र—"अब अधिक प्रतीक्षा का समय नहीं रहा। याद है, जब राजपुत्रों के जन्म के शुभावसर पर तुम लोग अयोध्या गये थे, उसी दिन हमने कह दिया था कि इस काल का महामानव आ गया। अब असुरों का समय अधिक दिन नहीं चल सकता। जिस प्रकार रात्रि के अंतिम क्षणों में दीप की लौ बुझने से पूर्व चमक देने लगती है ठीक वैसे ही राक्षसी वृत्ति के मनुष्यों पर अत्याचार बढ़ गये हैं ।"

अनन्त—"तो गुरुदेव, राजपुत्रों की तो अभी किशोर वय है, उनसे अभी निकट भविष्य में कोई आशा कैसे की जाय ?"

विश्वामित्र—"तुम नहीं जानते अनन्त ! राम नाम के उस महापुरुष

का जन्म इसी निमित्त हुआ है। मेरे इन नेत्रों से देखो। आह कैसा सौभाग्य है हमारा कि वे शीघ्र ही यहाँ आ जायेंगे।"

अनन्त ने मिश्रित उत्सुकता और आनन्द के साथ कहा—"क्या कहा गुरुदेव, वे हमारे यहाँ आ जायेंगे? यह भी क्या सम्भव है?"

विश्वामित्र—"क्यों नहीं अनन्त! राजा का कर्त्तव्य है कि वह अपनी प्रजा की रक्षा करे। उन्हें राजपुत्रों को इस आश्रम में भेजने में कोई द्विविधा न होगी, इसका हमें पूरा विश्वास है।"

अनन्त—"पर गुरुदेव! उनकी शिक्षा-दीक्षा?"

विश्वामित्र—"हाँ हाँ, किसी भी राजपुत्र के लिए इस आश्रम में शिक्षा पाना गर्व की बात होगी। और फिर राम को तो यहाँ आना ही होगा, अनन्त।"

अनन्त—"व्रणों का कष्ट जाता रहा। आप शीघ्र ही उन्हें लाने की व्यवस्था कीजिए न गुरुदेव।"

विश्वामित्र—"जल्दी का कोई कारण नहीं अनन्त। सब कार्य ठीक नियमानुसार ही हो रहे हैं। राम को जन्म ही यहाँ आने के लिए लेना पड़ा है। उसमें और कुछ है ही नहीं।"

अनन्त—"तो फिर गुरुदेव अयोध्या कब प्रस्थान कर रहे हैं? उसी के अनुसार व्यवस्था कर दी जाय। किसी प्रकार महाराज दशरथ से शीघ्र-से-शीघ्र याचना की जानी चाहिए।"

विश्वामित्र—"अनन्त! तुम्हारे बुद्धि और विवेक को आज क्या हो रहा है? विश्वामित्र ने आज तक किसी से याचना नहीं की। उसने जो कुछ प्राप्त किया है अपने तपोबल से ही किया है। दशरथ अपने पुत्रों को इस आश्रम में भेजकर अपने आपको धन्य मानेंगे। कहो कि विश्वामित्र उन पर कब कृपा करने जा रहा है।" कुछ ठहरकर वे बोले—"अनन्त! इसी पूर्णिमा के बाद द्वितीया को हम अयोध्या के लिए प्रस्थान करेंगे।"

ऋषिराज के मुख मंडल की आभा द्विगुणित हो रही है। उनके ललाट की ओर देखकर अनन्त तथा अन्य आश्रमवासी कुछ कहना चाहते हुए भी मौन रह गये और प्रणाम कर के लौट गये।

: ४ :

अयोध्या में विश्वामित्र का आगमन

किशोर राजपुत्रों के बीच महाराज दशरथ चिंताओं से दूर शाद्वलोद्यान में कन्दुक से खेल खेल रहे हैं। राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न मिलकर कन्दुक के पीछे स्वयं भाग रहे हैं और महाराज को भी भगा रहे हैं कि मुख्य प्रतिहारी ने आकर सूचना दी—"महाप्रभु! तपोवन से राजर्षि विश्वामित्र अपने कुछ शिष्यों सहित पधारे हैं और राज्य के अतिथिभवन में उनका स्वागत किया जा चुका है। आतिथ्याधिकारी ने अनुचर को देव की सेवा में भेजा है कि मैं निवेदन करूँ कि राजर्षि की इच्छा महाराज से शीघ्र साक्षात्कार करने की है।"

दशरथ—खेल में व्यस्त रहते हुए ही बोले—"कौन ऋषिराज विश्वामित्र का शुभागमन हुआ है। रघुकुल के धन्यभाग कि उनके चरणों की धूलि से अयोध्या के राजभवन पावन हुए।"

कुछ देर आदेश की प्रतीक्षा के बाद प्रतिहारी ने पुनः निवेदन किया—"महाराज! दास आदेश की प्रतीक्षा में है।"

दशरथ—"ऋषिराज और उनके आश्रमवासियों के ठहरने की समुचित व्यवस्था कर दी गई कि नहीं?"

खेल में शिथिलता आई।

प्रतिहारी ने कहा—"महाभाग! व्यवस्था कर दी गई है। किन्तु

अनुचर तो राजर्षि के प्रभु से साक्षात्कार के सम्बन्ध में आदेश का प्रार्थी है ।"

दशरथ—"हाँ, हाँ, क्यों कुमारो, हम ऋषिराज के दर्शन करने चले जायँ न ?"

राम ही बोले—"तात, हमें भी साथ ले चलिए न ।"

दशरथ—"अच्छा, तुम सब भी साथ चलो। प्रतिहारी ऋषिराज को हमारा दंडवत् निवेदन करो। हम तुरन्त ही आतिथ्यालय में आ रहे हैं।"

प्रतिहारी के कुछ ही पीछे महाराज दशरथ राजकुमारों सहित अतिथि-भवन की ओर चल पड़े ।

अतिथि-भवन में महाराज के आगमन की सूचना प्रतिहारी ने पहले ही से दे दी थी क्योंकि मुख्य विशाल कक्ष में ही ऋषिराज एवं उनके शिष्य विराजमान हैं। महाराज दशरथ ने पहुँचते ही ऋषिराज को साष्टांग दण्डवत् किया और उनके शिष्यों को भी प्रणाम किया। पिता की देखा-देखी राजकुमारों ने भी दण्डवत् किया। ऋषि विश्वामि त्रने बड़े स्नेह से अपना वरद हस्त राजकुमार राम के सिर पर रखा और कुछ पलों को उनके पलक बन्द हो गये ।

सब से पहले महाराज दशरथ ने कुशल-क्षेम पूछी और औपचारिक बातचीत के बाद ऋषिराज से उन्होंने कृपा करने का कारण पूछा—

"मुनिवर! रघुकुल के सौभाग्य का कारण है कि उसे आप जैसे महान् ऋषि के चरण-स्पर्श का सुअवसर प्राप्त हुआ। ये बालक आपके सामने हैं। हम सब इनके लिए आपके आशिष वचनों के आकांक्षी हैं।"

ऋषि—"राजन्! रघुकुल के लिए सदैव ही हमारे हृदय से आशिष निकलते रहते हैं। और फिर राजकुमार राम के के लिए तो विशेष रूप से हम लोगों के हृदय में शुभेच्छाएँ और सद्भावनाएँ हैं ।"

दशरथ—"आपकी इस भावना के लिए अति आभारी हूँ। गुरुदेव! दशरथ आपका हर आदेश पालन करने के लिए प्रस्तुत है। आपने इन कुमारों को आशीर्वाद देकर मुझे कृतकृत्य कर दिया है।"

ऋषि विश्वामित्र भी यही चाहते हैं कि दशरथ स्वयं पूछे कि वे क्यों

आए हैं, उन्हें स्वयं कुछ न कहना पड़े। वे बोले—"राजन्! अपने मन्त्रियों से पूछो कि तपोवन में रहने वाले व्यक्तियों की आज क्या दशा हो गई है? अब तो भगवान् का नाम लेना तक कठिन हो गया है।"

दशरथ—"याद पड़ता है, कुछ समय पूर्व आसुरी वृत्तिवाले लोगों के आतंक के सम्बन्ध में कुछ चर्चा विचार-कक्ष में हुई थी। आदेश दीजिए मुनिवर! अयोध्या का हर भट आश्रमवासियों की रक्षार्थ अपने रक्त का अन्तिम बिन्दु तक बहा देने में सौभाग्य मानेगा।"

विश्वामित्र—"राजन्! यदि अयोध्या की सेना इतनी सक्षम होती तो विश्वामित्र को यहाँ आने की आवश्यकता न होती। सेना के बस के बाहर की बात हो गई है अब।"

दशरथ—"मुनिवर! आठों मन्त्री, महानायक एवं नायक समस्त बलाधिकृत कल सूर्योदय से पूर्व ही अत्याचारियों से मुक्ति के लिए अभियान करेंगे..."

विश्वामित्र—"कौशलेश! हमें खेद के साथ कहना पड़ता है कि बात अब उनकी शक्ति से बाहर हो चली है।"

दशरथ कुछ देर गम्भीर होकर मौन रह गये और फिर निर्णयात्मक स्वर में उन्होंने कहा—"जम्बू द्वीप के समस्त राजाओं को शीघ्रातिशीघ्र आमन्त्रित करके हम ऐसी योजना बनाने में सफल होंगे कि आसुरी वृत्ति का नाश कर दिया जाय। इस सम्बन्ध में बिलकुल दिनदेरी न की जायगी मुनिवर!"

किन्तु ऋषिराज के ललाट पर फैली चिन्ताओं की रेखायें दूर न हुईं उन्होंने कहा—"राजन्! बहुत विचार करके हम यह कहने को तत्पर हैं कि आपकी यह योजना भी सफल न होगी। क्या आप नहीं जानते कि आपके पड़ोस में मधुपुर (मथुरा) के अधिपति का प्रच्छन्नरूप से अत्याचारियों को समर्थन प्राप्त है? दक्षिण की ओर तो वे लोग अपना ही राज समझते हैं। जम्बू द्वीप के कितने राज्य ऐसे निकलेंगे जो आपके सम्मेलन में भाग लेने का साहस कर सकेंगे। आतंक की आँधियों ने अच्छे जनों के नेत्र भी बन्द कर दिये हैं।"

दशरथ—"ऋषिवर! अब आप ही प्रकाश दीजिए। क्या किया

जाय ?"

विश्वामित्र--"इसीलिए तो राजन्, विश्वामित्र को अयोध्या आना पड़ा है। यदि वास्तव में अत्याचारियों से प्रजा की रक्षा की भावना तीव्र हो रही हो तो हम उपाय बतलायें ?"

दशरथ--"मुनिवर ! निर्देश दीजिए, हम उसका पालन अवश्य करेंगे।"

विश्वामित्र--"राजन् ! प्रजा की रक्षा करना राजा का कर्त्तव्य होता है। हमें पूर्णाशा और विश्वास है कि रघु की संतति अपना कर्त्तव्य पालन करने में समर्थ होगी। यदि कर्त्तव्य-पालन में कुछ त्याग करना पड़े और असुविधा हो तो महाजन उसकी परवाह नहीं करते..."

दशरथ--"देव ! आदेश दीजिए। रघु की सन्तति अपना कर्त्तव्य-पालन करने में कोई कसर उठा न रखेगी।"

विश्वामित्र--"तो सुनो राजन् ! जो कार्य तुम्हारी सेना बलाधिकृत, जम्बू द्वीप के अधिपति और स्वयं तुम नहीं कर सकते उसे तुम्हारे ये राजकुमार कर देंगे। हमारा आना इसीलिए हुआ है, हम राम को तुमसे मांगने आये हैं।"

दशरथ--"मुनिराज ! राम को ?"

: ५ :

विश्वामित्र के आश्रम की ओर प्रस्थान

मुनीश्वर विश्वामित्र के कथन से कि वे राम और लक्ष्मण को लेने के निमित्त ही अयोध्या आये हैं महाराज दशरथ चिंतातुर हो गये। उनके मुख पर विषाद की रेखायें झलक आई। उन्हें लक्ष्य कर विश्वामित्र बोले—"राजन्! अभी तुमने अपने राजपुत्रों को पहचाना नहीं है। जम्बू द्वीप के संकट दूर करने के लिये ही मुनियों की प्रार्थना पर उन्होंने नर रूप धारण किया है। अधिक विचार में न पड़ो, हमारी बात मान लो।"

दशरथ—"मुनिवर! आपने यथार्थ ही कहा है। तपस्या से ही ऐसे कुमारों के दर्शन का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ है। आपके आदेश की

अवहेलना करने की सामर्थ्य भी मुझ में नहीं। कुमारों को वयस प्राप्त होने दीजिये···"

विश्वामित्र—"राजन् ! वे वयस्कों से वयस्क और बलवानों से बलवान हैं। जिस कार्य को तुम्हारी हमारी शक्ति नहीं कर सकती वह इनके द्वारा ही सम्पन्न होगा।"

दशरथ—"ऋषिराज ! आपके मुख से यह सुनकर आश्चर्य होना स्वाभाविक है कि आप स्वयं जो करने में असमर्थ हैं उन्हें यह बालक पूरा कर देंगे।"

विश्वामित्र—"राजन्, तुमने बड़ी बात कह दी है। हमारा तप सब कुछ करने में समर्थ है। ब्रह्मतेज क्या नहीं कर सकता ? यदि इसी क्षण चाहूँ तो ब्रह्मांड को भस्म कर दूँ, किन्तु क्या ब्रह्मतेज को सांसारिक कार्यों में समाप्त कर दिया जाय ?"

दशरथ—"क्षमाभिलाषी हूँ महाराज ! मेरा यह तात्पर्य कभी न था। आप अपने तपोबल से क्या नहीं कर सकते ? पर इन बालकों की सुकुमारता की ओर देखिये और जंगलों के विकट जीवन को।"

विश्वामित्र—"राजन्, यह हम सब देख चुके। अब अधिक समय नष्ट करने से कोई लाभ नहीं। हम तुम्हारा 'हाँ' और 'ना' में ही उत्तर सुनना चाहेंगे।"

दशरथ मुनिवर के इन वाक्यों से विचलित हो गये। उन्होंने अति नम्रता से कहा—"मुनिराज, अन्यथा न समझें। क्या रात्रि भर का अवसर भी मुझे नहीं दिया जा सकता ?"

संभवतः विश्वामित्र कुछ क्रोधपूर्ण वाक्य कहने जा रहे थे कि अनन्त ने शीघ्र ही निकट पहुँचकर धीरे से कहा—"गुरुवर ! हम लोग भी विश्राम कर लेंगे। अयोध्यापति को प्रातःकाल तक विचार कर लेने दीजिये।" विश्वामित्र ने भी संभवतः कुछ सोचा और बोले—"अच्छा, तुम्हारी यही इच्छा है तो प्रातः ही सही। किंतु हम कल राज-आतिथ्य ग्रहण न करेंगे और तुम्हारा उत्तर सुनकर आश्रम की ओर प्रस्थान कर जायेंगे।"

दशरथ दंडवत् कर लौटे तो उनके दोनों हाथ राम और लक्ष्मण के

सिर पर पहुँच गये। एक बार उनके मस्तिष्क में आया कि क्या इतने दिनों के लिये ही राजपुत्रों का सुख हुआ है। चलते-चलते उन्होंने पूछा—"ऋषिवर! इस वयस में पिता होने का सौभाग्य एक ऋषिराज की अनुकम्पा से प्राप्त हुआ है। क्या शेष रहे थोड़े से जीवन में इन बालकों को देखने का अवसर प्राप्त हो जायेगा ?"

विश्वामित्र का स्वर कोमल हो गया। पिता के हृदय की भावना ने उनके आवेश पर शीतल जल का कार्य किया। बोले—"राजन्! हम राजकुमारों को शिक्षा देने के लिये तुमसे माँग ले जा रहे हैं। उनकी शिक्षा के दिनों में ही हमारी इच्छा पूर्ण हो जायेगी और वे अन्य ब्रह्मचारियों की भाँति आश्रम से लौट सकेंगे। आखिर उनकी शिक्षा-दीक्षा के लिये भी तो उन्हें कहीं आश्रम में भेजते, बस यही समझ लो। रात भर और विचार कर लो राजन्, पर प्रातःकाल के प्रकाश के साथ स्वयं भी प्रकाशित हो जाओगे, हमें यह विश्वास है।"

राजपुत्रों ने भी झुककर प्रणाम किया, और आशिष वचन कहते हुए विश्वामित्र के नेत्र फिर बन्द हो गये।

दशरथ के मन पर से बहुत बड़ा पत्थर हट गया किन्तु फिर भी अभी वे यह कल्पना नहीं कर पा रहे थे कि राम और लक्ष्मण—उनकी आँखों के दो तारे—कल प्रातःकाल, शिक्षा के लिये ही सही, उनकी आँखों से ओझल हो जायेंगे। शिथिल पगों से वे शयनकक्ष की ओर लौट आये।

पर तभी प्रतिहारी की बुलाहट हुई—"प्रतिहारी!"

"आज्ञा महाराज!"

दशरथ—"गुरुदेव वशिष्ठ को इसी समय हमारा प्रणाम कहो।"

प्रतिहारी—"जो आज्ञा महाराज!"

प्रतिहारी के जाने के बाद महाराज स्थिर न रह सके और स्वयं भी चल पड़े। सायंकालीन प्रार्थना आदि से निवृत्त होकर गुरु वशिष्ठ अपनी ग्रंथ रचना में लगे ही थे कि प्रतिहारी ने महाराज का प्रणाम कहा और साथ ही महाराज दशरथ ने प्रवेश किया—"गुरुवर को प्रणाम करने इस कुवेला में स्वयं दशरथ को चला आना पड़ा। कुछ विशेष कारण ने बाध्य कर दिया। तनिक देर के लिये गुरुवर बाहर आने का कष्ट

कीजियेगा क्या ?"

वशिष्ठ—"ऐसा कारण जो महाराज को इस समय यहाँ ले आया विशेष अवश्य होगा। चलिये उद्यान की ओर चलें।"

और दोनों उद्यान की ओर चल पड़े। चलते-चलते ही दशरथ बोले—"अयोध्या और हमारा सबका परम सौभाग्य है कि ऋषिराज विश्वामित्र सदलबल यहाँ पधारे हैं।"

वशिष्ठ—"कुछ ही पल पूर्व मुझे यह समाचार प्राप्त हुआ है। मैं गत चार दिन से कृषि-घेर की ओर चला गया था, इसी सायंकाल लौटा हूँ। उनकी सेवा आदि की समुचित व्यवस्था हो गई होगी ऐसी पूर्ण आशा है। किस कारण हुआ मुनिवर का आगमन ?"

दशरथ—"यही तो गुरुवर, इधर धार्मिक वृत्तिवालों पर असुरों के उपसर्ग के समाचार मिल रहे थे, उनकी अति हो गई है। मुनिवर का पदार्पण उसी निमित्त हुआ है।" राजकुमारों के लिवा ले जाने की बात महाराज के मुख से एक साथ न निकल पाई।

वशिष्ठ—"उन्हें राज्याश्रय उपलब्ध होना चाहिए, यह ठीक ही है। महाराज ने अनुकूल आदेश जारी कर दिये हैं क्या ?"

दशरथ—"यही तो समस्या है कि मुनिराज अयोध्या की सेना, बलाधिकृत की स्वयं उपस्थिति और यहाँ तक कि हमारा स्वयं का जाना भी पर्याप्त नहीं मानते।"

वशिष्ठ—"तब उनकी इच्छा क्या है ?"

दशरथ—"वे राम और लक्ष्मण को लेने आये हैं··"

कुछ समय के लिये सन्नाटा छा गया। वशिष्ठ बोले—"राजकुमारों की शिक्षा का समय है। यदि ऋषि विश्वामित्र के आश्रम में वे शिक्षा प्राप्त करें तो इससे परम सौभाग्य की बात और क्या हो सकती है ?"

दशरथ—"ठीक यही बात शब्दों के हेर-फेर से स्वयं मुनिवर ने भी कही। पर गुरुदेव, मेरा मन बड़ा व्याकुल होता है। आपका क्या परामर्श है ?"

वशिष्ठ—"मेरी सम्मति में तो महाराज इससे अच्छा अवसर और क्या होगा कि स्वयं ऋषिराज इसी कार्य के लिये पधारे हैं।"

दशरथ—"यह तो सब ठीक है किन्तु क्या राम और लक्ष्मण कुछ काल बाद न जा सकेंगे ?"

वशिष्ठ—"महाराज ! राम इस आयु में भी विष्णु के समान हैं और लक्ष्मण शेष नाग के। महाराज परम सौभाग्यशाली हैं कि ऐसे महा-मानवों के वे जनक बने हैं। वास्तविक बात यह है कि जो कुछ हो रहा है वह सब एक नियम के अनुसार ही हो रहा है। ऋषिराज का अयोध्या में आगमन भी उसी का अंग है।"

दशरथ फिर भी मौन रहे।

वशिष्ठ—"आप महाभागी हैं महाराज कि स्वयं मुनि विश्वामित्र उस कार्य के लिए आ पहुँचे हैं जो स्वयं आपको ही करना था।"

महाराज का हृदय हल्का पड़ गया। उन्हें कोई शंका न रही। अब उनके पग स्वतः फिर आतिथ्यशाला की ओर बढ़ चले। वहाँ पर मानो मुनिवर उन्हीं की प्रतिक्षा में बैठे थे। "आ गये राजन् ! हमें पूर्ण विश्वास था कि प्रातःकाल से पूर्व ही आपका सुनिर्णय हो जायगा।"

दशरथ—"क्षमाप्रार्थी हूँ मुनिराज, मैंने उसी क्षण क्यों न यह चरण स्पर्श कर लिये। क्या कुछ दिनों अब अनुचर को सेवा का अवसर यहाँ न दीजियेगा ?"

विश्वामित्र—"साधुवाद राजन् ! तुमने रघुकुल की रीति का पूर्णरूपेण पालन किया है। तुम धन्य हो कि तुम राम-लक्ष्मण के पिता हो। तुम्हारी अयोध्या धन्य है कि यहाँ पर राम बाल-क्रीड़ा कर रहे हैं। कल प्रातः तो हम विदा लेंगे, किन्तु जब तुम्हारी इच्छा होगी हम पुनः आ जायेंगे।"

दंडवत्-प्रणाम कर दशरथ प्रफुल्लित मन से शयन-कक्ष की ओर लौट रहे थे, किन्तु हृदय में अब भी कहीं एक टीस छिपी बैठी थी।
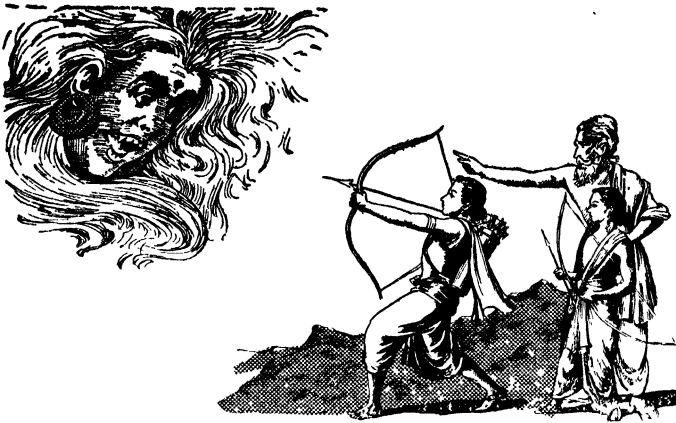
: ६ :

संकट-मोचन राम चले आश्रम को

किशोर वयस के राजकुमार राम और लक्ष्मण आज ऋषि विश्वामित्र के साथ उनके आश्रम को जा रहे हैं। अयोध्या के इस छोर से उस छोर तक विदा का वातावरण छाया हुआ है।

राजभवन में राजबधुएँ आरती के थाल सँजोए अपने कक्षों से बाहर निकल आई हैं, पर महाराजा दशरथ अभी तक विदा-समय के लिये अपने आपको तैयार करने में लगे हैं।

घड़ी आ पहुँची और दोनों राजकुमार विदा लेने के लिये रनिवास में पहुँचे। सबसे पहले माता कैकेयी ने दोनों कुमारों का तिलक किया और स्नेह के अश्रुकण उनकी आँखों से झर गये।

उनके बाद माता कौशल्या ने टीके लगाये और हिचकी-सी बँध गई। सबके पीछे सकुची-सी माता सुमित्रा आगे आईं और दोनों कुमारों को अंक में भरकर उन्होंने अपने उस बोझ को हल्का करने का यत्न किया जो कल सायंकाल से ही उनके कलेजे पर रखा हुआ था।

आशिष वचन किसी माता के श्रीमुख से न निकल सके। मौन नेत्रों ने आशीर्वाद दिया और कोमल हाथ सिरों पर फिर गये। जब राजकुमार चरण स्पर्श कर आगे बढ़े तो एक साथ ही तीनों माताओं के मुख से ये शब्द निकल पड़े —"जल्दी आ जाना··"

कुमार आगे बढ़ गये और उनके पीछे माताओं के पग स्वत: चल पड़े, पर रनिवास का द्वार आ गया और एक बार मुड़कर कुमारों ने फिर पीछे देखा, प्रणाम किया और चल पड़े। दृश्य में थोड़ी करुणा आ गई।

सामने से महाराज दशरथ अन्य दोनों कुमारों के साथ आ रहे थे। राम और लक्ष्मण ने उन्हें प्रणाम किया और आगे आकर चरण छुए। महाराज दशरथ ने आशीर्वाद मौन रूप से ही दिया और उन्हें साथ लेकर उस भवन की ओर चल पड़े जहाँ ऋषिराज विश्वामित्र अपने शिष्यों सहित अयोध्या के उच्चाधिकारियों के साथ विदा की प्रतीक्षा में विद्यमान थे।

महाराज दशरथ ने पहले मुनिराज को दण्डवत् किया, फिर ब्रह्मचारियों को और फिर गुरु वशिष्ठ को। उन्होंने मन्त्रिवर सुमंत्र की ओर देखा और नियमानुसार बहुत से वस्त्र, फल और मेवे उनके सामने प्रस्तुत कर दिये गये जिन्हें स्वयं अपने हाथ में ग्रहण कर महाराज दशरथ ने मुनिराज विश्वामित्र से स्वीकार करने का निवेदन किया।

विश्वामित्र बोले—"राजन्, जो हमें चाहिए था वह प्राप्त हो गया, इस सबकी अब क्या आवश्यकता है ?"

दशरथ—"प्रभु, अयोध्या की तुच्छ भेंट तो आपको स्वीकार करनी ही चाहिए।"

अधिक वार्तालाप न हुआ और विश्वामित्र ने भेंट स्वीकार कर ली। और तभी उन्होंने प्रस्थान की इच्छा प्रकट की।

महाराज दशरथ ने ऋषिवर और उनके शिष्यों को प्रणाम किया। राम-लक्ष्मण को हृदय से लगाया पर आँखों में पानी न आने दिया। नेत्रों का गीला होना क्षत्रिय को अपनी प्रतिष्ठा के अनुकूल न लगा।

राम और लक्ष्मण को सम्बोधन करके विश्वामित्र बोले—"चलो कुमार, अब कुछ समय हमारे साथ रहने को राजभवन त्याग दो। तपोवन का आनन्द भी तो एक बार लो।"

दोनों राजकुमारों ने गुरु वशिष्ठ को दण्डवत् किया, पिता के पैर छुए और श्रद्धा भरे नेत्रों से मन्त्री सुमंत्र की ओर देखा। दशरथ बोल कुछ न सके, पर वशिष्ठजी बोले—"राजकुमारो! आप शिक्षा-दीक्षा के लिये ऋषिराज के आश्रम को जा रहे हो। हम सबकी कामना है कि आप

रघुकुल और अयोध्या के सूर्य बनो ।"

विश्वामित्र ने बात बीच में ही काट दी। बोले—"रघुकुल और अयोध्या ही क्यों जम्बू द्वीप और अखिल विश्व के कहिए ।"

धीरे-धीरे सब राजभवन से बाहर निकल आये और मुनिराज विश्वामित्र के पीछे-पीछे चल पड़े । अयोध्या नगर की सीमा तक भीड़ की भीड़ साथ चली और राजकुमार राम ने प्रथम बार कहा—"अब आप अधिक कष्ट न कीजिए । आप लोगों के आशीर्वाद के संबल पर हम दोनों भाई शिक्षा-प्राप्ति के लिये मुनीश्वर के चरणों में बैठकर हर प्रकार के विद्याध्ययन में संलग्न रहेंगे ।" पश्चात् उन्होंने हाथ जोड़कर सबको अभिवादन किया।

न चाहते हुए भी भीड़ वहीं खड़ी रह गई और तपोवन जाने वाला दल आगे बढ़ गया ।

आगे चलते-चलते मार्ग के स्थानों से विश्वामित्र कुमारों का परिचय कराने लगे और सायंकाल होते-होते एक ऐसे स्थान पर पहुँचे जहाँ पर ताटका नाम की राक्षसी का बोलबाला था ।

विकराल शब्द और नाद हो निकला पर किशोर कुमारों के मुख पर किसी प्रकार के भय के चिह्न दृष्टिगोचर न हुए। मुनिवर ने राम की पीठ थपथपाते हुए कहा—"वत्स धनुष का प्रयोग जानते हो ?"

राम—"हाँ गुरुवर, कुछ-कुछ जानता हूँ ।"

विश्वामित्र—"तो देखो, वह सामने से जो स्त्री रूपधारी राक्षसी चली आ रही है उसे लक्ष्य मानकर बाण चलाओ ।"

राम—"गुरुदेव, किसी को मारना क्या अच्छा होता है ?"

विश्वामित्र—"राजकुमार ! यह बेचारी सम्भवतः यह नहीं जानती कि उसका मुक्तिदाता आ पहुँचा है । राम ! तुम्हारे करों से ही उसका उद्धार होना है ।"

राम—"आपका हर आदेश शिरोधार्य करने से ही कर्त्तव्य-पालन होगा, पर गुरुदेव, क्या वास्तव में किसी को मारना बुरा काम नहीं ?"

विश्वामित्र—"जिस प्रकार किसी के विषैले फोड़े को चीरने से उसे शांति पहुँचाई जा सकती है, ठीक उसी भाँति इसे मारने से ही इसे मुक्ति प्राप्त होगी । शल्यक्रिया के समय व्यक्ति को कष्ट होता है उसी प्रकार का

कष्ट इस ताटका नामक राक्षसी को होगा।"

राम को संतोष हो गया क्योंकि तुरन्त ही उन्होंने प्रत्यंचा चढ़ाली और कब बाण निकला और कब लगा यह निमिष भर में हो गया। राक्षसी को ज्ञान हुआ। उसे अपने दुष्कृत्यों पर पश्चात्ताप हो निकला और मृत्यु की कामना उसे हो गई ; उस मृत्यु से जिससे वह मुक्त हो गई।

जो कुछ सन्देह राम के हृदय में था वह दूर हो गया।

: ७ :

मारीच, सुबाहु और अहल्या का उद्धार

ताटका के उद्धार के पश्चात् श्रीराम को विश्वास हो गया कि आसुरी-वृत्ति का नाश किये बिना धर्म की प्रभावना नहीं बढ़ सकेगी। अतः अपनी शिक्षा में उन्होंने आयुधों का प्रयोग विशेष रूप से प्रारम्भ कर दिया।

इधर मारीच और सुबाहु नाम के राक्षसों के अत्याचार दिन-दिन

बढ़ने लगे तो एक दिन सायंकाल मुनि विश्वामित्र बोले—"राजकुमार ! ताटका की मुक्ति करके आपने एक मार्ग पर पग बढ़ा दिया है । आज अपराह्न में मारीच द्वारा त्रस्त अनेक आबाल-वृद्ध नर-नारी आश्रम में आये थे । वे प्रार्थी थे कि आप मारीच और सुबाहु दोनों का संहार कर उन्हें सद्गति प्रदान करें जिससे प्रजाजन को सन्तोष हो ।"

राम—"गुरुवर ! में आश्वस्त हूँ कि धर्म की प्रभावना के लिये आपके आदेशानुसार मैंने जिस मार्ग का अवलम्बन किया है उसी को अपनाया जाय। कल प्रातःकाल आपकी इस नई आज्ञा का पालन करने का यत्न करूँगा ।"

विश्वामित्र—"यत्न न कहो राम ! तुम जो कुछ भी करोगे उसमें यश प्राप्त होगा। मारीच और सुबाहु की मुक्ति का समय आ पहुँचा है।"

और प्रातःकाल राम के बाण से आहत हो मारीच पक्षी की भाँति उछलता शांत समुद्र में जा गिरा । प्रजाजनों ने घोर शब्द द्वारा जयजय-कार किया । उस समय यही भान हुआ कि मारीच की मुक्ति हो गई किन्तु सागर के जल ने उसे कुछ ही समय में नीरोग कर दिया और वह इस ओर आने की बजाय दक्षिण की ओर भाग गया ।

सुबाहु का तो तत्काल की प्राणांत हो गया और अन्तकाल में उसे अपना भूत और भविष्य का जीवन पारदर्शी दर्पण की भाँति स्पष्ट दिखाई देने लगा ।

पाषाणी का उद्धार

पवित्र भागीरथी के तट पर एक आश्रम के निकट एक दिन राम-लक्ष्मण सहित मुनि विश्वामित्र पहुँचे । आश्रम फल-फूलों से लदे वृक्षों की सघन छाया में सुरपुर से होड़ ले रहा था, किन्तु वहाँ पर मनुष्यों का अभाव दिखाई दिया ।

राम ने पूछा—"गुरुवर यह स्थान किसी मुनि का आश्रम प्रतीत होता है, किन्तु यहाँ पर कोई दिखाई नहीं दे रहा, इसका क्या कारण है ?"

विश्वामित्र—"कमलनयन, यह आश्रम तुम्हारे आगमन की शुभ प्रतीक्षा में ही इतना रमणीक बना हुआ है ।"

राम—"मुनिवर ! यह कैसे ? इसका कुछ वृत्तान्त सुनने की इच्छा

हो रही है। कृपया कुछ ज्ञानवर्धन कीजिये।"

विश्वामित्र—"राम! इसका पूर्व वृत्त तो तुम्हें सुनना ही है, फिर जब स्वयं तुम्हारी इच्छा है तो अवश्य इसी समय सुनो—

"पहले इस आश्रम में जगद्विख्यात धर्मनिष्ठ मुनि गौतम श्रीहरि की आराधना किया करते थे। उनके तेज से प्रसन्न हो ब्रह्मा ने अहल्या नाम की लोक-सुन्दरी सेवा-परायण कन्या दान कर दी।

"अहल्या के अनिंद्य सौन्दर्य से देवराज इन्द्र का मन डोल गया। वह उनके साथ रमण का अवसर खोजने लगा। किस प्रकार महान् व्यक्ति भी कामदेव के वशीभूत हो जाते हैं, यह इस उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है।

"एक दिन मुनिवर गौतम कहीं बाहर गये हुए थे तो पीछे इन्द्र गौतम का रूप धारण करके वहाँ आया और उसने अहल्या के साथ रमण किया। उसी समय मुनिवर आये और उन्होंने अपने रूप के ही एक व्यक्ति को आश्रम से निकलते देखा तो अत्यन्त क्रोधित हुए। उन्होंने उससे पूछा—'दुष्ट! तू कौन है? शीघ्र बता वरना मैं तुझे तपोबल से भस्म कर दूँगा।'

"इन्द्र घबरा गया, उसने सब बातें सत्य-सत्य बता दीं। उसने कहा—'भगवन् मैं काम के वशीभूत इन्द्र हूँ, मेरी रक्षा कीजिए। मुझ पापात्मा से घृणित पाप हो गया।'

"मुनि गौतम ने उसे श्रापग्रस्त कर दिया और वह जान लेकर भाग गया। तब आश्रम में उन्होंने प्रवेश किया जहाँ अहल्या भय से कदलीपत्र के समान थर-थर काँप रही थी।

"मुनि ने उसे नारी समझ केवल इतना कहा—'दुष्टे तू पाषाणी है, तेरे मानव का-सा हृदय नहीं। जा इस आश्रम की शिला में निवास कर जहाँ तू दिन-रात तपस्या करके अपने हृदय में भगवन् राम का ध्यान धर। उनके पदार्पण पर ही तेरा उद्धार होगा।'

"अहल्या ने काँपते काँपते कहा—'भगवन्! जीवजन्तु से घिरे इस आश्रम में मैं एकाकी जीवित कैसे रहूँगी?'

"कुछ सोचकर आश्रम का परित्याग करते हुए मुनि ने कहा—

'अच्छा, यह आश्रम निर्जीव हो जायगा।'

"तब से हे राम ! यह आश्रम मनुष्य-रहित ही नहीं जीव-रहित है। वह देखो सामने उस शिला पर बैठी पाषाणी अहल्या तपस्या में रत है। हे रघुश्रेष्ठ ! वह अवसर आ पहुँचा अब ब्रह्माजी की पुत्री और गौतम-पत्नी अहल्या को सद्गति दो।"

नवयुवक राम आगे बढ़े, और तप में लीन पत्थर सदृश उस नारी के निकट पहुँचे। उन्होंने कहा—"देवि ! मैं राम आपको नमस्कार करता हूँ।"

और तभी पाषाणी का हृदय द्रवित हो गया। उनके हृदय में जो पुरुष-जाति के प्रति अन्याय के भाव छिपे थे वे पिघल गये। वह पानी-पानी हो गईं। राम, नारायणस्वरूप राम, सामने खड़े नमस्कार कर रहे हैं, वे राम जो उद्धारक हैं !

द्रवित वाणी से अहल्या ने राम के चरणों की धूलि मस्तक पर धारण की तो उस समय राम सकुचा गये। माता के सदृश महिला का सम्मान पा संकोच होना सहज ही है।

आश्रम की आचार-शिक्षा के अपने विशाल ज्ञान के आधार पर उन्होंने अहल्या को मृदु स्वर में पति के प्रति नारी के कर्त्तव्य के सम्बन्ध में कुछ कहा और तभी अहल्या अपने पति के सेवार्थ आश्रम से चल पड़ीं।

: ८ :

विदेह को धरती की भेंट

जम्बू द्वीप के दो महान् जन-पर्व हैं—एक श्रावणी और दूसरा फाल्गुणी। दोनों का ही कृषि-प्रधान देश में अति महत्व है। जनकपुर में इस बार न जाने क्यों वर्षाभाव रहा है और सभी ओर से यह माँग की जा रही है कि स्वयं प्रजाप्रिय जनक अपने हाथ से हल चलावें और देखें कि वर्षाभाव के कारण भूमि कितनी कठोर हो गई है। उनके हाथ लगने से कदाचित् धरती का कठोर हृदय भी कोमल हो जाये।

आज वही दिन है। जनकपुर के राजप्रासाद के सम्मुख सर्वश्रेष्ठ और सुन्दर बैलों की जोड़ियाँ राज्य के कृषि-घेर से आकर खड़ी हैं। स्वयं विदेह अपने हाथ से हल चलावेंगे और जनकपुर में आम धारणा है कि भूमि में हल का फल लगते ही वर्षा का अभाव पूर्ण हो जायेगा।

महाराज जनक सुन्दर बैलों के रथ में कृषि-क्षेत्र की ओर चल पड़े। उनके पीछे रथों में, अश्वों पर और पैदल जनकपुर के निवासी, राज्य कर्मचारी और सौभाग्यवती बधुएँ भी मांगलिक चिह्नों सहित चलीं।

महाराज जनक का ध्यान जो कुल-बधुओं की ओर गया तो स्वाभाविक रूप से यह विचार हो आया कि हमारे भी एक कन्या होती ! उसका विवाह होता, वह भी किसी महान् कुल की बधू बनती। पर रथ के वेग के साथ जिस वेग से यह विचार आया था चला गया और वे सारथी से पूछ बैठे—

'बच्छराज, इस बार क्या वर्षाभाव का प्रभाव हमारे इन गौपुत्रों पर भी पड़ा है?"

बच्छराज—"महाराज! बिना वर्षा क्या जीव पर जीवन आता है? देखिये न महाभाग! ये बाहरी ओर जो अजेय चल रहा है, अभी दाँतों में भरा नहीं है फिर भी वह चमक नहीं जो होनी चाहिए।"

जनक जी ने 'हूँ' कहा और वह स्थान आ पहुँचा जहाँ पर कृषि-महोत्सव मनाया जाने वाला है। कृषि-अध्यक्ष ने आगे बढ़कर बैलों के रस्से थाम लिये और नमस्कार करके विदेह को यज्ञशाला की ओर ले चले। वहाँ पर पण्डितों ने विधिपूर्वक प्रजापति को हविष्य समर्पित किया और महाराज जनक सुन्दर स्वर्ण और रौप्यमय हल को सुन्दर बैलों से चलाने आगे बढ़े।

कुछ ही आगे चलकर जवासे की झाड़ी के, जो वर्षाभाव के कारण अब भी रौनक पर थी, आगे हल का फल पहुँचा कि सम्मुख ही एक नवजात शिशु विदेह को दिखाई पड़ा। हल पर से उनका हाथ उठ पड़ा और कुछ ही समय पूर्व की कल्पना को साकार होते देख उन्हें उल्लास का अनुभव हो निकला। शिशु को उन्होंने हाथ में उठा लिया और तभी बादलों की गड़-गड़ाहट हुई और वर्षा की झीनी फुहार पड़ निकली। चारों ओर शंख और तूर्य बज निकले और जय-जयकार हो निकला।

हर ओर चर्चा है कि सदैव की भाँति प्रजा-प्रिय का हाथ हल पर लगते ही वर्षा हो गई और धरती ने महान् उपहार भी दे दिया।

× × ×

इधर जनकपुर के राजप्रासाद में कन्या का जन्मोत्सव मनाया जा रहा है।

धरती की दी हुई कन्या सीता चन्द्रमा की कलाओं की भाँति विकसित हो निकली और रनिवास के जीवन में उनके कारण एक विचित्र प्रसन्नता और उल्लास का वातावरण छा गया।

एक दिन महाराज जनक सीता से बातचीत करने और उनके साथ खेलने में इतने व्यस्त हो गये कि उन्हें यह ध्यान ही न रहा कि दरबार का समय हो गया है और राज्य-कार्य के लिये उनका वहाँ जाना भी आवश्यक है कि इतने में मुख्य प्रतिहारी ने दण्डवत् किया।

जनक—"आने का कारण प्रतिहारी ?"

प्रतिहारी—"महाराज, मुनि दुर्वासा पधारे हैं और साश्चर्य प्रभु के यहाँ रनिवास में होने का उल्लेख कर चुके हैं· · ·"

जनक—"और स्पष्टता से कहो प्रतिहारी क्या हुआ ?"

प्रतिहारी—"कुछ नहीं महाप्रभु ! संभवतः मैं भूल से कुछ कह गया, क्षमाप्रार्थी हूँ महाराज ।"

जनक—"तुम हमारा तात्पर्य ठीक न समझे। हम वास्तव में वही घटना और वे ही शब्द सुनना चाहते हैं जो मुनिराज ने कहे। विलम्ब न करो, उनके स्वागतार्थ हमें शीघ्र ही द्वार पर पहुँचना है।"

प्रतिहारी—"महाराज ! ज्यों ही मुनिराज आये उन्होंने स्वामी के संबंध में पूछा और नम्रतापूर्वक जब यह कहा गया कि प्रभु यहाँ रनिवास में हैं तो मुनिराज ने कहा 'विदेह और रनिवास में !' इतनी ही बात है प्रभु।"

महाराज जनक तुरन्त ही द्वार पर आये और दण्डवत् कर विलम्ब के लिये मुनिराज से क्षमा याचना की। दुर्वासा बोले—"विदेह होकर रनिवास में, यह आश्चर्य की बात है।"

विदेह शांत रहे।

मुनिराज के विश्राम का सुप्रबन्ध करके मध्याह्नकालीन आहार के निमित्त जनक फिर स्वयं उपस्थित हुए। विदेह और मुनिराज दोनों पाकशाला पहुँचे। वहाँ पर दो सुखासनों की व्यवस्था की हुई थी। एक विदेह के लिये और दूसरा मुनिराज के लिये। मुनिराज के सुखासन के ऊपर एक नंगा खड्ग कच्चे धागे में बँधा लटक रहा था।

विदेह ने लक्ष्य किया या नहीं पर मुनिराज के नेत्र उस ओर घूम गये। भोजन प्रारंभ हुआ और शीघ्र ही मुनिराज ने हाथ धो डाले। पाकशाला से लौटते हुए विदेह ने पूछा—"मुनिराज ! जनकपुर के अहोभाग्य कि आपके चरणों की धूलि हम लोग मस्तक पर धारण कर सके किन्तु आहार आपको रुचिकर न लगा ऐसी कल्पना करके अन्तःकरण दुख मान रहा है।"

दुर्वासा—"नहीं राजन ! भोजन तो सुस्वाद था· · ·"

जनक—"तो फिर इतने शीघ्र आपने हाथ धो डाले यह क्योंकर ?"

दुर्वासा—"राजन ! अब सुनना ही चाहते हो तो सुनो, हमारे सिर के

ऊपर कच्चे धागे में जो खड्ग लटक रहा था हमारा मन उसी में अटका रहा और भोजन भी इसीलिये शीघ्र समाप्त हो गया।"

जनक—"मुनि दुर्वासा और खड्ग का भय!"

दुर्वासा—"अच्छा राजन! अब हम समझे कि रनिवास में होने पर हमने जो कह डाला था उसका उत्तर दिया गया है।"

जनक—"प्रभु! धरती माता ने मुझे एक कन्या दी है। उसी सीता से बातचीत करने मैं रनिवास में गया था। उसे आशीर्वाद देते जाइये, महाराज!"

और तभी बालिका वैदेही को मुनि दुर्वासा ने अनेक आशिष वचन कहे।

: ९ :

धनुष यज्ञ और वैदेही स्वयंवर

समय बीतते क्या देर लगती है। किशोरी सीता कमलिनी के समान बढ़ने लगीं। उनकी शिक्षा-दीक्षा समाप्त हो आई और गुरुवर को अपनी शिष्या की महान् प्रखर बुद्धि ने चकित कर दिया। विदेह यह भूल-से गये कि सीता धरती की भेंट है, उनकी अपनी पुत्री नहीं। उनके हृदय में एक धर्मनिष्ठ पिता की भाँति अपनी कन्या के विवाह की बात आ निकली।

एक दिन दरबार में बैठे वे पूछ बैठे—"मंत्रिवर ! सीता अब वयस प्राप्त कर रही है, उसके योग्य वर की खोज आवश्यक है।"

मंत्री—"महाराज ! राजकुमारी के अनुरूप वर खोजने के लिये दिन में भी दीप हाथ में लेना पड़ेगा।" वृद्ध मंत्री का स्नेह भी राजपुत्री पर कुछ कम नहीं था।

जनक—"यह तो ठीक है। क्यों नहीं प्रचलित परम्परा के अनुसार स्वयंवर की रचना की जाय और क्षत्रियवंशियों में श्रेष्ठ-से-श्रेष्ठ वीर योद्धा का आह्वान किया जाय।"

मंत्री—"ठीक ही है महाराज ! ब्राह्मणों में अधिक विद्यावान,

क्षत्रियों में अधिक शौर्यवान, वैश्यों में अधिक धनवान और शूद्रों में अधिक आयु वाले को ही श्रेष्ठ और महान् माना जाता है। अतः क्षत्रिय-कन्या के लिये सर्वश्रेष्ठ शौर्यवान वर की आवश्यकता है। पर प्रभु कसौटी क्या होगी ?"

जनक--"यही तो हम भी सोच रहे हैं। पर पशुपतिनाथ का जो 'पिनाक' नामक धनुष है जिसे सामान्य व्यक्ति हिला भी नहीं सकता; क्यों नहीं उस पर प्रत्यंचा चढ़ाने वाले को श्रेष्ठ माना जाय ?"

मंत्री--"यह उचित ही है महाप्रभु! फिर स्वयंवर के लिये निमंत्रण भेजने का आदेश प्रदान कीजिये।"

जनक--"ठीक है, आप निमंत्रण आदि की व्यवस्था कीजिए और उसमें यही लिख दीजिये कि महाशिव के धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाना ही स्वयंवर की कसौटी होगी।"

स्वयंवर की बात करके विदेह के हृदय में थोड़ा दुःख हुआ कि सीता विवाह के बाद अपने श्वसुरालय चली जायगी तब क्या होगा ? उस प्रियदर्शिनी के बिना उनका पितृ-हृदय कैसे संतोष पाएगा ?

स्वयंवर का अवसर आ पहुँचा। स्थान-स्थान के राजा-महाराजा और उनके साथी जनकपुरी में अतिथि हुए। जनकपुरी इन्द्रपुरी से होड़ लेने लगी। आख़िर स्वयंवर का दिन भी आ पहुँचा।

राजभवन के विशाल प्रांगण में बने सुसज्जित पंडाल में 'पिनाक' बीच में रखा हुआ है। उत्तर दिशा में जम्बूद्वीप के उत्तरी भाग के नरेश, दक्षिण, पश्चिम और पूर्व दिशाओं में भी उन्हीं दिशाओं के नरेशों के उच्चासन सजाए हुए हैं। 'पिनाक' के सीधी ओर विदेह, उनके प्रमुख सभासद, मंत्रिगण और उच्चाधिकारियों के सुखासन हैं। बाईं ओर राज्य के गायनाचार्य का आसन है और निकट ही मुनियों, आचार्यों, ब्रह्मचारियों आदि के उच्चासन हैं। नरेशों के समीप ही परिचायिकों के स्थान हैं। और उस ओर जनकपुर की जनता का घेरा है।

शंख और तूर्य की ध्वनि हो निकली और सिंहद्वार पर खड़े जनक, उनके परिजन, मंत्री आदि ने नरेशों का स्वागत प्रारम्भ कर दिया। हर आगत नरेश को अपने आसन तक पहुँचाया जा रहा है। स्वागत-कार्य से

निवृत्त होकर महाराज जनक और उनके परिजन, मंत्री आदि अपने स्थानों पर आ पहुँचे ।

महामंत्री ने स्वयंवर के सम्बन्ध में राज्य-घोषणा पढ़कर सुना दी और मानकरियों ने अपने-अपने स्वामियों की विरदावलि सुनाना प्रारम्भ किया कि इतने में सौम्य और सलज्ज मुद्रा में सीता ने दो सखियों के बीच रंगशाला में प्रवेश किया । चारों ओर जय-जयकार हो निकला और वे आकर अपने पिता महाराज विदेह के निकट बैठ गईं ।

अब क्रमशः क्षत्रियकुमारों और नरेशों ने आ-आकर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का यत्न किया । जिधर जनकपुर की जनता बैठी है उस क्षेत्र से नरेशों के विफल होने पर परिहास में करतल ध्वनि तीव्र रूप से बज उठती हैं । धीरे-धीरे सभी नरेश प्रयत्न कर चुके और रंगशाला में अद्‌भुत शांति छा गई ।

कुछ क्षण और व्यतीत हुए होंगे कि जनक आवेश की मुद्रा में खड़े हो गये और उन्होंने जो कुछ सम्भाषण किया, वह किसी भी क्षत्रियकुमार अथवा नरेश के लिए शोभाजनक नहीं था । अंत में उन्होंने कहा कि लगता है मेरी कन्या का वरण करने की क्षमता किसी में नहीं, पृथ्वी वीरों से शून्य हो गई ।

भाषण जारी ही था कि मुनियों के क्षेत्र की ओर उपस्थित समुदाय का ध्यान आकर्षित हुआ । वहाँ पर मुनि विश्वामित्र के साथ जो दो ऋषिकुमार बैठे थे, उनमें छोटे कुमार का चेहरा क्रोध से आरक्त था और वह कुछ कहते-कहते खड़े हो गये थे । मुनि उन्हें शांत करने का यत्न कर रहे थे । इतनी देर में बड़े ऋषिकुमार मुनि के चरण-स्पर्श कर धनुष की ओर बढ़ते दिखाई दिये ।

जनकपुर की जनता के क्षेत्र से एक आवाज़ स्पष्ट सुनाई दी कि ऐसे कोमल ऋषिकुमार को धनुष चढ़ाने के हेतु जाने देना क्या कोई समझदारी कही जा सकती है ? अगर कहीं ये उस विशालकाय धनुष के नीचे पिच गये तो क्या होगा ?

लेकिन कुमार शांत-गम्भीर रूप से धीरे-धीरे धनुष की ओर बढ़ रहे थे । विदेह के नेत्र उनकी ओर मुड़ पड़े, उनका भाषण रुक गया और

वे अपने स्थान पर जा बैठे। सीता के नयन भी एक बार उस अति सौम्य और विशाल ललाट वाले युवक की ओर घूम गये। अब वह धनुष के सन्निकट पहुँच रहे थे। उधर उस ऋषिकुमार के नेत्र भी सीता की ओर मुड़े और दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा।

राम ने अपने कंधे का धनुष-तूणीर उतारकर मंच पर रख दिया और सामान्य रूप से 'पिनाक' पर प्रत्यंचा चढ़ाएँ कि वह चरचर करता हुआ टूट गया। महान् आश्चर्यचकित समस्त समुदाय एक बार जयघोष कर उठा। विश्व-विजेता की भाँति ऋषिकुमार ने एक दृष्टि फिर वैदेही पर डाली और लौटकर मुनिवर के चरण स्पर्श किये। छोटे कुमार ने उन्हें बधाई स्वरूप प्रणाम किया, और उन्होंने उसे वक्ष से सटा लिया।

किन्तु, तभी सब ओर से यह आक्षेप हो निकला कि स्वयंवर में ऋषिकुमार का भाग लेना कहाँ तक उचित है? विदेह ने समस्त नरेशों का अपमान किया है। और इधर स्वयं विदेह का मन खिन्न हो रहा है कि राजकुमारी सीता को क्या इस अज्ञात ऋषिकुमार को दे देना होगा? चारों ओर से भीषण चिल्लाहट हो निकली। महामंत्री अपने स्थान से उठकर उद्घोषक के निकट पहुँचे और उच्च स्वर में उन्होंने कहा—

—"आगत महानुभाव शांत हों। शीघ्र ही आपकी शंका समाधान की जायगी। यदि समाधान न हो सका तो फिर स्वयंवर की कार्रवाई स्थगित हो जायगी, यह सुनिश्चित है, आप शांत हो जायें।"

दो-तीन बार की इस प्रकार की घोषणा के पश्चात् कुछ शांति हुई। विदेह अब मुनि विश्वामित्र के निकट पहुँच चुके थे और उनसे वार्तालाप कर रहे थे। सबके नेत्र विदेह की ओर जा लगे। विदेह अब आश्वस्त होकर उद्घोषक के निकट पहुँच चुके थे।

उन्होंने कहा—"उपस्थित महानुभाव! ऋषिकुमार क्षत्रियकुमार हैं। मुनि विश्वामित्र से हम निवेदन करेंगे कि वे स्वयं समस्त सूचना आपको देने की कृपा करें।"

मुनि विश्वामित्र ने उद्घोषक की ओर जाते हुए मार्ग में सीता के सिर पर हाथ रखकर उन्हें आशीर्वाद दिया और समस्त उपस्थित जनों को सम्बोधित करते हुए बोले—"जम्बू द्वीप के नरेशो, विदेह, मंत्रीगण एवं उपस्थित

महापुरुषो ! हमारे साथ आये राजकुमार के धनुष-भंग करने पर कतिपय आपत्तियाँ की गई हैं। हम क्रमवार उनके सम्बन्ध में आपको सत्य सूचना दे रहे हैं।

"कहा गया है कि वे राजकुमार नहीं। आपको जानकर यह हर्ष और गर्व का अनुभव होना चाहिए कि ये राजकुमार जम्बू द्वीप के सर्वश्रेष्ठ राजकुल के पुत्र हैं। ये अवधनरेश दशरथ के सुपुत्र राम हैं, और वे छोटे इनके अनुज लक्ष्मण हैं।

"दूसरा आक्षेप है कि ये आमंत्रित नहीं हैं। इनके पिता के नाम निमंत्रण भेजा गया है। हमारे पास भी जो निमंत्रण पहुँचा, उसमें सदलबल आने का निवेदन है। अतः ये विशिष्ट रूप से आमंत्रित हुए। शेष आक्षेप का इन दोनों सूचनाओं से समाधान हो जाता है। सीते ! अब वरमाला कर में ग्रहण कर अपनी इच्छा को प्रकटित करो।"

विदेह गद्‌गद् हो रहे हैं। वे स्वयं सीता के साथ राम के स्थान तक पहुँचे। माला जानकी ने राम के गले में डाल दी। तभी रंगशाला जयकारों से गूंज उठी।

: १० :

जनकसुता का विवाह और अयोध्या-प्रस्थान

महाराज जनक की पीली चिट्ठी एवं मुनि विश्वामित्र के पत्र सहित जनकपुर के प्रधानमंत्री ने अनेक भेंट-उपहारों सहित महाराज दशरथ की सेवा में अयोध्या के लिये प्रस्थान किया।

परम्परानुसार महाराज जनक ने महाराज दशरथ से अपनी कन्या का राजपुत्र राम के साथ पाणिग्रहण का प्रस्ताव किया। मुनि विश्वामित्र के आदेश से स्वयंवर का वर्णन भी भेज दिया गया, पंडित-ज्योतिषियों के परामर्श से जो विवाह की तिथि निकली थी वह भी लिख दी गई और शीघ्र ही पदार्पण के लिये निवेदन कर दिया गया।

प्रधानमंत्री गतिशील रथों से आशा से भी कम समय में अयोध्या पहुँच गये और उन्होंने पहुँचते ही महाराज दशरथ के दर्शन करने के लिये संवाद भिजवा दिया। अविलम्ब ही उन्हें दरबार में बुला लिया गया।

देशकाल के नियमानुसार अभिवादन के पश्चात् जनकपुर के प्रधानमंत्री ने दोनों पत्र महाराज दशरथ को प्रस्तुत कर दिये।

पत्रों के पढ़ते-पढ़ते ही महाराज दशरथ के मुख पर प्रसन्नता और उल्लास के भाव प्रकट हो गये और मंत्री सुमंत्र द्वारा पत्रों की सूचना की घोषणा करते ही जयघोष हो निकला। तुरन्त ही नगरपाल ने आगामी दिवस आगतों के स्वागत में समारोह की अनुमति चाही जो दे दी गई।

महाराज दशरथ शीघ्रता से रनिवास में पहुँचे, किन्तु वहां पर समाचार पहले ही पहुंच चुका था और महारानी कैकेयी की ओर से इनाम बाँटे जा चुके थे। महाराज के स्वागत में आज नई आभा झलक रही थी।

× × ×

जनकपुर के प्रधानमंत्री सार्वजनिक आयोजन में स्वयंवर की घटना सरस शब्दों में सविस्तार सुना रहे थे। समस्त उपस्थित व्यक्तियों का मन फलाहार के आयोजन से हटकर कहानी में लगा हुआ था। अर्द्धरात्रि तक समारोह चलता रहा।

अयोध्यापति की ओर से समस्त राज्य में वरयात्रा के लिये निमंत्रण भिजवा दिये गये। हाथी, घोड़े, रथ, बहली, फिरक और न जाने कितने वाहनों में बरात रवाना हुई।

जनकपुर का घर-घर और गली-गली सजी हुई है। बन्दनवार चारों ओर बँध रहे हैं और मंगल-घट कदलीपत्रों सहित हर द्वार पर शोभायमान हैं। जनकपुरी स्वयं नवबधू के समान सजी-धजी है।

वरादि के नगर-प्रवेश करते ही प्रकार-प्रकार के वाद्यों की तुमुल ध्वनि आकाश में गूजने लगी। राजभवन के सम्मुख जो विशाल रंगशाला बनाई गई है उसके द्वार पर महाराज जनक, उनके परिजन एवं राज्य के उच्चाधिकारी अगवानी के लिये तैयार हैं। धीरे-धीरे चलते हुए वरादि जब तोरण पर पहुँचे, तो महाराज जनक ने आगे बढ़कर अपने समधी महाराज दशरथ की ग्रीवा में एक अति सुन्दर मुक्ता और मणिजटित माला पहना दी। तोरणाचार के समय एक सौ कोटि स्वर्ण-मुद्रा, दस सहस्र रथ, दस कोटि अश्व, छः सौ हाथी, एक लाख पदाति भेंट स्वरूप अर्पण किये गये।

भेरी, मृदंग, तूर्य, शंख, झाँझ, आनक आदि वाद्ययंत्रों के सरल संगीत से उपस्थित अतिथियों का स्वागत जारी रहा और उसी समय राजदुलारी सीता ने राजकुमार राम के गले में पुष्प-हार डाल दिया और द्वारचार की रस्म पूर्ण हुई। जिस विशाल उद्यान में वरादि के विश्राम का प्रबंध था वहाँ पर चहल-पहल प्रारंभ हो गई।

एक विशेष दूत ने लग्न के समय की सूचना भी दे दी। और वह समय आया जब प्रकृति और पुरुष का गठबन्धन हो गया।

विवाह मंडप की छवि निराली है। चारों कोनों पर सप्त मंगल-कलश, कदलीपत्र, धूपदान आदि रखे हैं और अनेक शुभ चिह्न अंकित हैं। बीच में होम के लिये स्थान है। समस्त वायुमंडल में स्निग्ध सुगंध फैली हुई है।

संपूर्ण धार्मिक क्रियाओं सहित पाणिग्रहण संस्कार सम्पन्न हुआ। चारों दिशाओं से जयजयकार हो निकला और बधाइयाँ गाई जाने लगीं। सौभाग्यवती स्त्रियों के कोकिल-कण्ठों से हर प्रकार के गीत गूंजने लगे।

महाराज जनक और महाराज दशरथ ने एक दूसरे को बधाई दी और गले मिले। उसी समय यह भी निश्चित हुआ कि जनकजी की औरसी कन्या उर्मिला का पाणिग्रहण राजकुमार लक्ष्मण के साथ, और भतीजी मांडवी का भरत एवं श्रुतकीर्ति का शत्रुघ्न के साथ सम्पन्न किया जाय।

शुभ घड़ी में यह तीनों विवाह भी सम्पन्न हुये और महाराज दशरथ ने विदेह से विदा कर देने के लिये कहा। आखिर वह समय भी आया जब विदेह को अपनी पालिता पुत्री सीता को विदा करना पड़ा। तीन सौ सखी-सहेली और दासियाँ सीता, उर्मिला, मांडवी और श्रुतकीर्ति के साथ रथों में बिठाल दी गयीं। आज ऐसा लग रहा है मानो जनकपुरी की आभा ही चली जा रही हो।

समस्त वाहन और पदाति विदा हो गये और महाराज दशरथ से जनकजी ने आतिथ्य में दोष रह जाने की क्षमा-याचना की। दोनों महापुरुषों का यह औपचारिक मिलन बड़ा करुण हो गया।

मार्ग में राम ने सीता की ओर देखा तो लज्जा और संकोच होते हुए भी उन्होंने धीरे-धीरे कहा—"जनकपुर से चलते समय कुछ

अपशकुन हो गये ।"

राम—"अपशकुन का विचार न करो, सीते !"

'सीते' कुछ ऐसे ढंग से कहा गया कि सीता को वास्तव में उस अपशकुन के कारण जो द्विविधा-सी चित्त में हुई थी वह शांत हो गई।

और तभी बाईं ओर से धूल उड़ती हुई दिखाई दी। लक्ष्मण अपना रथ आगे बढ़ा ले गये। फरसा धारण किये क्रोधित मुद्रा में एक ब्राह्मण आ रहे हैं जिन्होंने लक्ष्मण के निकट पहुँचते ही पूछा—"वह राम कहाँ है जिसने हमारे गुरु का धनुष तोड़ डाला है। वह हमारे क्रोध का पात्र है।"

लक्ष्मण को इस अशिष्ट व्यवहार पर क्रोध हो आया बोले—"तुम कौन हो ? पहले यह तो बताओ ?"

परशुराम—"हम परशुराम हैं और यह जानना चाहते हैं कि हमारा कोपभाजन राम कहाँ है ? आगे बढ़ना रोक दो, सुनते नहीं हो ?"

लक्ष्मण—"माता का शीश काट लेना एक बात है और इस प्रकार आज्ञा देना और बात। अग्रज के लिये यदि एक शब्द भी अभद्र निकला तो जान लीजिये मेरा नाम लक्ष्मण है।"

राम ने अपना रथ आगे बढ़ाया और आते ही परिस्थिति का ज्ञान उन्हें हो गया। पहले परशुराम ने ही कहा—"देखते हो ! इस छोकरे को, किस प्रकार··"

लक्ष्मण बीच ही में बोल पड़े—"तुम्हें बोलने का भी शऊर नहीं··" और तभी राम ने लक्ष्मण को शांत कर दिया और अति मधुर शब्दों में बोले—"मुझे खेद है कि अनुज के कठोर शब्दों से आपके कोमल हृदय को आघात पहुँचा। मैं राम प्रस्तुत हूँ, आज्ञा कीजिये।"

राम के सौजन्य और इस वाक्यावलि ने परशुराम के क्रोध पर पानी-सा डाल दिया, पर फिर भी उन्होंने कहा—"तुम ही वह राम हो जिसने हमारे गुरु का धनुष तोड़ डाला है ?"

राम—"विप्रवर ! मैंने जान-बूझकर वैसा नहीं किया। आपको यह तो ज्ञात ही होगा कि विदेह ने सीता-स्वयंवर के लिये क्या शर्त रखी थी। उसी कारण मैं उस धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का यत्न कर रहा था

कि वह कदाचित् पुराना होने के कारण चर-चर हो गया।"

परशुराम का क्रोध अब बिलकुल शांत हो गया था और वे यह विचार कर रहे थे कि अब क्षत्रियों के नाश करने का समय समाप्त हो गया। यह राम जो क्षत्रियकुमार ही है, कितना सौम्य, कितना सरल और कितना प्रतिभावान है। अब हमारा कार्य समाप्त हो गया। बोले—"आपकी बात से हमें संतोष होगया। इतना ही नहीं अब हमारा कार्य-क्षेत्र ही बदल गया। पर यह जो तुम्हारे अनुज हैं, इन्होंने हमारा अपमान किया है।"

राम ने हाथ जोड़कर कहा—"आप ब्राह्मण हैं, आप क्षमाशील हैं और उदारता के भंडार हैं। मुझे अत्यंत खेद है कि इन्होंने आपके प्रश्न की भाषा में ही अपना उत्तर दिया। इन्हें क्षत्रिय कुल के होने के नाते आपके प्रति सम्मान ही दिखाना चाहिए था।"

परशुराम ने इस सम्भाषण के बाद कहा—"वास्तव में मैं भी क्रोधावेश में था। तुम्हारे अनुज का इतना दोष नहीं जितना मुझे लग रहा था। मुझे भी आज की इस घटना पर खेद है।"

बस, फिर परशुराम आशिषवचन कहते अपने मार्ग पर बढ़ गये और अयोध्यावासियों की बरात अपने नगर की ओर चल पड़ी।

: ११ :

राजतिलक नहीं बनवास

महाराज दशरथ ने एक दिन मंत्रिवर सुमंत्र को अपने विचारकक्ष में बुला भेजा। सुमंत्र ने जाकर देखा कि गुरु वशिष्ठ वहाँ पहले ही से विद्यमान हैं। महाराज दशरथ पर, जब से पुत्रों का विवाह कराके आये हैं, स्वभाव की प्रौढ़ता दिन-दिन बढ़ती जा रही है। आज उनके मुख पर एक विशेष प्रकार की आभा दृष्टिगोचर हो रही है। सुमंत्र अभिवादन आदि की औपचारिक रीति के बाद बैठ गये, तो महाराज दशरथ बोले—"मंत्रिवर! हमारी समस्त इच्छाएँ भगवान् ने पूर्ण कर दीं। राम और लक्ष्मण जैसे पुत्रों

को पाकर कौन बड़भागी अपने आपको धन्य न मानेगा। अब हमारी इच्छा राज्य-सेवा से मुक्त होने की हो रही है। गुरुवर भी बैठे हैं और आप भी आ गये। हम राम को युवराज पद देकर राज्य का कुछ कार्यभार उन पर डालना चाहते हैं, इसमें आपकी क्या सम्मति है ?"

पहले उनके नेत्र गुरुदेव की ओर जा पहुँचे।

गुरुवर—"आपका विचार श्रेष्ठ है। शुभ मुहूर्त में यह कार्य सम्पन्न हो जाय तो प्रजा की इच्छा की पूर्ति भी हो जाय। कदाचित् आप न जानते हों कि कौशल का बच्चा तक राम को आराध्य मानता है।"

सुमंत्र ने कहा—"महाराज की अभी आयु ऐसी विशेष अधिक नहीं, किन्तु जैसा कि गुरुदेव ने कहा प्रजा के प्रिय राम युवराज पद के योग्य हैं।" सुमंत्र इतना कहकर आदेश की प्रतीक्षा में चुप हो गये।

महाराज दशरथ इसकी सूचना देने और सम्मति प्राप्त करने के विचार से रनिवास की ओर जा पहुँचे। सर्वप्रथम वे महिषी कैकेयी के कक्ष की ओर बढ़े। महारानी ने द्वार पर आकर उनको प्रणाम किया और वे भीतर लिवा ले गईं। मलय पीठिका पर बैठते-बैठते महाराज ने शुभ सूचना दे दी—

"प्रिये! अब हम राज्यकार्य का थोड़ा-सा भार अपने पुत्रों में से एक पर डालना चाहते हैं। कुल-परम्परानुसार शीघ्र ही अयोध्या के युवराज पद पर किसी को आसीन कर देना चाहते हैं। कहो, चारों कुमारों में से किसे यह पद दिया जाय ?"

कैकेयी—"इसमें भी कुछ सम्मति की आवश्यकता है ?"

महाराज दशरथ को विदित है कि सब जनों के साथ कैकेयी का प्रेम भी राम पर ही सर्वाधिक है, यद्यपि उनके आत्मज भरत हैं।

दशरथ—"राम वास्तव में सब पदों के योग्य हैं, तो फिर शीघ्र ही व्यवस्था कर देने का आदेश जारी कर दिया जाये ?"

कैकेयी—"यह विचार आते ही अब तक आदेश जारी नहीं हुए, क्या यह आश्चर्यजनक बात नहीं ?" इस प्रश्न का उत्तर अपेक्षित न था।

महाराज उठे और उन्होंने कौशल्या और सुमित्रा को अपने विचार-

कक्ष में बुलाने के लिए मुख्य दासी से कह दिया। औपचारिक रूप से राम को युवराज पद देने की सूचना उन्हें भी दे दी गई।

जिस प्रकार रामजन्म और रामविवाह पर अयोध्या सजी थी उसी भाँति राजतिलक के अवसर के लिए भी अपूर्व तैयारियाँ होने लगीं। कुल-देवी-देवता के पूजन के लिये राम जिस मार्ग से जाने वाले हैं उस पर अनेकों द्वार बनाये जाने लगे।

उधर राम के राजतिलक का समाचार तपोवन में भी फैल गया है। प्रमुख मुनि महात्माओं का समागम नर्मदा के तट पर हो रहा है। एक वृद्ध संन्यासी ने कहा—"अब तो निकट भविष्य में यह आशा करना व्यर्थ है कि राम मध्यांचल और दक्षिणखंड के साधु पुरुषों की रक्षार्थ असुरों का नाश करने अयोध्या से बाहर निकलेंगे। लगता है देवताओं के वाक्य भी झूठे होने जा रहे हैं।"

एक अन्य साधु—"सच ही जब से राम के तिलक की चर्चा सुनी है तब से हृदय में सुख के स्थान पर द्विविधा उत्पन्न हो गई है।"

एक श्वेत केश और मूँछ-दाढ़ी वाले महात्मा ने कहा—"जो निश्चित है उसमें अन्तर् नहीं पड़ सकता। राम को असुरनाश के लिए जंगलों में घूमना ही पड़ेगा। भूल गये श्रवणकुमार के पिता का श्राप! अब मात्र यह कर दो कि मुझे अयोध्या पहुँचा दो।"

वृद्ध महात्मा की सान्त्वनापूर्ण बात से अशांत और अनिश्चित वातावरण में अन्तर पड़ गया। महात्मा को अयोध्या ले जाने की तैयारी की जाने लगी।

और अयोध्या में वह दिन अति निकट आ रहा है जब समस्त जन अपने प्रिय राम का राजतिलक होते देखेंगे। महिषी कैकेयी को इन दिनों बिलकुल ही अवकाश नहीं मिल रहा। उन्होंने रनिवास में आने वाले विशिष्ट अतिथियों के विश्राम का प्रबन्ध पूर्ण कर लिया है। उनकी पाकशाला का निरीक्षण कर वे लौट ही रही हैं कि मंथरा ने आकर दण्डवत् किया।

महारानीजी बिना कुछ विशेष लक्ष्य किये आगे बढ़ने लगीं तो उसने निवेदन किया—"महारानी! एक अति वृद्ध महात्मा आपके साक्षात्कार के अभिलाषी हैं। वे बाहर द्वार पर खड़े हैं··"

कैकेयी—"मंथरा ! तुझे पता नहीं अभी कितना काम बाकी पड़ा है। कहा नहीं गया महात्माजी से ? अब ऐसा कर, उन्हें आतिथ्यालय में ठहरा दे।"

मंथरा—"महारानीजी ! यह मैं सब कह चुकी। वृद्ध कई दिन के उपासे भी हैं। उनका संकल्प है कि आप से साक्षात्कार करके ही आहार लेंगे। अब जैसी आज्ञा हो।"

कैकेयी—"सब बातों का उत्तर तो तूने दे ही दिया, अब मेरे बाहर जाकर महात्मा से बात करने के अतिरिक्त कोई चारा थोड़े ही है। चल निवृत्त होती चलें।"

दोनों बाहर आईं तो श्वेत केश वाले महात्मा उसी भाँति खड़े थे। उन्हें निकट के ही एक कक्ष में ले आया गया। जहाँ बैठते ही महात्मा ने एक बात कही—

"बेटी, आज एक महान् त्याग कराने का संकल्प लेकर ही यहां आया हूँ। तुम्हारे अतिरिक्त अब इस संसार में साधुओं का रक्षक अन्य कोई नहीं। यदि चाहो तो कह दूं और न चाहो तो बस फिर विलम्ब न करो—"

कैकेयी—"महात्मन्, बिना जाने कि आप मुझसे किस प्रकार के त्याग की आशा करते हैं मैं कोई आश्वासन कैसे दे दूं। पहले यह बताइये कि आप मुझसे क्या चाहते हैं?"

महात्मा—"युधाजित् की सहोदरा से हम यही आशा रखते हैं कि यदि साधु-संन्यासियों के लिए उसे सर्वस्व त्याग करना पड़े तो उसमें भी उसे संकोच न होगा। तुम जानती हो बेटी, उत्तराखंड के राक्षसों का नाश विश्वामित्र की अनुकम्पा से हो गया। किन्तु मध्यांचल और दक्षिणखंड में तो किसी सदाचारी का रहना भी दूभर है। हम आशा करते थे कि कौशलेश अपने समर्थ पुत्रों में से ज्येष्ठ राम को वहाँ भेजेंगे, किन्तु उनमें इतना मोह व्याप्त है कि वे ऐसा नहीं कर सकेंगे। अब हम लोगों की समस्त आशाएँ बिटिया तुम्ही पर बँधी है। मैं मध्यांचल और दक्षिणखंड के समस्त साधुओं की ओर से तुमसे याचना करने आया हूँ। याचना सुनोगी ?"

कैकेयी वृद्ध महात्मा के इस सम्भाषण से अभी तक नहीं समझ पाईं कि आखिर वे उससे क्या चाहते हैं ? इसलिए उन्होंने स्पष्ट प्रश्न किया—

"महात्मन् ! आप मुझसे क्या चाहते हैं ?"

महात्मा—"हम तुमसे राम को माँगने आए हैं। बेटी, उन्हें दे दो तो हम लोगों का उद्धार हो जाय। क्या कहती हो ?"

कैकेयी—"इसके लिए आपको महाराज से कहना चाहिए। मैं किस प्रकार सहायक हो सकती हूँ ?"

महात्मा—"वही तो बेटी ! महाराज में इतना मोह भरा है कि वे राम को आँखों से ओझल करने की कल्पना भी नहीं कर सकते। तुम्हीं उन्हें देने का वचन दो।"

कैकेयी—"पर महात्मन् मैं क्या कर सकती हूँ ?"

महात्मा—"राम का राजतिलक होने का समय आ गया है। भरत भी यहां हैं नहीं। बेटी, तुम इस स्थिति में ही कुछ कर दिखा दो।"

कैकेयी—"राम का राजतिलक करके हम कितनी शांति अनुभव करेंगे। भरत शायद आजाय और यदि न भी आ सके तो इसमें हानि ही क्या है ? ऐसा हो सकता है कि राजतिलक के बाद राम असुरों के अत्याचारों की ओर ध्यान दें।"

महात्मा—"बेटी ! पहले वचन दे दो कि हमारी सहायता करना चाहती हो, मार्ग तो मैं बतला दूंगा।"

कैकेयी—"आप कृपया शीघ्र ही मार्ग बतला दीजिये। बहुत-सा काम पड़ा है जिसे मुझे देखना है। क्षत्राणी की जिह्वा से निकली बात वचन ही होती है।"

महात्मा—"तो सुनो बेटी ! राम को १४ वर्ष के लिए बनवास करा दो और भरत यहां कार्य करें।"

कैकेयी, जो अब तक महात्मा की बातें सहानुभूतिपूर्वक सुन रही थी, एक साथ आवेश में आ गई—"महात्मन् ! आप मुझ से यह कह रहे हैं कि अपने हाथों अपनी आँखें निकालकर दे दू, अपना कलेजा चीर डालूं और अपना सिर फोड़ डालूं। और यह सब परार्थ के लिए परमार्थ के नाम पर, कैकेयी में यह सामर्थ्य नहीं है महात्मन् !'

महात्मा—"हम जानते हैं कि बेटी कैकेयी में सब कुछ सामर्थ्य है। इस सुख के लिए कि राम के शीश पर मुकुट रखा है, तुम चाहती हो कि वह

सामान्य नरेशों की भाँति विलासी जीवन व्यतीत करके उन कोटि-कोटि जनों की भाँति लोप हो जाए जैसा सृष्टि में प्रतिदिन होता रहता है ? कैकेयी बेटी बुरा न मानना। तुम्हारा राम पर मोह है, स्नेह नहीं। अन्यथा तुम उसके उस महान् कार्य-क्षेत्र का मार्ग बन्द न करतीं जो अज्ञानवश तुम करने के लिये कह रही हो। आज हमें देखना है कि स्नेह विजयी होता है या मोह।"

कैकेयी के मस्तक पर स्वेदकण आ गये। वह महात्मा की बातों को वाक्जाल मानकर भी उनकी उपेक्षा नहीं कर पा रही। क्या वास्तव में राम की महानता के मार्ग में वह बाधक बन रही है ?

महात्मा ने देखा कि उनके कथन का अनुकूल प्रभाव पड़ा है तो उन्होंने आगे कहा—"रघुकुल की परम सौभाग्यशालिनी महिषी ! यदि राम पर तुम्हारा तनिक भी स्नेह है तो उसे नर ही मत रहने दो उसे नारायण-पद प्राप्त करने दो। वह जम्बू द्वीप के उत्तर से दक्षिण और पूर्व से पश्चिम तक का आराध्यदेव तभी बनेगा जब वह वहाँ की जनता की सेवा करेगा। अयोध्या की सभा में बँधा राम अपना परिचय रघु की बटोरी सम्पत्ति के बल पर ही दे सकेगा। लेकिन बेटी, जो मार्ग हम बतला रहे हैं उससे उसका परिचय असंख्य वर्षों तक जम्बू द्वीप विश्व के सम्मुख उन्नत-मस्तक होकर रखेगा और विश्व उसके चरणों में कोटि-कोटि बार मस्तक झुकाकर प्रणाम करेगा। इस समय तुम्हारे सामने दो दृश्य स्पष्ट हैं। एक राम अयोध्या का सामान्य नरेश और दूसरा राम जम्बू द्वीप के हृदय का सम्राट्, विश्व का वैभव। चाहो जिसे पसंद कर लो बेटी।"

कैकेयी धम्म से भूमि पर बैठ गई। मंथरा ने और कुछ समझाया नहीं किन्तु वह अवश्य जान गई कि यदि राम बनवासी हो जायँ तो अधिक महान् होंगे बजाय राजतिलक के। अतः उसने महारानी से कहा—"महारानी जी, महात्मा को ज़ो वचन दिया है उसका ध्यान रहे। आपके साथ आपके पितृकुल से यहाँ आई हूँ और इतना ही कहना चाहती हूँ कि पितृ और श्वसुर-कुल की मर्यादा का ध्यान न भुला देना।"

कैकेयी ने बहुत विचारा और फिर कहा—"महात्मन् ! कैकेयी अपना

शीष उतारकर आपको सहर्ष देने को प्रस्तुत है, किन्तु अपने प्रिय पुत्र राम को बनवासी बनाने की बात उसके ध्यान में नहीं आ रही है।"

महात्मा—"बेटी! भावावेश में न आओ। राम को महानतम् बनाओ, सामान्य नहीं। सोचो, इस समय तुम अपने मस्तिष्क का संतुलन खो बैठी हो, मोह ऐसा ही करता है। अच्छा ठीक है, हम तुम्हारा दिया हुआ बचन तुम्हें वापस करने को तैयार हैं, कहो, उसे लौटाना है?"

कैकेयी को प्रथम और इस अन्तिम वाक्य से झटका-सा लगा। उन्होंने कहा—"महात्मन्! राम को नारायण ही बनना है। आप स्पष्ट आदेश दीजिये। मैं अपना मोह हटाने का यत्न करूँगी फिर भले ही कोई उसे कुछ और समझे। आप बताइये मुझे क्या करना होगा?" कैकेयी ने जीवित रहते हुए मौत को कलेजे में बिठा लिया।

महात्मा—"तुम्हें याद होगा बेटी, महाराज दशरथ पर तुम्हारे दो वर उधार हैं। बस एक वर यह माँग लो कि राम १४ वर्ष के लिये वन में चला जाय। इतने समय में हम सब का उद्धार हो जायगा।"

कैकेयी निर्जीव-सी खड़ी हो गई। उनके नेत्रों में कोई भाव नहीं। बोलीं—"आप जाइये महात्मन्! ऐसा ही होगा। कैकेयी राम के लिये सब कुछ करने को तैयार है।"

× × ×

महाराज दशरथ को सूचना मिली कि कैकेयी कोपभवन में हैं। वे भूमि पर लेटी हैं और निराहार हैं। वे आये और साश्चर्य पूछा—"प्रिये, क्या कारण हुआ?" थोड़ी देर के मान के बाद कैकेयी ने महाराज को अपने वरों की याद दिला दी और सहर्ष वे उन्हें देने को तैयार हो गये। इतनी-सी बात के लिए कोप क्यों?

कैकेयी—"तो सुनिये महाराज! एक वर मैं यह माँगती हूँ कि राम को अविलम्ब १४ वर्ष का बनवास"—कहते-कहते उनका कलेजा टूट गया, पर फिर राम के प्रति अपने मोह को नष्ट करने के लिए उन्होंने हृदय मज़बूत किया और कहा—"भरत को राजतिलक हो, यह दूसरा वर दे दीजिये।"

दशरथ पास ही पड़ी पीठिका पर बैठ गये। यदि इस समय कैकेयी प्राण माँग लेती तो उनके लिये सरल होता। वे बोले—"जानती हो तुमने क्या माँगा है हमसे ? भरत को राजतिलक माँगना तुम्हारा समझा जा सकता है, वह तुम्हारी कोख में रहा, पर राम तुम्हारा कोपभाजन कैसे बना ? रानी ! एक बार फिर विचार करो।"

कैकेयी के कलेजे में छुरी चुभ गई। म्लान मुख बिलकुल श्याम हो गया, पर महात्मा को दिया वचन और राम की महानता के लिये पकड़ा मार्ग अब नहीं छोड़ा जायगा। उन्होंने कहा—"अगर कठिन बात है तो न दीजिये वर; पर कैकेयी को यही माँगना है।"

दशरथ—"जानती हो कि रघुकुल की रीति क्या है इसीलिए इतनी सरलता दिखला रही हो। अभी-अभी कुछ समय पहले तक जो राज-तिलक की व्यवस्था में इधर-उधर भागी-भागी फिर रही थीं, उसका क्या रहस्य है, कुछ बता सकोगी ? क्या वह सब नाटक ही था ?"

कैकेयी—"नाटक ! नाटक जाने पहला था या अब है। पर महाराज यह सुनिश्चित है कि राम को बनवासी होना पड़ेगा। वह अयोध्या से बाँधा जाना नहीं चाहिए, वह जम्बू द्वीप का महापुरुष है। आप उसे बन में भेज दीजिये।"

दशरथ—"कैकेयी ! राम की भलाई के लिये उसे वन में भिजवाने का डंका मत पीटो। अभिनय सच्चा हो तभी ठीक है।"

कैकेयी—"सच्चे अभिनय की कद्र कभी हुई है महाराज ? आपने ठीक ही किया, मैं फिर अपना रास्ता भूलने लगी थी। आप वर देने की बात कहिये।"

दशरथ वहाँ से उठे और पास के कक्ष में बिछी शैया पर लेट गये। वहीं से उन्होंने कैकेयी को पुकारा और कहा—"सुनो कैकेयी, हम तुम्हारे दोनों वर स्वीकार करते हैं।"

उसी समय कैकेयी यह सोचने लगी थीं कि महात्मा की बात में सच्चाई कहाँ तक है। पर अब वर स्वीकार हो गये थे। तीर चला और अपना लक्ष्य उसने वेध दिया।

मंथरा द्वारा राम के बनवास का समाचार यहाँ से वहाँ और वहाँ से वहाँ फैल रहा है। विभिन्न प्रतिक्रियायें हो रही हैं, पर जिसके लिये यह सब कुछ हुआ उसने लक्ष्मण के प्रश्न के उत्तर में कहा—"लक्ष्मण, माता पर क्रोध, ऐसा अन्याय ! उन्होंने तो मेरी भलाई के लिये ही सब कुछ त्याग किया है।" और वे मुस्करा दिये।

: १२ :

बन को प्रस्थान और शबरी का आतिथ्य

राम अपने पिता के कोमल हृदय को पहचानते हैं। वे यह भली-भाँति समझते हैं कि उनके मुँह से छोटी माता को दिये वचन को क्रियान्वित करने के लिये आदेश न निकल सकेगा। इसलिये उन्होंने सोचा कि क्यों न स्वयं चलकर पिता की द्विविधा दूर कर दी जाय।

उधर ज्यों-ज्यों देर हो रही है कैकेयी का मन ढीला होता जा रहा है। उन्हें अपने आप पर विश्वास कम पड़ता जा रहा है। लग रहा है कि

किसी भी क्षण कहीं मन धोखा न दे जाय इसलिए राम की भलाई के लिये यह आवश्यक है कि वे कलेजे पर पत्थर रखकर उन्हें शीघ्र ही बनवासी बना दें।

कौशल्या के कक्ष में सुमित्रा भी विद्यमान हैं और कुछ विश्वासपात्र और पिता के घर से आई हुई दासियाँ भी। दुर्घटना पर सम्भवतः चर्चा होते-होते काफी समय बीत गया है क्योंकि वार्तालाप में वातावरण गर्म न होकर उस तरह का है जैसे कोई देर तक रो-रोकर थक जाय और शांत हो जाय।

कौशल्या ने शांति-भंग करते हुए कहा—"छोटी बहिन कभी ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकतीं कि राम बन में चला जाय और भरत का राजतिलक हो। भरत तो यहाँ पर है भी नहीं। सब ऐसी बातें हैं जिन पर विश्वास करना कठिन है। अवश्य कुछ रहस्य है। राम के कारण अभी कुछ दिन पूर्व तो वह मुझ से रूठ जाया करती थीं।"

एक दासी बोली—"मन ही तो है, उसमें न जाने कब क्या अन्तर आ जाय कुछ कहा नहीं जा सकता। स्वयं मंथरा ने मुझ से समस्त बातें कही हैं।"

एक अन्य कक्ष में राम से लक्ष्मण कह रहे हैं—"आपके साथ अनुचर का चलना आवश्यक नहीं अनिवार्य है।"

राम—"लक्ष्मण! तुम तो विचित्र बातें करते हो। बनवास मुझे हुआ है या तुम्हें? तुम क्यों अयोध्या छोड़ोगे?"

लक्ष्मण—"भैया, बनवास तो लगता है समस्त अयोध्या को हुआ है। पर यह निश्चित है कि दास का निवेदन अस्वीकार न होना चाहिए।"

राम—"लखन! तुम भी सीता की भाँति हठ करने लगे। अरे हठ तो नारियों को ही शोभा देता है। बालकों की-सी बातें न करो।"

लक्ष्मण—"अभी उस दिन ही तो आप कह रहे थे कि त्रिया-हठ और बाल-हठ प्रसिद्ध हैं, और अभी आपने मुझे बालक कहा है इसलिए बाल-हठ को निबाहने का कष्ट तो करना ही पड़ेगा।"

राम—"नादानी अच्छी नहीं लक्ष्मण! यहाँ पिता हैं, माताएँ हैं,

बन्धु-बान्धव हैं और फिर तुम्हारी सहधर्मिणी अखंड सौभाग्यशालिनी उर्मिला की भी तो सम्मति आवश्यक है।"

लक्ष्मण—"आप भाभी को जिता देना चाहते हैं भैया ! उर्मि से मैं अभी पूछ लेता हूँ।"

राम—"उर्मि देवी को क्या राम नहीं जानता। यह पूछने का बहाना कोई अच्छा लगने वाला है ! लक्ष्मण तुम्हारा यहाँ रहना ही श्रेष्ठ है।"

लक्ष्मण को राम की सब बातों में यह कुछ वज़नदार लगी है कि सहधर्मिणी का परामर्श आवश्यक है। वे राजकुमारी उर्मिला के कक्ष की ओर चले। शायद वह दुःसंवाद अबतक वहाँ पहुँच चुका था क्योंकि सौभाग्यवती श्रुतिकीर्ति से उर्मिला की बातचीत इसी सम्बन्ध में हो रही है। लक्ष्मण को अंतिम वाक्य सुन पड़ा जिससे वे समझ गये कि अब अधिक कहना-सुनना नहीं पड़ेगा।

श्रुतिकीर्ति ने आगे बढ़कर लक्ष्मण के चरण स्पर्श किये और शुभाशीर्वाद पाकर वे अपने कक्ष की ओर चली गई। उर्मिला ने प्रश्नवाचक दृष्टि से लक्ष्मण की ओर देखा।

लक्ष्मण—"उर्मि ! शायद वह समाचार यहाँ भी पहुँच गया है। पूज्य भाई सम्भवतः आज ही प्रस्थान करने का विचार कर रहे हैं। उनके साथ जाने के लिये भाभी को स्वीकृति मिल गई है और वे माताओं से आज्ञाप्राप्ति के लिये गई हुई हैं। भाभी के साथ जाने पर यह आवश्यक हो गया है कि मैं भी साथ जाऊँ।"

उर्मिला ने रिक्त नयनों से एक बार लक्ष्मण की ओर देखा कि मानों पूछ रही हों कि तो फिर मुझे क्या आज्ञा है ?

लक्ष्मण—"पिता और माताओं की सेवा-सुश्रूषा के लिये उर्मि तुम यहीं रहोगी न ?" लक्ष्मण और किसी प्रकार न पूछ पाये।

फिर उर्मिला के नेत्र उठे; इस बार कुछ सजल और उन बोझिल नयनों ने बिना जिह्वा की सहायता के कह दिया कि आपकी जो इच्छा। आप जो चाहेंगे उर्मि वही तो करेगी।

लक्ष्मण जो पहले से जानते थे वही हुआ कि देवी उर्मिला ने कभी

स्वप्न में भी उनकी इच्छा का उल्लंघन नहीं किया है, पर इस समय उर्मिला यदि कुछ स्नेह के उलाहनेस्वरूप कुछ कह देती तो शायद लक्ष्मण अधिक स्वस्थता अनुभव करते। पर अब समय ही कहाँ है ? वे आगे बढ़े। उन्होंने उर्मिला का शीष अपने स्कंध पर रखा और तीन-चार बार अपना हाथ कोमलता से उस पर फेरा। उर्मिला स्नेह की इस पूंजी पर ही आगामी १४ वर्ष काट लेगी।

लक्ष्मण राम के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि भाभी सीता भी वहाँ विद्यमान हैं। लक्ष्मण को लौटते देख वे बोलीं—"मेरी बहिन को किसी प्रकार समझाकर आ गये आप। कहीं यह भी उचित है कि बनवास मिले किसी को और साथ में भुगते कोई और।"

लक्ष्मण—"यही तो मैं भी कहता हूँ भाभी ! बनवास भैया को मिला है अतः वे ही जायँगे, आपका जाना नहीं हो सकेगा। ऐसी चर्चा की कुछ भनक अभी रनिवास में मेरे कानों में भी पड़ी थी।"

सीता को एक साथ द्विविधा हुई कि कहीं माताओं ने अभी-अभी दिया निर्णय फिर बदल डाला है क्या ? वे बोलीं—"भैया ! ठीक कहो तुमने क्या कुछ सुना या ऐसे ही बातें करने लगे हो ?"

लक्ष्मण—"भाभी ! इसीलिए तो कहता हूँ कि जब आपकी भी वही स्थिति है तो फिर औरों की आलोचना न कीजिये।"

राम गम्भीर हैं, सीता में बालकों की-सी उत्सुकता है और लक्ष्मण अपने भीतर रिक्तता-सी अनुभव कर रहे हैं। हठात् राम ने कहा—"अब श्रेष्ठ मार्ग यही है कि हम पिता के पास चलें और उनके वचन का पालन करने के हेतु अयोध्या से प्रस्थान करें।"

ज्ञात हुआ कि महाराज महिषी कैकेयी के कक्ष में हैं। वहाँ पर-कटे पक्षी की भाँति वे बेचैन हैं और कैकेयी अपने अभिनय को अंत तक सफल निबाहने के उद्योग में संलग्न हैं। राम ने जाते ही पिता और माता के चरण छुए और भूमि पर नेत्र डाले हुए ही कहा—"माता की इच्छानुसार आप जो वचनबद्ध हुए हैं उसमें निस्संदेह अनुचर की कुछ भलाई ही है। जितने शीघ्र हम यहाँ से चले जायँगे लौटना भी उतनी ही

जल्दी होगा। आपके श्रीमुख से आदेश का अभिलाषी हूँ।" और वे शांत हो गये।

जल्दी लौटने की बात उन्होंने जान-बूझकर कही थी जिससे अवसर की गंभीरता कम हो जाय। पर फिर भी पिता, दशरथ, के मुँह से शब्द न निकल सका। कैकेयी ने कहा—"राम! बनवास की तैयारी तुमने कर ली जान पड़ती है। वहाँ न जाने कितने सत्कार्य तुम्हारी प्रतीक्षा में पड़े होंगे। १४ वर्ष की अवधि समाप्त कर शीघ्र ही लौटना।" फिर कुछ रुककर वे बोलीं—"यहाँ के राज-कार्य की चिन्ता न करना। भरत ने तुम्हारे सान्निध्य से बहुत कुछ सीख लिया होगा।" फिर उन्होंने लक्ष्मण और सीता की ओर लक्ष्य करके कहा—"इन दोनों ने भी राज-वस्त्र उतार डाले हैं—यह क्यों?"

लक्ष्मण बड़ा ज़ब्त किये खड़े थे। अब बोले—"माता! क्या भाई अकेले ही चले जायँगे? यह अनुचर जो सदैव ही इन चरणों में बैठा है यहाँ कैसे ठहर सकता है! आपकी अनुकम्पा से उसे भी थोड़ा पर्यटन और सेवा का अवसर मिल जायगा।"

पर्यटन की बात कितनी नुकीली थी, यह कहने वाला भले न समझा हो, पर सुनने वालों में कैकेयी और राम उसे सुनकर धक् से रह गये। फिर कैकेयी ने साहस बटोरकर कहा—"और यह राजवधू सीता?"

सीता—"माँ! यदि आज्ञा हो जायगी तो यह दासी भी कुछ समय आर्यपुत्र के चरणों का गन्दोदक ले सकेगी।"

वातावरण फिर गम्भीर हो गया। अब शायद कैकेयी का साहस भी समाप्त हो आया, वे भी कुछ बोलने का साहस नहीं कर पा रहीं। अंत में राम ही ने कहा—"तो फिर माता, आपकी आज्ञा हो तो हम लोग प्रस्थान करें।"

कैकेयी कुछ चुप रहीं; सम्भवतः सोच रही हैं कि महाराज कुछ बोलें, पर जब वे न बोल सके तो उन्होंने कहा—"वत्स! कल प्रातः जाने से क्या न चलेगा? कल ही प्रस्थान करना शुभ होगा।"

राम—"जो आज्ञा माता!"

रात के दूसरे पहर मंत्रिवर सुमंत्र की बुलाहट हुई, उन्हें उस कुवेला

में रनिवास के भीतर उसी कक्ष में दशरथ ने बुला भेजा।

सुमंत्र—"आज्ञा महाराज ?"

दशरथ—"अब क्या होगा सुमंत्र ? हम शरीर त्याग करना चाहते हैं।"

सुमंत्र—"महाराज ! कहीं यह भी हो सकता है। कुछ ही वर्षों में तो युवराज अयोध्या लौट आवेंगे।"

दशरथ—"तुम नहीं समझते मित्र, आज हमें श्रवणकुमार के पिता का श्राप सामने दिखाई पड़ रहा है। अच्छा, जो होगा देखा जायगा, पर कल प्रातः तुम्हीं उन लोगों को छोड़ आना। सुना है सीता और लक्ष्मण भी साथ जा रहे हैं। एक प्रकार से हमें इस पर संतोष है।"

प्रातःकाल ही सुमंत्र अपना रथ राजभवन के सिंहद्वार पर लाने को कहकर स्वयं पहले ही वहाँ पहुँच गये। राजभवन में आज विचित्र-सी दशा व्याप्त है। महारानी कौशल्या और सुमित्रा अपने कक्षों में पड़ी हैं किन्तु कैकेयी सम्भवतः अस्वस्थ हैं क्योंकि मंथरा रात भर इधर-उधर भागती-दौड़ती रही हैं।

राम, सीता और लक्ष्मण सादा वस्त्रों में पूजा आदि से निवृत्त हो सबसे विदा लेने अलग-अलग कक्षों में हो आये। माता कैकेयी मूर्छित होने के कारण आशीर्वाद न दे सकीं और सब भी आशीर्वाद देकर कक्ष से बाहर न आ सकीं। महाराज दशरथ कल से उसी शैया पर पड़े हैं। इस प्रकार राम, सीता और लक्ष्मण जब रनिवास से बाहर आने को हुए तो उर्मिला ने धीरे से आकर तीनों के पैर छुए। किसी ने कुछ न कहा, पर राम बोले—"शुभे ! तुम्हें आशीर्वाद देकर हम धन्य हैं।" ज्यों ही उन तीनों के पैर बाहर की ओर मुड़े उर्मिला भी मूर्छित होकर पीछे लुढ़क गईं। शायद लक्ष्मण को इसका पता भी न लगा हो और लगा भी होगा तो उन्होंने पीछे मुड़कर नहीं देखा।

अयोध्यावासी सम्भवतः सभी द्वार पर एकत्र हैं। कदाचित् कुछ के मन में हिंसा की भावना भी जागृत हो रही है, क्योंकि उस पूर्ण नीरवता के वातावरण में एक ओर कुछ युवकों में वाद-विवाद और कुछ चर्चा चल पड़ी है। राम ने कहा—"बन्धुओ एवं बहिनो ! आप में से बहुत से हमारे

गुरुजन के समान हैं उनसे हमें यह कहना है कि वे रघुकुल की रीति से भलीभाँति परिचित हैं, अतः पूज्य पिता के उसी रीति की परम्परा को निबाहने का वे स्वागत करेंगे। हम भी उसी कुल के बालक हैं। इसलिए हम भी पिता के वचन-पालनार्थ बनवास करने जा रहे हैं। छोटी माता ने हमारी किसी बड़ी भलाई के लिए ही ऐसा वर माँगा है। आप अब हमें विदा दीजिये।" और उन्होंने अपने दोनों हाथ मस्तक पर रखकर अभिवादन किया।

सुमंत्र राजाज्ञा-पालनार्थ सारथी बनने जा रहे हैं, पर वैसे भी हृदय से वह इस कार्य की कामना कर रहे हैं क्योंकि जितना सान्निध्य राम का उन्हें प्राप्त रहे उतना ही भला है। आखिर राम आगे बढ़े और उनके पीछे सीता और लक्ष्मण भी। वे पैदल ही आगे बढ़ना चाहते हैं। पर सुमंत्र ने कहा—"युवराज ! रघुकुल की परम्परा का अभी उल्लेख कर चुके हैं, फिर यह कैसे सम्भव है कि राजकुमार राजभवन के द्वार से कहीं पैदल जायँ। यह सारथी और यह रथ इसी निमित्त हैं।"

राम—"मंत्रिवर ! इसकी क्या आवश्यकता है ?"

सुमंत्र ने रथ के पीछे का भाग खोल दिया, और राम बिना और कुछ कहे उसमें बैठ गये। पीछे सीता और लक्ष्मण भी पहुँच गये। रथ के बरधा भी शोकाकुल प्रतीत होते हैं इसीलिए तो वे वेग से नहीं चल पा रहे, पर बरधा भी क्या करें अपार जनसमूह जो चारों ओर समुद्र की भाँति लहरा रहा है। रथ को आगे बढ़ना ही है तो बढ़ चला। नगर की सीमा पार करते ही राम ने कहा—"मंत्रिवर ! अब आप लौट जाइये, हम लोग चले जायँगे। पिता जी को इस समय आपकी उपस्थिति की बड़ी भारी आवश्यकता है।" पर सुमंत्र नहीं जाना चाहते। फिर आगे बढ़े। सामने गंगा का पवित्र जल बह रहा है। अब राम ने निश्चयात्मक ढंग से कहा—"मंत्रिवर ! अब आपको लौट जाना ही होगा।" और वे रथ से कूद पड़े।

सुमंत्र ने भावावेश में राम को गले से लगा लिया और ज्यों ही उनका मुख सामने आया, देखा, नेत्रों से अश्रुधारा गतिमान होकर बह रही है।

राम भी आर्द्र हो रहे हैं किन्तु उन्होंने कहा—"मंत्रिवर ! आपको यह सब शोभा नहीं देता ।"

सुमंत्र—"यह शीश कटकर गिर जाना चाहिए यदि इन नेत्रों में प्रेम और प्रसन्नता के अश्रु न आवें क्योंकि रघुकुल की रीति को इस आदर्श रूप में निभता देखकर सुमंत्र पत्थर बना नहीं रह सकता।" सुमंत्र ने क्या कहा उन्हें स्वयं कुछ पता नहीं और न राम ने ही समझा क्योंकि हृदय की सत्य बात वे समझ रहे हैं ।

सुमंत्र लौट पड़े और वे तीनों आगे बढ़े। सामने केवल एक केवट दिखाई दिया जो संकेत मिलने पर पास आ गया ।

केवट ने उन्हें सादर नाव में बिठा लिया । जब नाव मँझधार में थी तो राम को ध्यान आया कि इसकी उतराई के लिए कुछ मुद्रा तो चाहिए, पर सम्भवतः किसी के पास भी कुछ नहीं होगा । उनकी द्विविधा लक्ष्मण और सीता भी समझ गये । पर वे भी लाचार हैं । इतने में सीता को ध्यान आया और उनके नेत्र अपनी मुद्रिका की ओर गये और उसे अँगुली में देख उन्हें संतोष हो गया ।

उस पार पहुँचने पर सीता ने मुद्रिका उतारकर राम को दे दी और निकट है कि वे उसे केवट को दे दें, पर उसे लक्ष्य कर केवट ने कहा—"महाराज ! मुझ से यह अधिकार भी छीन लीजियेगा कि आपकी इतनी-सी सेवा भी कर सकूँ । मुझ दीन को लज्जित कर और दीन न बनाइये ।"

राम—"पर भाई, यही तो तुम्हारी आजीविका का साधन है। उतराई तो तुम्हें लेनी ही चाहिए। वह तुम्हारा अधिकार है ।"

केवट—"प्रभु ! यदि ऐसा ही है तो जब कभी अवसर आवेगा मैं आप से उतराई ले लूँगा । सुनता हूँ भवसागर पार करने में बड़ी कठिनाई होती है । मेरी उतराई उसी समय के लिये उधार समझिये ।"

राम—"पर भाई, तुमने यह जाना कैसे कि मैं अयोध्या का राम हूँ ?"

केवट—"महाराज ! आज प्रातः से इसी जंगल में रहने वाली शबरी तो कितनी बार दौड़ी-दौड़ी फिरी है। वह तो भोर से ही आपके आगमन

की प्रतीक्षा में है। देखिये न वह सामने झाड़ों का झुरमुट है। उसकी कुटिया उससे कुछ ही दूर पर तो है। आप शीघ्रता कीजिये, उस बावली ने अभी तक कुछ खाया भी न होगा।"

राम अब आगे बढ़े तो वास्तव में उन्होंने देखा कि उस पदरेखा को इतनी स्वच्छता के साथ बुहारा गया है कि तिनके का नाम तक नहीं है। कुछ और आगे बढ़े तो उन्होंने देखा कि सामने एक कुटिया है। उसके सम्मुख एक स्त्री अपने सिर के बालों से भूमि को बुहार रही है। यह स्नेह की पराकाष्ठा है। राम ने आगे बढ़कर स्नेहपूर्ण नेत्रों से शबरी की ओर देखा, वह पैरों में गिर पड़ी। पर फिर उठी और विक्षिप्त-सी कुटिया में भीतर दौड़ गई और बेरों की एक टोकरी उठा लाई। और एक-एक कर वह राम, सीता और लक्ष्मण को देने लगी। राम प्रेम पगे बेरों को बड़े प्रेम से खाने लगे, पर लक्ष्मण का हाथ रुक गया तो शबरी ने कहा—"खा के देखो भैया, सब बेर मैंने चखकर रखे हैं। कोई भी खट्टा या सीठा न होगा। खाओ मेरे लाल!"

न जाने कब तक वहाँ बैठे रहे, पर जब सीता ने कहा कि रात्रि का आगमन होने वाला है अतः आगे किसी आश्रम में चलना चाहिए तो राम को उठना ही पड़ा। शबरी बहुत दूर तक साथ-साथ चली पर फिर अशक्यता के कारण और राम के बार-बार अनुरोध से वह रुक गई। कुछ आगे चलकर राम ने कहा—"शबरी ईर्षा के योग्य है।"

: १३ :

बन में भ्राता सम्मेलन

कितने आश्रमों में घूमते नये स्थानों का परिचय प्राप्त करते राम, सीता और लक्ष्मण हर स्थान पर मित्र बनाते चित्रकूट पर निवास करने लगे हैं। जहाँ भी राम जाते हैं आश्रमों के ऋषि-कुमार उनसे अनेक प्रकार के बाण चलाना सीखते जाते हैं। शब्द-भेदी बाण चलाने में सौमित्र पारंगत हैं।

चित्रकूट पर चारों ओर एक छोटी-सी वाटिका बनाई गई है और विभिन्न प्रकार के फल-फूल के पौधे वहाँ लहलहा रहे हैं। चित्रकूट एक ऐसे ऊँचे स्थान पर स्थित है जहाँ से चारों ओर के दूर-दूर जाने वाले दृष्टिगोचर होते हैं। सारंग, शुक-पिक और सारी आदि पक्षी जानकी ने पाल लिये हैं।

एक दिन राम बैठे थे। सीता, लक्ष्मण और कुछ ऋषि-कुमार तथा निकट के ग्रामवासी बैठे बातचीत कर रहे थे। राम उन्हें अपने कुल की, कहानियाँ सुना रहे थे कि उत्तर दिशा से धूल के बादल उड़ने लगे। एक नवयुवक बोला—"प्रभु! आँधी किस वेग से चली आ रही है, पर आकाश स्वच्छ है। कहीं भी बदली का नाम नहीं हैं।"

सभी उपस्थितों के नेत्र उस ओर जा लगे। कुछ ही देर में धूल के बादलों में से मानव-आकृतियाँ स्पष्ट हो गईं। रथों के बरधा दिखाई पड़ने लगे। राम के कुशल नेत्र सब से आगे चलने वाले निशान पर पहुँचे,

तो उन्होंने सहज ही कहा—"लक्ष्मण ! ये तो भरत के निशान हैं। उनका लश्कर ही चलता चला आ रहा है।"

उधर देखते हुए लक्ष्मण बोले—"प्रभु ! भरत का आगमन मेरे हृदय में शंका जागृत कर रहा है। उन्हें इतने से भी संतोष न हुआ। क्या हमें यहाँ इस दशा में भी देखना नहीं रुचा ?"

सेना की टुकड़ी और स्पष्ट हो गई। रथ पर भरत का ध्वज बिलकुल दीखने लगा, लक्ष्मण विचलित हो गये। "प्रभु ! मुझे भरत के आगमन पर संदेह बढ़ता जा रहा है। वे इस सेना के साथ किस भावना से यहाँ आ रहे हैं ?"

राम के नेत्र उधर लगे हैं और वे विचार-मग्न हैं। लक्ष्मण—"प्रभु ! आदेश दीजिये मेरे हाथ तूणीर पर पहुँचने को लालायित हैं। अधिक विलम्ब का परिणाम शुभ नहीं निकलेगा।"

राम—"जब अयोध्या से प्रस्थान किया था भरत उपस्थित न थे। उन्हें देखने की कामना हो निकली है।" इसके आगे वे कुछ न बोले।

लक्ष्मण—"भाभी ! परिस्थिति समझिये। राजनीति में क्या सम्भव नहीं ? छोटी माता को हमारे १४ वर्ष की अवधि के बाद भी तो कई संदेह हो सकते हैं। भैया ! आदेश दीजिये। यह कोड़ी भर शर इस सेना के लिये पर्याप्त हैं। मैं अधिक विलम्ब नहीं करना चाहता।"

राम—"लखन ! रघुकुल की राजनीति पर शंका का कोई कारण नहीं। देखो, भरत ने सम्भवतः हम लोगों को देख लिया, वे अपने अंग-रक्षक से कुछ कह रहे हैं। सत्यमार्ग का अनुगमन करने वाले इतनी जल्दी विचलित नहीं होते, लक्ष्मण !"

अब भरत और उनके साथी बिलकुल दिखाई देने लगे। तभी राम ने देखा कि भरत रथ से उतरकर साष्टांग दण्डवत कर रहे हैं। बहुत देर तक भूमि पर पड़े रहने के बाद वे उठे और दोनों हाथ अभी भी मस्तक पर रखे हैं और वे आगे बढ़ रहे हैं।

राम—"देख रहे हो लक्ष्मण ! जल्दी किसी काम में भी अच्छी नहीं होती। जाओ, कुटिया के द्वार पर उनका स्वागत करके ले आओ। पर ये सब बैठेंगे कहाँ ? वह देखो हमारा बाल-साथी अपाप और तुम्हारा

मित्र जयदेव भी प्रणाम करते हुए आ रहे हैं ।"

कुछ ही देर में भरत द्वार पर आ गये । लक्ष्मण से एक साथ गले मिले और उनके नेत्रों से बहती अविरल अश्रुधारा से लक्ष्मण का स्कंध भीग गया । लक्ष्मण के हृदय में जो कुछ विपरीत भाव उदय हुए थे वे सब उस खारी पानी के साथ धुल गये ।

भरत ने पर्णकुटी में प्रवेश किया और कटे वृक्ष की भाँति वे राम के चरणों में गिर पड़े । अब राम उन्हें उठाना चाहते हैं, पर वे नहीं उठते । सीता ने कहा—"भैया भरत ! इस प्रकार व्याकुल होना तुम्हें शोभा नहीं देता । एक को देखो वज्रहृदय बनकर यहाँ चले आए हैं और रघुकुल की रीति के नाम पर सर्वस्व निछावर करने को तत्पर हैं, क्या भरत से इतनी आशा भी न करें कि यहाँ एकत्र बनवासियों के सम्मुख इतनी कातरता का परिचय तो न दें ।"

भरत—भाभी ! भरत अब तक जीवित है इसका आश्चर्य क्या न होना चाहिए ? जिसको केन्द्र-बिन्दु मानकर यह वृत्त खींचा गया है वह आज अपने आपको आप सबके बिना कितना असहाय अनुभव कर रहा हैं । मुझे इसी भाँति पड़ा रहने दीजिये ।"

पर राम ने दोनों हाथों से उन्हें उठा लिया और हाथ से मस्तक और केशों में लगी धूल झाड़ डाली । इसी बीच भरत बोले—"अब भरत आपको लिवाने आया है । आज्ञा दीजिये कि अयोध्या को प्रस्थान किस समय होगा ?"

राम—"कुल की रीति का ध्यान बिलकुल दूर कर दिया क्या ? पीढ़ियों से जो परम्पराएँ चली आ रही हैं, जो मर्यादा बँधी हैं उन्हें भावुकतावश यों ही मेट देना चाहते हो ? पहले विचार कर लो तब कुछ कहो भरत ! तुम हम सब में अधिक विचारवान् हो ।"

भरत—"प्रभु ! यदि यही आज्ञा है तो फिर अनुचर के साथ आए हुए अयोध्यावासियों को लौट जाने का आदेश दे दीजिये । भरत यहीं बना रहना चाहेगा ।"

राम—"भरत ! बालकपन न करो । अयोध्या में किसके भरोसे

रहा जायगा ? क्या एक साथ ही कुल की सभी रीति भुला देना चाहते हो ?"

भरत—"प्रभु ! मैंने निरंतर आत्मनिरीक्षण किया है और इस परिणाम पर नहीं पहुँच पाया कि मैं दोषी हूँ। हाँ, एक ही दोष चारों ओर से प्रकट हो रहा है कि भरत ने कैकेयी के कुक्ष से जन्म लिया।"

राम—"भरत ! छोटी माता के पेट से जन्म लेने वाले को महान् गर्व का अनुभव होना चाहिए। बड़ी तपस्या करने पर वह वरदान मिला करता है और फिर तुम बात किस दोष की कर रहे हो ? मेरी समझ में तो अब तक नहीं आया।"

भरत—"जो बात आज सर्वविदित है प्रभु ! उसके लिए भरत ही तो उत्तरदायी ठहराया जा रहा है।"

राम—"बस, इतनी-सी बात है। जो न जाने और कुछ कहे, क्या उस पर कान देना उचित है, और जो जानता है वह कभी ऐसी कामना भी नहीं कर सकता। राम का प्रिय भरत अच्छा हुआ कि उस समय मामा के घर पर था अन्यथा वह राम के प्रति अपने मोह में पिता के वचन-पालन में बाधा नहीं तो द्विविधा अवश्य उत्पन्न कर देता। पर भरत अभी-अभी तो तुम हमारा आदेश प्राप्त कर रहे थे।"

भरत—"वह तो जब तक भरत के शरीर में रक्त का एक बिन्दु शेष रहेगा प्राप्त किया जायगा।" इतना कहकर उन्होंने झुककर राम के चरण छू लिये।

राम—"तो भाई, हमारी सम्मति है कि तुम यथाशीघ्र अयोध्या लौट जाओ और वहाँ पर शासन चलाओ जिससे प्रजा की सुख-समृद्धि में वृद्धि हो और वह हमारे कुल को अपना वैसा ही सेवक माने जैसा कि अब तक मानती रही है। पिता, माताओं और कुल बन्धुओं का ध्यान भी तो रखना होगा।" इतना सुनते ही भरत एक बार बालकों की भाँति रो पड़े। उन्होंने बताया कि पूज्य पिताजी के स्वर्गवासी होने पर ही तो उन्हें ननिहाल से बुलाया गया था। राम, सीता एवं लक्ष्मण शोक-सागर में डूब गये।

भरत—"यह आदेश है प्रभु ? न स्वयं अयोध्या लौटेंगे और न

अनुचर को यहाँ रहने देंगे ? बन्धु लक्ष्मण का सौभाग्य ईर्षा करने योग्य है। उनकी सेवावृत्ति सार्थक है।"

राम—"निस्संदेह लक्ष्मण का स्नेह ईर्षा-योग्य है। कभी-कभी सोचा करता हूँ कि यदि कोई अग्रज होते तो क्या लक्ष्मण के शतांश भी सेवा मुझसे बन पड़ती। लेकिन भरत जो परामर्श तुम्हें दिया जा रहा है वह गहराई में इस स्नेह से किसी प्रकार भी कम नहीं। अयोध्या में भरत तुम्हारी आवश्यकता है। राम के हृदय को भी तुम्हारी आवश्यकता नहीं है, यह नहीं पर अयोध्या को प्राथमिकता दी जानी चाहिए।" इतना सुनते ही भरत ने पुनः राम के चरण छुए और अपने को धन्य माना।

राम—"भरत! अब जितनी जल्दी सम्भव हो, अयोध्या लौट जाओ, और अपने उस बड़े परिवार का ध्यान करो जिसमें कौशल राज्य के समस्त प्रजाजन आ जाते हैं।"

भरत और उनके साथ आए अयोध्यावासी कितने दिनों से पर्ण-कुटी के निकट शिविर बनाये पड़े हुए हैं। वर्षा निकल चुकी और अब शरद् का आगमन हो रहा है। राम ने भरत से कल ही अयोध्या लौट जाने के लिए कहा और वियोग की कल्पना से हर समय प्रफुल्लित रहने वाले चित्रकूट में गम्भीर वातावरण छा गया।

साथ रहने के क्षण इतनी जल्दी व्यतीत हो गये कि किसी को इसका भान ही न हो पाया। ब्रह्म मुहूर्त से ही चित्रकूट में चहल-पहल शुरू हो गई और अब प्रस्थान की वेला आ पहुँची।

भरत ने कहा—"प्रभु! भरत को आपने अयोध्या का शासक नियुक्त किया है न, तो आप अपनी चरण-पादुकाएँ दे दीजिये, उन्हीं की ओर से अनुचर शासन करता रहेगा। यदि कहीं यह प्रार्थना भी स्वीकृत न हुई तो फिर भरत विद्रोही हो जाय तो उसके लिये मुझे दोष न दीजियेगा।"

राम—"पर चरण-पादुका तो हमारे पास एक जोड़ी ही है। उन्हीं को हम व्यवहार कर रहे हैं फिर नंगे पैर न रह जायँगे ?"

अपाप ने तुरन्त एक जोड़ी नई पादुकाएँ सेवा में प्रस्तुत कर दीं, और राम ने बिना कुछ कहे अपने पैरों से अपनी पादुकाएँ उतारकर भरत की ओर बढ़ा दीं।

एक बार फिर विदा का दृश्य उपस्थित हो गया। अति करुण और हृदयस्पर्शी। भरत ने बार-बार राम और सीता के चरणों की धूल मस्तक पर लगाई और अनेक बार लक्ष्मण से गले मिले। फिर भारी पैरों से लश्कर अयोध्या की ओर लौट पड़ा।

: १४ :

राजा रावण भिक्षुक के रूप में

अब अयोध्या की याद धुँधली पड़ गई है क्योंकि पंचवटी ही घर बन गई है। प्रातः और सायं जब बढ़ती जा रही वाटिका में लगे पौधों का सिंचन होता है तो वैदेही हर पेड़-पौधे का इतिहास इस प्रकार वर्णन करती हैं मानों किसी मानव का परिचय किया जा रहा हो। पंचवटी ने एक छोटे-से आश्रम का रूप ले लिया है क्योंकि दिन भर में न जाने कितने अतिथि-अभ्यागत आते रहते हैं। दिन बड़े आनन्दपूर्वक व्यतीत हो रहे हैं, और तभी जानकी ने गणना करके सोल्लास कहा कि अयोध्या लौटने का समय निकट आता जा रहा है और इन पौधों और हरिणों का क्या होगा ?

ऐसे ही एक दिन ब्राह्म मुहूर्त में पौ फटने से पूर्व जब कि पर्ण-

कुटी के बाहर सौमित्र बैठे थे उन्हें अयोध्या का ध्यान हो आया, शायद इसलिए कि गत संध्या को वैदेही ने अयोध्या लौटने का उल्लेख किया था। सहज ही मन साध्वी उर्मिला की ओर पहुँच गया और वह काल्पनिक दृश्य नेत्रों के सम्मुख आ गया कि लौटने पर उर्मि का मान किस ढंग पर होगा। नेत्र ललाट, ग्रीवा और स्कंध की भंगिमाओं की ओर चले गये, और यह भी दीखने लगा कि उन्होंने निकट पहुँचकर चिबुक—कि तभी एक मधुर शब्द कानों में पहुँचा—"तपस्वी युवक! कब से प्रतीक्षा में खड़े-खड़े हो गये इधर देखने का अवकाश भी नहीं। एक बार तो नयन उठाओ।"

चार पग दूर एक अनिंद्य सुन्दरी कटि पर हाथ रखे नशीले नयनों से सौमित्र की ओर देख रही है, यह नेत्र ऊपर करते ही उन्होंने देख लिया।

लक्ष्मण—"देवि! आप अपना शुभ परिचय देने की कृपा कीजिये और यहाँ आने का अभिप्राय भी प्रकट कीजिये।"

सुन्दरी—"कैसे मीठे शब्द कह डाले! इस बला में यहाँ आने का अभिप्राय भी कहलाना चाहते हो चतुर युवक, हम बनदेवियों का परिचय ही क्या?"

लक्ष्मण—"अनुग्रहीत हुआ देवि! मैं वास्तव में अभी तक आपका अभिप्राय नहीं समझ पाया। यदि इसी को चतुराई कहा जाता है तो आपकी और हमारी भाषा में बड़ा अन्तर जान पड़ता है। आज्ञा कीजिये।"

सुन्दरी—"निकट की इस कुटिया में आनन्द करने का समय है हृदयेश्वर!…" हृदयेश्वर शब्द सुनते ही लक्ष्मण खड़े हो गये। उनका स्वभाव कुछ उग्र हुआ—"हमारे उधर तो इस प्रकार का सम्भाषण अपरिचितों से, वह भी प्रथम भेंट में ही, करने की परम्परा नहीं। हम बनवासियों में आपको उचित आसन देने की सामर्थ्य तक नहीं।"

इतने में कुटी के द्वार खुले और वैदेही और राजीवलोचन राम द्वार पर दृष्टिगोचर हुए। लक्ष्मण के अंतिम शब्द उन्होंने सुन लिये, पर वे यह न समझ पाये कि यह सुन्दरी आख़िर है कौन और रात्रि के अंतिम

पहर में यहाँ जंगल में कैसे पहुँची ? उन्हें देखते ही लक्ष्मण को थोड़ी लज्जा का अनुभव हुआ, पर तुरंत ही उन्होंने झुककर उनके चरण स्पर्श किये। आशीष वचन कहते हुए राम ने पूछा—"प्रिय ! ये देवि कौन हैं जो न जाने कब से खड़ी है और तुमने आसन भी प्रस्तुत नहीं किया आप ही कहिए देवि, इस कुवेला में कहाँ से और कैसे आगमन हुआ ?"

लक्ष्मण को संतोष हो गया कि अब मुझ पर से संकट टल गया पर वह सुन्दरी बोली—"हम बनदेवियों का कोई विशेष स्थान नहीं बन में विचरण करती रहती हैं इसी से तो हम बनदेवी हैं। इतना मधुर समीर, विश्रामकाल, चन्द्र की मुस्कान, इस युवक को मैंने प्रिय बोलने के लिए प्रेरित किया पर यह तो नीरस, शुष्क जान पड़ते हैं।"

सीता को लक्ष्मण के मुख पर क्रोध और लज्जा के मिश्रित भाव देखकर हँसी करने का मन तो आया बोली—"बहिन ! आपने ठीक युवक खोज निकाला पर इनका मन बड़ा विचित्र है, घर पर भी युवती उत्तमांगा को छोड़ आए हैं। कोई हानि नहीं यदि आपके साथ कुछ समय हँस-बोल लें।"

सुन्दरी—"आपने ठीक ही कहा; पर ये कौन हैं तुम्हारे, इन्हें समझाओ तो सही।"

लक्ष्मण—"भाभी ! आप क्या कह रही हैं ? देवि, ये मेरे अग्रज राम और भाभी हैं, इनके सम्मुख इस प्रकार की बात मुझसे न करें इसका ध्यान रहे।"

सुन्दरी पहले ही से राम की ओर आकर्षित हो रही थी, बोली—"शुभ राम, आप ही मुझे ग्रहण कीजिये। इस अभिसारिका की कामना···

इतना सुनना था कि सीता और लक्ष्मण को क्रोध हो आया, पर राम ने सहज भाव से कहा—"देवि ! आपने पहले हमारे अनुज पर अनुराग प्रकट किया था अतः हमारे लिये कन्या के समान होगईं।"

सुन्दरी कुछ आगे बढ़ी और लक्ष्मण की बाँह गहते हुए बोली—"मन के स्वामी ! चलो अब तो आ जाओ।"

आमंत्रण देकर मेरी पूज्या बन गई हो, अब इस प्रकार का व्यवहार न करना ।"

दोनों ओर से तिरस्कृत होकर सुन्दरी का रूप विकराल हो गया। उसने धमकीभरे शब्दों में कहा—"तो कान खोलकर सुन लो, मैं कोई साधारण स्त्री नहीं, लंकापति रावण की बहिन लगती हूँ जिसके कारण तीनों लोक थर-थर काँपते हैं । अब अंतिम बार अवसर देती हूँ, या तो तुम दोनों में से कोई मुझे अंगीकार कर लो अन्यथा मेरे क्रोध के कोपभाजन बनने को तैयार रहो । मुझे सामान्य नारी न समझना, मैं पुरुषों से भी अधिक पौरुषवान हूँ ।" इतना कहकर उसने लक्ष्मण से आलिंगन करने का यत्न किया कि क्रोधावेश में लक्ष्मण ने उसके कान पकड़कर उखाड़ लिये, और वह अपशब्द बकती-चिल्लाती भाग खड़ी हुई ।

इस प्रकार इस अप्रत्याशित घटना का अंत हुआ, पर राम के मुख पर थोड़ी मलिन छाया आ गई जिसे जानकी ने लक्ष्य कर लिया, बोली—"क्यों देव ! कोई अप्रिय बात हो गई ?"

राम—"नहीं सीते ! आगामी घटनाओं की छाया पड़ती जा रही है । चलो, प्रभात हुआ ही चाहता है, अब नित्यकर्म से निवृत्त होकर सामयिक में लगें ।"

उधर कान कटाकर भागी शूर्पणखा सीधी रावण के दरबार में जा पहुँची—"भैया ! ये कान देख रहे हो । एक मामूली से युवक ने इन्हें यह सुनकर काट डाला कि मैं तुम्हारी भगिनी हूँ । मुझे अपने दुःख और कष्ट का कोई खेद नहीं, किन्तु तुम्हारे अपमान को सहन करना मेरे बस की बात नहीं ।"

रावण ने देखा और पूछा—"किस की मृत्यु उसे आह्वान कर रही है, बताओ तो यह कुकृत्य किसने किया ?"

"भैया ! पंचवटी में दो भाई और उनकी स्त्री ठहरे हुए हैं । वह स्त्री बड़ी सुन्दरी है, वह तो सिंहल की महिषी होने योग्य है, इसी निमित्त मैं उससे बातें करने पहुँच गई कि उसके देवर ने मुझे छेड़ा और जब मैंने तुम्हारा नाम लिया तो उसने यह दशा कर दी ।"

रावण समझ गया कि स्त्री के सौंदर्य की चर्चा क्यों की गई;

फिर भी उसने कहा—"अच्छा, उस स्त्री को यहाँ ले आया जायगा और उस युवक को भी दण्डित कर दिया जायगा। तुम शल्य-चिकित्सक को बुलाकर चिकित्सा करा लो।"

रावण को न जाने कब-कब की बातें याद हो आईं। सीता का स्वयंवर; राम द्वारा धनुष-भंग; और भी न जाने क्या-क्या। उसने निश्चय किया कि स्वयं ही जाना उचित होगा। पर राम का पराक्रम वह पहचानता है इसलिए राम की अनुपस्थिति में ही सीता से भेंट उचित है।

राज्य के बहुरूपियों की पुकार हुई और उनमें सर्वश्रेष्ठ मारीच को बुला लिया गया। मारीच को रावण पहले से ही पहचानता है। मारीच को पूरा समाचार सुना दिया गया और उससे स्वर्ण-हरिण का रूप धारण करके राम को हटा लेने के लिए कहा गया। मारीच पुराना भुक्तभोगी है। सुबाहु के साथ उसे भी बाण लगा था और यदि समुद्र की कृपा नहीं हुई होती तो आज वह जीवित भी न होता। उसने इन्कार किया। पर ज्यों-ज्यों उसने अनिच्छा प्रकट की रावण का क्रोध बढ़ता गया। उसे राजद्रोही की उपाधि दे दी गई। तब यह सोचकर कि रावण के हाथ से मरने की अपेक्षा राम के हाथ से ही प्राण गँवाना कहीं अच्छा है, वह तैयार हो गया और उसी क्षण दोनों ने पंचवटी के लिये प्रस्थान किया।

मारीच का रूप और अभिनय सफल रहा। राम पीछे चल पड़े। अब लक्ष्मण सीता के पास थे, यह अवसर भी बातचीत करने के लिये उपयुक्त न देख रावण ने राम के शब्दों में कहा—"लखन! शीघ्र आओ। कुछ व्याघ्रों ने हमें घेर लिया है।"

लक्ष्मण को यह करुण शब्द सुनते ही भागना पड़ा और अब राजा रावण ने एक भिक्षार्थी का वेष धारण कर सीता से भिक्षा की याचना की। योजनानुसार सब कार्य हो गये और रावण सीता को अपने विमान में ले आया। वेष उसने बदल लिया और असली रूप में आकर पूछा—"सीता! पहचानती हो इस व्यक्ति को?"

सीता ने देखा और कुछ-कुछ पहचाना, पर बोली कुछ नहीं।

रावण—"शायद अभी तक मुझ अभागे की ओर से घृणा कम नहीं हुई है। याद करो, जनकपुर में स्वयंवर से पूर्व।" कुछ रुककर फिर बोला—"यदि अपने से भी अधिक मैंने किसी को प्यार किया है तो केवल तुम्हें; और यही समझकर कि तुम्हारा झुकाव राम की ओर है धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने का यत्न मैंने न किया। विश्वास करो सीते! मैंने यह तो स्वीकार किया कि स्वयं वियोग झेल लूँ, पर यह नहीं कि तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल तुम्हारा वरण करूँ। सच मानो धनुष की तो बात क्या है कहो तो समस्त जनकपुरी को उठाकर कहीं और रख दूँ।" फिर कुछ रुककर कहा—"आज अपने अंतर्द्वंद्व को शांत करने के लिये मैं यहां आया हूँ। मेरा विचार है कि राम तुम्हें उतना प्रेम नहीं दे सकते जितना रावण। फिर भी मैं तुम्हें विचारने का अवसर देना चाहता हूँ। तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल मैं कुछ भी कर ही नहीं सकता। किन्तु अब तुम्हें राम के पास इस जंगल में मैं नहीं रहने दूँगा। मेरे साथ सिंहल चलो, वहाँ विचार देखना।"

और घर-घर करता विमान आकाश में उड़ चला। सीता को स्थिति का पूर्ण ज्ञान जब हुआ तो वे विमान से कूदना चाहने लगीं। किन्तु वह सम्भव नहीं। शरीर पर जो नाममात्र को आभूषण थे उन्हें भी वे सहन न कर सकीं और उतार-उतारकर विमान से नीचे फेंकती गईं। और कुछ वे कर नहीं सकतीं। राम का ध्यान उन्होंने किया और उसी में मग्न हो गई।

: १५ :

बनवासी राम के नये मित्र

मारीच का जीवन सार्थक हो गया। उसने अपने स्वामी के लिए प्राणोत्सर्ग कर दिये और साथ ही राम के दूसरे बाण से मुक्त हो गया। अंतकाल में जब राम उसके निकट पहुँचे तो उसने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभु ! जब आप बालक ही थे और मुनि विश्वामित्र के साथ बन में आये थे, इस दास को आपका बाण तब भी लगा था। वह मर्मान्तिक कष्ट भूला नहीं जा सकता। पर इस बार तो देखिये, समस्त हृदय को पार करके बाण बाहर हो गया है। कष्ट अधिक नहीं है क्योंकि आपके हाथ से मुक्ति पाने का महान् आनन्द जो हो रहा है।" इतना कहते-कहते उसने इहलीला संवरण कर दी।

उधर लक्ष्मण ने देखा कि प्रभु हरिणरूपी जीव को समाप्त कर चुके तब फिर वह कातर शब्द कैसे ? निकट आते ही राम ने प्रश्न किया—"लक्ष्मण ! तुम चले क्यों आए ? सीता एकाकीपन अनुभव कर दुखी होंगी।"

लक्ष्मण ने बात बता दी तो तुरंत ही उन्हें संदेह हुआ कि कुछ कपट किया गया है और जब विजेता की अर्धमिश्रित प्रसन्नता में वे लौटे तो पर्णकुटी खाली पड़ी थी। राम को उस दिन की उस बनदेवी की घटना याद हो आई और शीघ्र ही सीता की खोज के लिए इधर-उधर चल पड़े। कुछ ऋषिकुमार जो पास आ गये थे साथ हो लिये।

इधर-उधर सब ओर घूम आए। झरना-झील सम्भावित सभी स्थलों पर देख आए, पर सीता का कहीं पता नहीं।

अब विकट समस्या सामने आ गई। बनवास की कठोरता का अनु-

भव प्रथम बार दोनों भाइयों को हो निकला। राम ने कन्द-मूल-फल भी लेना अस्वीकार कर दिया और सायंकाल हो जाने पर भी पर्णकुटी की ओर स्नेहभरी दृष्टि डालकर दक्षिण की चल पड़े। कुछ ही आगे एक स्थल पर किसी वाहन के चिह्न दृष्टिगोचर हुए किन्तु वे भी कुछ दूर चल कर अंतर्ध्यान हो गये और आगे बढ़ने पर सीता का एक भुजबन्ध दिखाई दिया। यह उनका पहला चिह्न है। राम की दशा असामान्य है। उन्होंने उसे उठा लिया और आश्वस्त होने के लिए लक्ष्मण से पूछा——"पहचानते हो इस भुजबन्ध को ? याद पड़ता है कि इसे सीता की भुजा पर बँधने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।"

लक्ष्मण सकपका गये, वे वास्तव में उसे न पहचान सके, बोले——"भैयां ! भाभी के चरण प्रतिदिन स्पर्श करने का सौभाग्य इस दास को प्राप्त रहा है, भुजबन्धं को यह अनुचर कैसे पहचान सकता है ?" प्रेमाश्रु राम की आँखों में झलक आए और उसी दिशा में और आगे बढ़े। इस बार एक नूपुर भी प्राप्त हो गया और लक्ष्मण ने दौड़कर उसे उठा लिया और कहा——"प्रभु ! इसे माता के चरणों में प्रतिदिन मैंने देखा है। वे इसी ओर गई जान पड़ती हैं।"

राम——"गई नहीं है लखन, ले जाई गई हैं, इसमें संदेह अब नहीं रहा।"

कुछ और आगे बढ़ने पर उन्हें कराहने का शब्द सुनाई पड़ने लगा। आशा का तार बँधा। तुरंत इधर-उधर खोज की तो निकट के एक सघन वृक्ष के नीचे एक विशालकाय पक्षी को पाया जिसका एक कटा पंख इधर-उधर बिखरा पड़ा था और जो मर्मान्तिक पीड़ा से कराह रहा था। राम ने निकट के जलाशय से स्वयं जल ले जाकर उसके मुँह में डाला तो उसने कहा——"जीवन सफल हुआ राम ! रघुकुल के सूर्य इसी दिन के लिये यह जीवन धारण किया था। रघुकुलवधु सीता को लंकापति रावण कुछ समय पूर्व विमान में ले जा रहा था। मैंने उसे ललकारा तो देख ही रहे हो यह दशा हो गई. . .।"

राम उत्सुकता से——"आपका शुभ परिचय ?"

पक्षी——" मुझे जटायु कहते हैं। सब कार्य दैवानुसार ही हो रहे हैं।

अब राक्षसों का अंतकाल आ पहुँचा है । मेरी चिंता छोड़ो और निकट आकर अपनी चरण-धूलि मस्तक पर लगाने का सुअवसर दो, प्रभु !"

राम ने स्नेह से उसे उठाकर अंक में भर लिया और नेत्रों से अविरल अश्रुधारा बह निकली । कुछ काल यों ही बीता और जटायु ने कहा—"मुझे छोड़कर आप आगे बढ़िये । यहाँ से दस योजन पार आर्यों की सीमा समाप्त होती है । वह सामने जो सफेद पर्वतमाला-सी देख रहे हैं, वह कोई पर्वत नहीं राक्षसी वृत्ति वालों ने आर्यों के इतने साधुजन संहारे हैं कि उनकी हड्डियों का वह ढेर पर्वत-शिखर से होड़ लेने लगा है । उसके पार सावधानी से बढ़ना, पर आपको क्या कहा जाय ? अच्छा विदा !"

राम और लक्ष्मण आगे बढ़े । उन हड्डियों के पहाड़ को देखकर राम के मुख पर भीषण गम्भीरता छा गई ।

× × ×

उधर बालि के डर से भागे हुए सुग्रीव किष्किंधा से दूर वन में निवास कर रहे हैं । उनके मंत्री और मित्र पवनसुत हनुमान भी उनके साथ हैं । दूर से उन्होंने देखा कि जैसा सुना था लगता है पंचवटी से राम और लक्ष्मण इधर ही आ रहे हैं । वृद्ध महात्मा ने यही समय तो बतलाया था कि सीता की खोज में राम इधर निकलेंगे । सुग्रीव ने कहा—"हनुमान ! अब अपना काम करो । मैत्री का संदेश लेकर तुरंत पहुँचो ।"

हनुमान ब्राह्मण वेश में राम के सम्मुख आकर बोले—"जय हो ! रघुकुल के सूर्य, आपकी जय हो !" राम ने, जो मित्रों की स्वयं कामना कर रहे थे, पूछा—"आप कौन है द्विजवर्य ? अपना शुभ परिचय दीजिये । आप तो सम्भवतः हमें पहचानते मालूम पड़ते हैं ।"

हनुमान—"मैं हनुमान हूँ राजा सुग्रीव का मित्र और मंत्री । उनकी ओर से मैत्री का संदेशवाहक बनकर उपस्थित हुआ हूँ । वे भी आपके दर्शनों के अभिलाषी हैं ।"

राम—"राम स्वयं इस समय अति दुखी है । उसकी मैत्री से क्या लाभ होगा, मित्र ?"

हनुमान—"मित्र न कहिये महाराज ! अनुचर को दास कहिये । आपकी मैत्री की कामना तो महेन्द्र तक करते हैं ।"

राम--"आपके स्वामी सुग्रीव महा विकट वन के बासी क्यों बने हैं ?"

हनुमान--"महाराज ! उनकी कहानी सूक्ष्म में यह है कि वे और उनके अग्रज बालि किष्किधा के महाराजकुमार हैं। एक बार एक विकट शत्रु मय के पुत्र मायावी ने आक्रमण किया। बालि ने मल्लयुद्ध के लिये उसे ललकारा। दोनों लड़ते-लड़ते पर्वत पर पहुँच गये। मायावी और उसके पीछे बालि एक गुफ़ा में प्रविष्ट हो गये। हम सब गुफ़ा के मुँह पर उनके निकलने की प्रतीक्षा करते रहे। पर कुछ काल पश्चात् रक्त की धारा वेग से ऊपर निकली और हमें विश्वास हो गया कि बालि को मायावी ने मार डाला। शत्रु को बंद रखने के उद्देश्य से गुफ़ा के मुँह पर एक शिला-खंड रखकर हम सब लौट आए। और वानर-कुल-परम्परा के अनुसार बालि की महिषी सुतारा के साथ महाराज सुग्रीव ने पाणिग्रहण कर लिया। बालि के युवराज राजकुमार अंगद ने, जो अपनी माता के महाराज सुग्रीव के प्रति बचपन के स्नेह से परिचित थे, स्वयं अपने चाचा को शासन-भार सँभालने के लिए प्रेरित किया। किन्तु कुछ समय बाद बालि लौटकर आ गये और उन्होंने प्रजापालक महाराज सुग्रीव पर यह आरोप लगाया कि राज्य हथियाने और महिषी सुतारा को पाने के लिये उन्होंने शिलाखंड गुफ़ा के मुँह पर रख दिया। आते ही उन्होंने सुग्रीव को निकाल दिया और महिषी सुतारा को उसकी इच्छा के विरुद्ध फिर अपने पास रख लिया। अब महाराज सुग्रीव उसी आतंक से यहाँ बन में हैं और आपके आगमन की प्रतीक्षा में हैं।"

राम--"ठीक है, किन्तु यह बतलाइये कि राज्य की जनता किसे चाहती है बालि को अथवा सुग्रीव को ?"

हनुमान--"महाराज ! यदि सुग्रीव को न चाहती होती तो वे अब तक जीवित थोड़े ही रह सकते थे। प्रजा तो विद्रोह तक करने को तत्पर है किन्तु बालि की लंकापति रावण से मैत्री और दूर के नाते से बंधुत्व है इसी कारण जनता अत्याचार झेलते हुए भी मन मारे बैठी है। अब आप महाराज सुग्रीव की मैत्री स्वीकार करें।"

राम--"लंकापति रावण के विरुद्ध हमें भी अभियान करना है।"

हनुमान—"महाराज ! सुग्रीव समस्त सेना सहित उसके लिए अपने आपको आपके सामने प्रस्तुत करने में सौभाग्य मानेंगे ।"

राम—"तो फिर मैत्री हमें स्वीकार है । चलिए उनके पास चलें ।"

सुग्रीव ने दूर से आगे बढ़कर उनका स्वागत किया । दोनों गले मिले और रात्रि के समय पावक के सम्मुख दोनों ने एक-दूसरे का मित्र बने रहने की प्रतिज्ञा ली ।

अगले दिन प्रातः सुग्रीव ने बालि को जा ललकारा, पर दोनों का रूप समान होने से राम अपने अचूक बाण का उपयोग न कर सके । क्षत-विक्षत दशा में सुग्रीव लौटे तो उन्होंने उनके मुकुट में एक सारंग-पंख पहचान के लिए लगा दिया और ज्यों ही मल्लयुद्ध प्रारम्भ हुआ पेड़ की आड़ में से बाण ने बालि का वक्ष बेध दिया और 'हाय' शब्द करता वह गिर पड़ा ।

राम अब निकलकर घटना-स्थल पर जा पहुँचे तो बालि ने कहा—"क्या इस प्रकार छिपकर किसी पर प्रहार करने की प्रथा आपके यहाँ न्याय्य मानी जाती है ?"

राम—"क्या इच्छा के बिना किसी महिला के साथ बल प्रयोग करना और प्रजा की इच्छा के विरुद्ध निरंकुश शासन करना यहाँ की परिपाटी है ?"

बालि—"महाराज राम ! मुझे पता है कि अपनी साध्वी धर्मपत्नी के लिये आप लंका पर आक्रमण करने की तैयारी में होंगे । लंकेश का समाचार प्राप्त हुआ था, पर आपने एक बार तो मुझसे सहायता की याचना की होती । सुग्रीव अकारण प्रिय हो गया ?"

राम—"याचना का प्रश्न राम के साथ कभी उत्पन्न न हुआ और न होगा । सुग्रीव ने मैत्री सन्देश भेजा, हमने उसे स्वीकार किया । प्रजा के प्रतिनिधि की हैसियत से सुग्रीव और हनुमान की बातें हमने सुनीं और जनता के कष्ट-निवारण के लिये हमें बाण का व्यवहार करना पड़ा ।"

बालि—"सत्य कह रहा हूँ राम ! मैं निर्णय नहीं कर पाया था कि आपके विरुद्ध रावण की सहायता करूँ अथवा नहीं । मंत्रिवर जामवंत इसके साक्षी हैं । पर अब उस सबके कहने से कोई लाभ नहीं । आपके हाथ से सद्गति पाकर मैं सन्तुष्ट हूँ । अच्छा, अपराध क्षमा कीजियेगा ।"

और बालि ने वक्ष में घुसे तीर को निकाल फेंका और साथ ही उसका प्राण-पखेरू भी उड़ चला ।

अब नियमानुसार सुग्रीव का पुनः विधिपूर्वक राज्याभिषेक किया गया और प्रजा में उत्साह की लहर सर्वत्र व्याप्त हो गई । किष्किंधा को बालि से मुक्ति दिलाने के लिए महाराज राम को महिषी सुतारा, राजकुमार अंगद, मंत्रिवर जामवंत ने साधुवाद दिया ।

कुछ समय वहाँ पर ठहरे रहने के पश्चात् राम ने हनुमान से कहा—"पवनसुत ! अब हमें दक्षिण की ओर प्रस्थान करना चाहिए । सुग्रीव से कहो, वे सम्भतः राजकाज और विशेषकर विलास के कारण अपना वचन भूल रहे हैं ।"

सुतारा को जब यह ज्ञात हुआ तो उसने सुग्रीव से कहा—"जिनके कारण हमारा संयोग हुआ उनको दिये वचन को भी आप भूल गये, यह अति खेदजनक है । अंगद तो कल ही आपके इस आलस्य पर असंतोष प्रकट कर रहा था ।"

सुग्रीव उसी क्षण राम के पास पहुँचे और उनसे क्षमा-याचना की । रात्रि को ही जामवंत और हनुमान को आदेश दिया गया कि समस्त वानर-सेना अविलम्ब एकत्र कर ली जाय, और ज्यों ही सेना एकत्र हो जाय दक्षिण की ओर प्रस्थान कर दिया जाय ।

: १६ :

लंका-अभियान की तैयारी

जामवंत और हनुमान के नेतृत्व में वानर-सेना सजधजकर तैयार हो गई और किष्किंधा से ब्रह्ममुहूर्त में महाराज राम, लक्ष्मण एवं सुग्रीव ने प्रस्थान. किया। सुप्रसिद्ध अभियांत्रिक नल और नील भी साथ चले। दोपहर दिनचढ़े कावेरी नदी के तट पर शिविर स्थापित किया गया।

महाराज राम के विचार-कक्ष में समस्त प्रमुख बैठे हैं। और विचार किया जा रहा है कि अब भविष्य में क्या व्यवस्था की जाय? महाराज राम के कहने पर सर्वसम्मति से निर्णय हुआ कि हनुमान को पहले महारानी सीता को देखने के लिये भेजा जाय। पर सीता यह कैसे पहचानेगी कि वह राम के दूत हैं? इसके लिये राम ने तुरंत ही अपनी मुद्रिका उन्हें दे दी।

द्रुतवेग से वे सागर पार कर सिंहल प्रवेश कर गये, और अशोक-वाटिका में जहाँ सीता ठहरी हुई थीं जा पहुँचे। अत्यन्त शोकमग्न सीता अशोक-वृक्ष के नीचे एक शिलाखंड पर बैठी थीं। हनुमान उसी वृक्ष पर पहुँच गये और मुद्रिका उनके ऊपर डाल दी। राम की मुद्रिका देखते ही सीता ने उसे उठा लिया और साश्चर्य ऊपर को देखा। हनुमान नीचे उतर आए और उन्होंने साष्टांग दण्डवत् कर समस्त घटना कह सुनाई।

उस शोक एवं प्रसन्नतामिश्रित मिलन को देखकर प्रतिहारी दौड़े और उन्होंने राज्याधिकारियों को सूचना दे दी कि कोई शत्रु का गुप्तचर वाटिका में प्रवेश कर गया है। नगररक्षक ने तुरंत ही वाटिका का घेरा डाल दिया और वानरराज को पकड़ने के उपक्रम करने लगे।

सीता ने जो भटों को चारों ओर देखा तो उनका प्रसन्न मुख म्लान हो गया। उन्हें निश्चय हो गया कि अब हनुमान का बचना कठिन है। उन्होंने कहा—"पवनसुत! तुम्हारे यहाँ आने से हमें अति आनन्द हुआ। प्रभु की शुभ सूचना तो मिली ही साथ ही यह भी विश्वास हो गया कि शीघ्र ही उनके चरणों के दर्शन होंगे, पर यह दुष्प्रकृति लोग तुम्हें सहज ही न छोड़ देंगे?"

हनुमान—"माता! आप चिंता न कीजिये। प्रभु राम जिसके सहायक हों उसका बाल भी बाँका नहीं हो सकता। मैं जिस प्रकार आया हूँ उसी प्रकार लौट जाऊँगा।"

एक दासी जो महारानी की सेवा में रहती थी, बोली—"श्रीमान्! सिंहल में राजकुमार विभीषण के अतिरिक्त कोई व्यक्ति ऐसा नहीं जो दुष्प्रकृति न हो। पर आपके तेज को देखकर ऐसा लगता है कि यहाँ के राक्षसी वृत्ति के लोग कुछ भी न कर सकेंगे।"

दासी के ऐसे वचन सुनकर सीता और हनुमान को संतोष हुआ। इतनी ही देर में सैनिक आ गये और उन्होंने हनुमान को बंदी बना लिया। तुरंत ही उन्हें नगररक्षक के सम्मुख प्रस्तुत किया गया और उसने व्यवस्था दी कि शत्रु के लिये गुप्तचर का कार्य करने के अपराध में हनुमान के शरीर पर वस्त्र लपेटकर आग लगा दी जाय जिससे कि उसकी मृत्यु

हो जाय ।

ऐसा ही किया गया, किन्तु आग लगते ही हनुमान ने इधर-उधर कूदना आरम्भ कर दिया और समस्त राजधानी में चारों ओर अग्निकाण्ड हो निकले। जब तक सम्राट् रावण को पता लगा, हनुमान सागर पार करके अपने शिविर की ओर लौट चुके थे।

उन्होंने जाकर समस्त घटना कह सुनाई, और सेना ने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। सागर तट पर शिविर बनाया गया और नल और नील अभियांत्रिकों को आदेश दिया गया कि सागर का पुल तैयार करें।

कार्य बड़े वेग से प्रारम्भ हो गया और निकट है कि वह पूर्ण हो जाय। विचार-कक्ष में बैठे प्रमुख व्यक्ति विचारमग्न हैं कि अब क्या किया जाय ?

जामवंत ने कहा—"युद्ध की समस्त तैयारी हम कर चुके, किन्तु नियमानुसार एक बार किसी दूत को रावण के पास भेजा जाय और संधि का एक अवसर उसे दिया जाय ।"

विचार-विनिमय के पश्चात् अंगद तैयार हो गये और उन्होंने शीघ्र ही प्रस्थान भी कर दिया ।

रावण को सूचना दी गई कि किष्किंधा के युवराज अंगद राम के दूत बनकर आये हैं और बातचीत करने के अभिलाषी हैं। उन्हें बुला लिया गया। अभिवादन के बाद रावण ने कहा—

"वत्स ! जानते हो कि तुम्हारे पिता हमारे बन्धु थे और उस सम्बन्ध से तुम हमारे पुत्रवत् हो, फिर भी तुम दूत बनकर आये हो उस व्यक्ति के जो अपने आपको हमारा शत्रु कहता है ।"

अंगद—"लंकापति! आप ठीक ही कहते हैं किन्तु कर्त्तव्य-पालन करना हर व्यक्ति का धर्म है। मैं इस समय महाराज राम का दूत हूँ और आपसे यह कहने के लिये उपस्थित हुआ हूँ कि आप माता सीता को लौटा दीजिये और उन्हें रोके रखने के लिये खेद प्रकाश कीजिये। क्या आप इसके लिये

तैयार हैं ? यदि न हों तो फिर महाराज राम की ओर से मैं आपको युद्ध की चुनौती देता हूँ।"

रावण—"अंगद ! पागलपन न करो। रावण के भतीजे को लंका में एक प्रतिष्ठित नागरिक अथवा उच्च राज्याधिकारी की भाँति रहना चाहिए। किष्किंधा के राज्य के अधिकारी सुग्रीव नहीं, तुम हो ?"

अंगद—"लंकेश ! क्या परीक्षा लेने के लिये लोभ दिखाने का यत्न किया जा रहा है ? तुम जैसे महापंडित और विद्वान् से इस प्रकार की बातें सुनकर मुझे आश्चर्य हो रहा है !"

रावण—"तो सुनो, अपने राम से कहना कि बन्दर को यहाँ भेजकर नाच-कूद कराना एक बात है और सम्राट् रावण के विरुद्ध युद्ध करना और बात। यदि वह लंका में प्रवेश करेंगे तो हमारी बहिन शूर्पणखा के साथ अशिष्ट व्यवहार करने के विरुद्ध उनको दंडित किये बिना काम नहीं चलेगा।"

अंगद—"लंकेश! आप महाराज राम का अपमान करके मुझे अशिष्ट होने के लिये बाध्य कर रहे हैं। मैं आप से और कोई बात सुनने नहीं आया। मेरी बात का 'हाँ' अथवा 'ना' में उत्तर दे दीजिये।"

रावण—"अंगद! तुम बिसात से बाहर हुए जा रहे हो। तुम जितने मूर्ख, धूर्त और अशिष्ट हो उसका दंड जानते हो क्या होता है ?"

अंगद—"यह"—और एक घूँसा रावण के वक्ष पर मारकर क्रोधावेश में अंगद लौट पड़े।

उनके पीछे कई सैनिक दौड़े, पर उन्हें पकड़ना हँसीखेल न था आकर उन्होंने समस्त घटना से सपरिषद् राम को अवगत कर दिया।

सायंकाल होते ही एक अज्ञात व्यक्ति राम-शिविर में आया। उसने महाराज के दर्शनों की अभिलाषा प्रकट की।

राम—"आप कौन हैं और किस अभिप्राय से यहाँ आए हैं ?"

आगत—"मैं महाराज विभीषण का दूत हूँ और कुछ गोपनीय बात कहने के लिये प्रस्तुत हुआ हूँ। महाराज क्या यह संभव होगा ?"

राम के संकेत से कक्ष खाली कर दिया गया ।

आगत--"प्रभु ! मेरे स्वामी ने मुझे यह निवेदन करने को कहा है कि वे आपके शुभाकांक्षी हैं और हर सेवा के लिये प्रस्तुत हैं । लंका की जनता सम्राट् रावण के अत्याचारों से दुखी है । उनका उद्धार कीजिये ।"

राम--"राजकुमार से हमारा आभार प्रदर्शित करके कह दीजिये कि जैसी उनकी इच्छा है वैसा ही होने जा रहा है ।"

अति नम्रता से प्रणाम कर आगत व्यक्ति चला गया और इस सुसंवाद की सूचना भी राम ने सबको दे दी ।

१७

महापंडित रावण आचार्य के रूप में

दक्षिण जम्बू द्वीप के समुद्र तट पर राम सेना के शिविर चारों ओर फैले हैं। प्रमुख व्यक्ति एक खुली छोलदारी में यथास्थान बैठे हैं। उच्चासन पर गुरुदेव तथा उनके दो शिष्य बैठे हैं। निकट ही उससे कुछ नीचे सुखासन पर महाराज राम तथा लक्ष्मण विराजमान हैं। गुरुवर के दूसरी ओर एक सुखासन पर नल और नील तथा उनके सहकारी अभियांत्रिक (इंजीनियर) बैठे हैं। सम्मुख सभी सेनानायक-प्रवरों के उत्सुक चेहरों से

स्थिति की गम्भीरता का भान हो रहा है। महाराज राम ने शांति भंग करते हुए कहा—"गुरुवर! विजयलिंग की स्थापना के सम्बन्ध में हमें शीघ्र निर्णय कर लेना चाहिए। उपमहाबलाधिकृत का अभिमत है कि सिंहल पर आक्रमण के लिए परसों दिन ठीक है।"

नल और नील की ओर देखकर वे बोले—"स्वनामधन्य अभियांत्रिक नल और नील का सेतु-बाँध-कार्य पूर्ण हो चुका, अब तो अच्छे मुहूर्त्त में अक्षौहिणी का प्रस्थान-कार्य शेष है।"

गुरुवर ने कुछ क्षणों के बाद उत्तर देते हुए कहा—"मैंने बार-बार विचार किया है। जम्बू द्वीप के इस भाग के सबसे बड़े महापंडित रावण ही विजयलिंग-स्थापन के लिये सर्वश्रेष्ठ हैं और भरतखंड के नैतिक विधि-अनुसार यदि आप अपना कोई सम्मानित दूत उनकी सेवा में भेजेंगे तो वे अवश्य अनुष्ठान का आचार्य होना स्वीकार कर लेंगे।"

उनकी बात समाप्त होते-होते उपस्थित समुदाय में चीमागोइयाँ हो निकलीं किन्तु कोई भी स्पष्ट रूप से कुछ कहने में हिचकिचा रहा था। इतने में महाराज राम के निकट बैठे वीर लक्ष्मण की ओर सबके नेत्र जा लगे। वे कुछ ऐसी मुद्रा में हो गये जैसे कुछ संभाषण करने वाले हों। उन्होंने शांत और गम्भीर स्वर में कहा—"गुरुवर! जिस व्यक्ति के विरुद्ध हमें अभियान करना है उसी को आप आचार्य बनाने का सत्परामर्श दे रहे हैं। उसी दिन तो आपने बताया था कि हर अनुष्ठान में यजमान और आचार्य दोनों का हृदय पवित्र और लक्ष्य-प्राप्ति के लिये ओत-प्रोत होना चाहिये फिर आज कैसे यह आज्ञा प्रदान की जा रही है?"

"लक्ष्मण!" गुरु बोले—"तुम महापंडित को नहीं पहचानते। वह भरत खंड में अद्वितीय विद्वान्, विचारक और वेदज्ञाता है। वह अपने देश की परम्परा को खूब जानता है। आचार्य-पद ग्रहण करते ही वह सिंहल का सम्राट् रावण न रह जायगा···।"

"किन्तु गुरुवर! हम उसका इतना विश्वास करके कुछ अधिक तो प्रत्याशा नहीं कर रहे हैं?"

"नहीं सौमित्र! मैं अपने मानस-नेत्रों से उस महापुरुष को देख रहा हूँ। सोचो, यदि वह चाहता तो महारानी सीता को कितनी दारुण व्यथा

पहुँचा सकता था। किन्तु इस समय अपने पूज्य पतिदेव के वियोग के अतिरिक्त उन्हें कोई कष्ट नहीं। स्वयं हनुमान सब अपनी आँखों से देख आये हैं। अविचार न करो, काम करो।"

लक्ष्मण के नेत्रों से संशय दूर न हुआ कि महाराज राम बोल पड़े—"भाई! गुरुदेव के सत्परामर्श में हमें कोई संदेह नहीं होना चाहिये, है भी नहीं, बस, इससे आगे हमें इस समय और सोचने की आवश्यकता भी नहीं ।" गुरुदेव की ओर देखकर—"कहिए गुरुदेव ! हम किसे अपना दूत बनाकर पंडित रावण को निमंत्रण देने भेजें ?"

—"पहले मेरा ध्यान किसी और व्यक्ति पर था, किन्तु अभी-अभी रामानुज की बात सुनकर इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि राम के शिविर के महापंडित के प्रति श्रद्धा प्रदर्शन करने के लिये स्वयं लक्ष्मण को ही दूत-कार्य करना चाहिये। इससे उनके मन में जो संदेह उदय हुआ वह नष्ट हो जायगा।" गुरुदेव ने निर्णयात्मक स्वर में कहा।

लक्ष्मण जानते हैं कि राम गुरुदेव की आज्ञा का अक्षरशः पालन करेंगे और अब अनिच्छा होते हुए भी जाना होगा। इसलिये उनके कान रामाज्ञा को सुनने के लिये तैयार हो गये।

राम ने मृदु स्वर में कहा—"भाई लक्ष्मण! गुरुदेव का चुनाव उचित ही है। तुम्हें सिंहल जाने की कब सुविधा होगी ? क्या तुम्हारा नया विमान ठीक दशा में है ? स्थल-मार्ग से जाने में विलम्ब हो सकता है, अतः बताओ कि कब प्रस्थान कर रहे हो ?"

लक्ष्मण ने खड़े होते हुए कहा—"प्रभु ! अभी इसी समय। विमान से ही जाना उचित है। किन्तु मुझे इसमें अब भी सन्देह है कि लंकापति हमारे निमंत्रण को स्वीकार करेंगे।"

× × ×

अर्द्धरात्रि को उसी शिविर के उसी स्थल पर फिर आवश्यक बैठक उसी प्रकार बैठी है। लक्ष्मण लंका से लौट आये हैं और वे अपना प्रतिवेदन देने को प्रस्तुत हैं। कुछ खिन्नता के साथ लक्ष्मण ने कहा—"गुरुवर! जैसी मुझे आशा थी वही हुआ। उसने निमन्त्रण स्वीकार करने से इन्कार कर दिया। मैं यह मानता हूँ कि दौत्य-शिष्टाचार से अधिक उसने मेरे साथ

बरता, किन्तु हमें तो परिणाम से मतलब था।"

गुरुदेव के चेहरे पर अतीव आश्चर्य के चिन्ह दृष्टिगोचर हो रहे हैं। कुछ क्षण के बाद उन्होंने कहा—"सौमित्र ! यह तो तुमने स्वीकार किया कि उस ओर से तुम्हारे साथ अति सौजन्यता का व्यवहार हुआ, यहाँ तक कि तुम्हें विमान तक छोड़ने के लिये स्वयं रावण का ज्येष्ठ पुत्र आया। किन्तु यह तो कहो कि तुमने किस प्रकार क्या किया ?"

—"मैंने, मैंने सबसे पहले प्रभु राम का परिचय-पत्र दिया जिसे एक राज्य-कर्मचारी ने लिया और पढ़कर सुनाया। उसके बाद उसने मुझे ऊपर से नीचे तक दो बार देखा। जो मुझे अच्छा न लगा और तुरन्त ही उसने मौखिक उत्तर दे दिया कि आप जिनके दूत हैं उनके किसी अनुष्ठान का आचार्य-पद ग्रहण करने में मुझे गौरव अनुभव न होगा। यह था उसका उत्तर।"

गुरुदेव ने तुरन्त ही कहा—"सौमित्र! तुम्हारा स्वमतावलम्बन तुम्हारे गर्व के लिये उत्तरदायी है और तुम्हारा गर्व पंडित रावण की अस्वीकृति के लिये। उन्होंने स्पष्ट तो कह दिया कि इतने घमंडी दूत के स्वामी का आचार्य बनने में उन्हें गौरव अनुभव न होगा। तुम्हें सबसे पूर्व प्रणाम करना उचित था। तदनन्तर शिष्टतापूर्वक विनयी स्वर में एक बार पुनः निवेदन करना चाहिये था। मेरा दृढ़ मत है कि यदि विकार और दम्भ-त्याग सूर्यकुल के भूषण सौमित्र एक यजमान के अनुज के रूप में विनयी होकर महापंडित रावण से प्रार्थना करने जायेंगे तो रावण अपने आपको आचार्य पाकर अवश्य गौरवान्वित अनुभव करेगा। मेरी सम्मति है कि लक्ष्मण कल सूर्योदय के उपरांत एक बार फिर लंका जायें।"

मत मत न होकर आज्ञा थी जिसकी स्वयं महाराज भी अवज्ञा करने का साहस न कर सकते। इसके बाद सभा समाप्त हो गई और सूर्योदय होते ही लक्ष्मण फिर लंका को रवाना हो गये।

दक्षिणी समुद्र तट पर महाराज राम के शिविर में पर्याप्त चहल-पहल हो रही है। शीघ्र ही लंका पर अभियान की तैयारी के लिये स्थान-स्थान पर अस्त्र-शस्त्रों की सफाई और तैयारी जारी है। प्रत्यंचाओं के लिये दृढ़ से दृढ़ तंतुओं को भाना जा रहा है। दक्षिण प्रदेश के सेनानायकों

में सुग्रीव के शिविर में अति चपलता दृष्टिगोचर हो रही है। रामानुज लक्ष्मण गुरुदेव के आदेशानुसार पंडित रावण को लंका-अभियान से पूर्व विजयलिंग स्थापित करने के अनुष्ठान में आचार्य-पद ग्रहण करने के लिये निमंत्रित करने गये हुए हैं और युद्ध-परिषद् की बैठक उनके लौटते ही किसी क्षण बुलाई जा सकती है। उपाध्यायों, आचार्यों और पंडितों की प्रातःकालीन सामयिक समाप्त हो चुकी है क्योंकि घोर शंख-ध्वनि से महाराज राम के भेंट-शिविर में पहुँचने की सूचना दी जा चुकी है।

अभी दिन का प्रथम प्रहर ही था कि युद्ध-परिषद् की बैठक की सूचना दे दी गई और अपने-अपने स्थानों पर गुरुदेव, महाराज राम, सेनानायक-गण, अभियांत्रिक नल और नील उत्सुकता से लक्ष्मण का वृत्तान्त सुनने को उत्सुक हैं। इतना पता चल गया है कि रावण ने आचार्य-पद स्वीकार कर लिया है। सस्मित गुरुदेव ने मानों सभा संचालन करते हुए कहा—"कहो लक्ष्मण, क्या संदेश है?"

लक्ष्मण अपने सुखासन से उठ खड़े हुए और उन्होंने बतलाया—"गुरुवर! आपका कहना उचित ही था और फिर आपने आजतक कुछ अनुचित कहा ही नहीं है। महापंडित रावण ने आचार्य बनना स्वीकार कर लिया।"

किन्तु हर चेहरे पर पूरा विवरण जानने की उत्सुकता समाप्त न हुई। हनुमान ने विनम्र और झुककर निवेदन किया—"महाराज! हमारी उत्कण्ठा यह जानने के लिये अभी बनी है कि प्रथम बार इन्कार कर देने पर रावण ने किन कारणों से अब उसे स्वीकार किया? मेरा यह कहना कदाचित् जल्दबाजी हो कि उसकी जड़ में कूटनीति की भावना तो काम नहीं कर रही?"

लक्ष्मण मुस्करा दिये—"बलाधिकृत! यह शंका निर्मूल है। वास्तव में प्रथम बार मुझे जितना विवेकी और विनयी होना चाहिए था उसका मुझ में अभाव रहा। इस बार तो रावण ने मुझे यज्ञशाला में ही बुलवा लिया। वे होम समाप्त कर चुके थे और शायद वेद पर टीका का जो ग्रन्थ लिख रहे हैं उसमें व्यस्त थे। मेरे पहुँचने पर उन्होंने निकट के आसन की ओर इशारा किया और मैं बैठ गया।" मुस्काकर वे बोले—"मैं कल ही जानता

था कि मर्यादापुरुषोत्तम के अनुज का पुनः पदार्पण होगा।" मैंने नम्रतापूर्वक कल के व्यवहार के लिये खेद प्रकट किया और चलने के लिये पुनः निवेदन किया। वे तैयार हो गये और आज अपरान्ह में स्वयंमेव यहाँ पहुँचने वाले हैं। मेरा मत है कि उनके स्वागतार्थ विमान-विराम-स्थल पर स्वयं प्रभु उपस्थित रहें।"

दिवस का तीसरा पहर है, समुद्रतट के शीतल समीर के होते हुए भी भास्कर की प्रचंड किरणों से उष्णता में कमी नहीं। घर-घर शब्द प्रकट कर रहा है कि कोई बलशाली विमान आने ही वाला है। शब्द के अतिरिक्त नभ में कुछ भी दिखाई नहीं देता। महाराज राम, महाबलाधिकृत, महानायक, सेनानायक आदि कई महापुरुष एकत्र हैं। अब बिलकुल पक्षी के आकार का विमान भूमि पर उतरता दिखाई पड़ने लगा। गधर्व-ध्वज ने सूचित कर दिया कि विमानचालक स्वयं महापंडित रावण हैं और उन के उतरकर अकेले ही आने से यह भी ज्ञात हो गया कि कोई अंगरक्षक तक साथ नहीं आया। राम ने पंक्ति में से आगे बढ़कर नमस्कार किया और रावण ने बड़े ही स्नेहपूर्ण ढंग से हाथ उठाकर आशीर्वाद दिया।

लक्ष्मण चंचलतावश विमान की ओर बढ़ने को उद्यत हुए कि यदि उसमें और कोई हो तो उसका भी स्वागत किया जाय, किन्तु रावण ने त्वरित समझकर कहा—"राजपुत्र! पंडित अकेला ही होता है, और वह अकेला ही आया है।"

"कोई अंगरक्षक···" बात पूरी न हो सकी कि रावण ने कहा—"पंडितों के अंगरक्षक नहीं होते। इस समय मैं राजा राम का आचार्य हूँ, और अभय हूँ।"

समस्त मंडली श्रीराम-शिविर की ओर चल पड़ी। शिविर के प्रांगण में सब जन रुकते गये और सामने के प्रकोष्ठ में महाराज राम, गुरुदेव, अतिथि-प्रमुख तथा दो उपाध्याय प्रविष्ट हुए। ज्योतिष-गणित के पश्चात् रावण ने घोषित किया, उसी रात को सूर्योदय से पूर्व ही सर्वश्रेष्ठ मुहूर्त बनता है किन्तु——

सब के नेत्र उनके विचार-मग्न चेहरे पर जा लगे। उन्होंने आगे कहा कि लिंग के लिये पत्थर कैलाश से आना चाहिए। क्या यह सम्भव होगा?

लक्ष्मण, सुग्रीव, नल और हनुमान को तुरन्त अन्दर बुला लिया गया और कैलाश जाकर प्रस्तर लाने की बात सामने रखी गई। लगभग सभी ने अपनी सेवायें अर्पित कर दीं। किन्तु गुरुदेव ने हनुमान की ओर लक्ष्य करके कहा--"वानर-श्रेष्ठ! हमारी धारणा है कि यह कार्य सबसे उत्तम आप ही कर सकते हैं, किन्तु समय बहुत थोड़ा है और यात्रा विशाल। क्या आप अपने आपको इस कार्य के लिए समर्थ पाते हैं ?"

गुरुदेव के चरण-स्पर्श करते हुए हनुमान का विशाल वक्ष और विशाल हो गया, उन्होंने विनम्र स्वर में निवेदन किया--"अनुचरों का अनुचर अपने जीवन के मूल्य पर भी इस काम को पूर्ण करने का यत्न करेगा। इसमें सन्देह नहीं कि समय कम है, और मार्ग विशाल। जम्बू द्वीप के इस ओर से उस ओर तक की यात्रा--आना-जाना कठिन अवश्य है, किन्तु प्रभु राम की कृपा से मैं उसे पूर्ण करूँगा।"

पंडित रावण ने कहा--"आर्यवर! अभी समय काफी है, मैं चलूँ। लंका की सुरक्षा के लिए जो कुछ भी होगा करूँगा। मेरी कितने दिनों की लालसा पूर्ण होगी। अपने राज्य पर जहाँ तक संभव होगा जीते जी अयोध्या के राजकुमार की विजय न होने दूँगा यद्यपि नियति को जो स्वीकार होगा, होगा। अच्छा मैं रात्रि के द्वितीय प्रहर में पुनः आऊँगा और अपने पवित्र अनुष्ठान का आचार्य-पद ग्रहण करूँगा। उपाध्यायद्वय पूजन-अर्चन की समस्त सामग्री तैयार रखेंगे, ऐसी आशा है। समुद्र के निकट का वह स्थल जहाँ आपकी रंगशाला है, यज्ञ और शिवलिंग स्थापन के लिये उपयुक्त रहेगा। वहाँ पर १६ पंडितों द्वारा भूमि-शुद्धि-पाठ अब प्रारम्भ करा दीजिए और यदि संभव हो तो थोड़ा मुष्ठि-चूर्ण और पीत-बालुका बिछवा दीजिए। कदली-पत्रों का मंडप बनाने में कठिनाई न होगी और न घटक और श्रीफल प्राप्त करने में ही। मैं अब चलूँगा। वानरश्रेष्ठ हनुमान, जिनके पराक्रम से मैं परिचित हूँ, आशा है वांछित प्रस्तर लाने में समर्थ होंगे। उनका जितना शीघ्र हो प्रस्थान करा दीजिए। मैं अब प्रस्थान करूँगा।" महाराज राम के प्रमुख अंगरक्षक तथा अनुज श्री लक्ष्मण रावण को विमान तक पहुँचाने गये और जिस प्रकार पक्षी की भाँति वह विमान आया था उसी प्रकार उड़ गया।

इधर वीर हनुमान ने गतिमान से गतिमान विमान लिया और कैलाश की ओर उड़ चले। यहाँ राम-शिविर में सायंकालीन कार्यक्रम तथा सामयिक प्रारम्भ हो गई।

× × ×

अर्धरात्रि के समय स्वयं महाराज राम अपने प्रमुख अंगरक्षकों, परामर्शदाताओंसहित विमान-विराम-स्थल पर किसी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। राम-शिविर का उत्तर खण्ड जो रंगशाला बना हुआ था, उपाध्यायों और पुरोहितों की व्यस्तता के कारण सुन्दर लग रहा है। कदली-पत्रों के मण्डप में सप्त घट चारों कोनों पर रखे हैं जिनके ऊपर होम पात्र से सुगन्ध युक्त धूम उड़ रही है। वेदी की छटा भी दर्शनीय है। विभिन्न नदियों का जल, श्रीफल, नैवेद्य, पुष्प, अक्षत, दीप, धूप आदि पूजन की सामग्री, केशरयुक्त चन्दन के छोटे पात्र स्वर्ण और रौप्य थालों में सजाये जा रहे हैं। समस्त वातावरण स्निग्ध, सुगन्ध और वेद वाक्यों से आच्छादित है। किसी समय भी आचार्य रावण के आगमन की प्रतीक्षा है।

शंख और तूर्य के शब्द ने यह सूचना दे दी कि महाराज राम इधर शिविर की ओर पधार रहे हैं। उधर विमान-विराम-स्थल पर पक्षी के समान विमान आकर रुका और पीत तथा श्वेत परिधानों में, मस्तक पर चन्दन का तिलक लगाये महापण्डित रावण उससे बाहर निकले। अभिवादन के बाद समस्त उपस्थित जन शिविर की ओर चल पड़े।

रावण—"क्या पवनसुत लौट आये ? कदाचित् इतनी जल्दी तो आना सम्भव न हुआ हो।"

राम बोलें कि लक्ष्मण ने उत्तर दिया—"हाँ महाराज ! वे अभी तक नहीं लौट सके किन्तु मुहूर्त्त के, समय तक वे निश्चित आ जायेंगे। मार्ग भी कुछ कम दूर नहीं, यहाँ से कैलाश तक, दक्षिण से उत्तर तक आना-जाना कोई हँसी-खेल नहीं·····" कहते-कहते उन्हें स्वयं यह भान हुआ कि उत्तर उन्हें नहीं देना चाहिए था। रावण की सहज मुस्कान उनको खल गई। महाराज राम ने भी एक बार उनकी ओर देखा पर कहा कुछ नहीं। कुछ ही क्षणों में वे शिविर में पहुँच गये। रावण की मुखाकृति से भान हुआ कि वह व्यवस्था से संतुष्ट है।

नभमण्डल के किसी नक्षत्र को देखकर महापंडित ने कहा कि पवनपुत्र आवें तब तक प्रारम्भिक गणेश-पूजन आदि क्रियाएँ समाप्त कर लें। तदनुसार धार्मिक क्रियाएँ प्रारम्भ हो गईं। उपाध्याओं और पुरोहितों द्वारा वेद-मंत्रों के पाठ से गगन गूँज उठा। अभी सम्भवतः प्रभात होने में कई घड़ी शेष थीं कि पूजन शेष हो गया। पवनसुत न आये। कुछ चिन्ता की रेखायें महाराज राम, लक्ष्मण तथा अन्य के चेहरों पर दृष्टिगोचर हो निकलीं। रावण ने भी एक बार आकाश की ओर देखा और कुछ कहने को हुए किन्तु फिर कुछ क्षणों के लिये शान्त हो गये।

फिर कुछ समय निकल गया, किन्तु हनुमान के आगमन की कोई सूचना न मिली। अब विषय चिंता का हो गया। रावण ने गम्भीर वातावरण को भंग करते हुए कहा—"रघुकुलश्रेष्ठ यजमान! मुहूर्त हो गया, किन्तु अभी तक लिंग नहीं पहुँच सका। मैं कुछ ही समय और प्रतीक्षा कर सकूँगा।" फिर कुछ ध्यानस्थ होकर उन्होंने कहा—"अभी तो पवनपुत्र यहाँ से बहुत दूर हैं। उनके पहुँचते-पहुँचते एक घड़ी से कम न लगेगा और मैं मुहूर्त टलने न दूँगा। आप समुद्र तट के निकट से थोड़ी बालुका मँगाइये। उसे मुख्य पुरोहित स्वयं लायें। मैं इस समय इस स्थान से उठ न सकूँगा अन्यथा स्वयं ही लेने जाता। शीघ्रता कीजिये।" आचार्य के आदेशानुसार बालुका मँगा ली गई।

कुछ और प्रतीक्षा के बाद गम्भीर मुद्रा में रावण ने जल मिलाकर बालुका का लिंग बनाया। विजय-स्तम्भ स्थापन स्थल पर उसे रखकर स्थापित कर दिया गया और प्रतिष्ठा-पूजन प्रारम्भ कर दिया गया।

कुछ समय और व्यतीत हो गया। अब उस स्तम्भ पर महाराज राम ने अपने स्थान पर खड़े होकर जलांजलि अर्पित की, किन्तु आश्चर्य की बात थी कि ऊपर की कुछ बालुका अवश्य हट गई किन्तु लिंग ज्यों का त्यों बना रहा। जैसी आशा थी कि जल वाहित होते ही समस्त बालुका बह जायगी वैसा न हुआ। अन्त में समस्त क्रियाएँ समाप्त हुईं और आचार्य रावण ने पुष्प हाथ में लेकर अपने यजमान राम को विजय की कामना-सहित आशीर्वाद दिया।

प्रभात होना ही चाहता है कि उत्तर दिशा से घर-घर करता वीर

हनुमान का विमान उतर आया। वे थके हुए भी ताज़ा लग रहे थे। उन्होंने कैलाश से लाये विभिन्न पत्थरों को सामने उपस्थित कर दिया। उसी समय रावण जाने की तैयारी में थे। हनुमान को देर से पहुँचने के लिये क्षोभ तो था ही किन्तु उनके नेत्रों में संशय का भाव जागृत था। एक ओर लक्ष्मण को ले जाकर उन्होंने कहा—"सौमित्र! यह सब क्या हो गया? मुहूर्त तो प्रभात से पूर्व का ही था, अभी भी पौ नहीं फटी है। क्या हमारा यह अनुष्ठान सफल कहा जा सकेगा? विजय-स्तम्भ स्थापन का अर्थ यह होता है कि जब तक वह स्तम्भ स्थापित है विजय निश्चित है किन्तु देख रहा हूँ बालुका का स्तम्भ क्या वायु लगने से छिन्न-भिन्न न हो जायगा? महाराज! अनुचर को विलम्ब अवश्य हुआ किन्तु उसके लिये क्या हमें प्रतिकूल परिणाम भुगतना होगा?"

रावण मुड़ पड़े। उन्होंने हनुमान को इशारे से अपने पास बुलाया। उनके चौड़े स्कंध पर हाथ रखकर कहा—"वीर पुत्र! आने में देर हो गई। अखिल विश्व में दूसरा कोई ऐसा वीर नहीं जो इतने समय में कैलाश-यात्रा करके लौट आता। आपका राम-प्रेम और कर्त्तव्यपरायणता ईर्ष्या की चीज़ है। किन्तु मुखारविंद पर खिन्नता क्यों? मैंने आपकी अनुपस्थिति में विजय-स्तम्भ की स्थापना कर दी है।······ आपको संशय है तनिक उस स्तम्भ को हाथ से छूकर तो देखो।"

हनुमान एक साथ कुछ न बोल सके। उनके हृदय की बात रावण ने समझ ली। उन्होंने सोचा कि अब बात तो स्पष्ट ही हो गई फिर भीषण परिणाम की बात मुँह पर ही क्यों न ले आई जाये। बोले—"विद्वत्वर! सुनते हैं, अनुष्ठान का अर्थ होता है कि विजय स्तम्भ की भाँति सुदृढ़ होती है। मुझे आपकी भावना पर अविश्वास नहीं किन्तु क्या बालुका का स्तम्भ चिरकाल तक बना रह सकता है?"

रावण खिलखिला पड़े—"यही तो मैं कहता हूँ, पवनसुत! तनिक स्तम्भ को हाथ लगाकर तो देखो। भूतल के महापराक्रमी वीर, रावण को विश्वास है कि आप भी उसे टस से मस करने में समर्थ न हो सकेंगे। प्रत्यक्ष को प्रमाण क्या? शायद मेरा निवेदन स्वीकार करने की इच्छा नहीं, तो क्या अपने यजमान से आदेश दिला दूँ?"

राम बीच ही में बोल पड़े——"नहीं नहीं आचार्य ! आप अन्यथा न समझें। आपको विलम्ब हो रहा है। रात्रि भर विश्राम न कर सके और संभवतः कल से ही युद्ध आरम्भ हो जायेगा। आपको हमारे कारण बड़ा कष्ट हुआ है। उसके लिये हम जितने आपके आभारी हों कम है। आपकी कर्त्तव्य-परायणता धन्य है।" किन्तु रावण को संतोष न हुआ। उन्होंने हनुमान से पुनः अनुरोध किया और वास्तव में जब हनुमान हाथों से उसे न हिला सके तो उन्होंने अपनी पूँछ को चारों ओर लपेटकर उखाड़ने का प्रयत्न किया। कुछ ही क्षणों में उनका समस्त शरीर स्वेदपूर्ण हो गया और नासिकारंध्र से खून की बूँद टपक पड़ी। तुरन्त ही चारों ओर से जय-ध्वनि हुई और वीर हनुमान से उसे छोड़ देने के लिये कहा गया।

हनुमान लज्जित हुए किन्तु रावण के प्रति उनके हृदय में श्रद्धा बढ़ गई और नतमस्तक हो उन्होंने रावण को झुककर प्रणाम किया। रावण का ललाट देदीप्यमान था। उसके चेहरे पर कर्त्तव्यपालन की चमक थी और संभवतः अंधकारमय भविष्य की कल्पना की प्रसन्नता। विमान में चढ़ने से पूर्व राम ने अपने आचार्य को नतमस्तक हो प्रणाम किया। उत्तर मिला——"आपकी विजय हो।" लक्ष्मण ने भी प्रणाम किया। उत्तर मिला——"धर्मलाभ हो।" हनुमान ने पुनः प्रणाम किया। उत्तर मिला——"राम जैसा स्वामी सदैव प्राप्त हो।" किन्तु लोगों ने आश्चर्य से देखा कि रावण ने विमान में घुसते-घुसते राम को प्रणाम किया——"मर्यादापुरुषोत्तम! धन्य हो तुम, जैसा सुना था वैसे ही हो। किन्तु मैं भी आज तुम्हारे अनुष्ठान का आचार्य बनकर धन्य हो गया। तुम्हें शत्.शत् नमस्कार है।"

सबके हृदय में भाव था कि रावण क्या मर्यादापुरुषोत्तम नहीं ?

१८

रावण की अंतिम अपूर्ण कामना

लंका की राजधानी में महाराज राम और लंकापति रावण के भीषण युद्ध का आज अन्त हो गया है। युद्धस्थल में शवों और नर-कंकालों का ढेर लगा है। राक्षसों की अधिकांश सेना हताहत हो गई है। बड़े-बड़े वैद्य और शल्य-चिकित्सक शिविरों में और आतुरालयों में आहत और आतुरों की सेवा-सुश्रुसा में संलग्न हैं। केसरिया सूर्य ध्वज जिन विशाल शिविरों पर फहरा रहा है वहाँ पर सन्ध्या होते-होते विजय-उत्सव की तैयारियाँ हो रही हैं। महान् विजय-लाभ करके महाराज राम अपने शिविर में उतने प्रसन्न नहीं दिखाई दे रहे जितने देने चाहिएँ। गम्भीर मुखमुद्रा बनाए वे मलयपीठिका पर आसीन हैं। निकट ही सौमित्र तथा हनुमान बैठे हैं और कोई गम्भीर विचार-विनिमय का वातावरण बन रहा है।

महाराज राम ने लक्ष्मण की ओर मुँह करके कहा—"बन्धुवर! हमारा अनुष्ठान पूर्ण हुआ। सीता का संकट शेष हो गया। लंकापति रावण विकट रूप से आहत होकर रणभूमि में पड़े हैं। तुम जानते हो अनेक प्रकार के निवेदन के बाद भी उन्होंने किसी चिकित्सक की सेवायें अस्वीकार कर दी हैं। निस्सन्देह हमें अपने स्वदेश लौटना है और उससे पूर्व विभीषण का अभिषेक सम्पन्न करना अधिक विलम्ब न करेगा। किन्तु भाई, लंकेश रावण राक्षस-वृत्ति के होते हुए भी इस युग के सबसे बड़े

वैज्ञानिक और पंडित हैं। वे बिना अपनी अन्तिम इच्छा व्यक्त किये हुए इहलीला संवरण कर रहे हैं। हमारी इच्छा है कि एक बार उनकी अन्तिम इच्छा अवश्य जानी जाय और उसे पूर्ण किया जाय। अब हम उनके साथ राज नियमानुसार बराबरी का व्यवहार करने की उत्कट इच्छा रखते हैं। बहुत विचार करने के बाद हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि जीवन-दीप बुझने से पूर्व तुम एक बार उनके पास जाकर उनकी अन्तिम इच्छा जानने का यत्न करो। हम उसे पूर्ण करना ही चाहते हैं। क्या यह सम्भव होगा ?"

लक्ष्मण—"प्रभो ! आपका अन्तिम वाक्य प्रश्नवाचक क्यों हो गया। आपकी जिह्वा से निकले शब्द मेरे लिए धर्मवाक्य से कम नहीं। मैं अवश्य और अविलम्ब रावण के पास जाता हूँ। कोई विशेष आदेश तो और नहीं ?"

राम—"मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि जब तक संसार रहेगा मनुष्य तुम्हें आदर्श अनुज की भाँति याद करेंगे। अब तुम तुरन्त रावण के निकट पहुँच जाओ और उनकी अन्तिम इच्छा मालूम करो। सन्ध्या के उत्सव से पूर्व यदि यह काम सम्भव हो सके तो हम सब निर्द्वंद्व होकर उसमें सम्मिलित हो सकेंगे।"

रामानुज द्रुतगति से रणस्थल की ओर प्रस्थान कर गये। रावण क्षतविक्षत भूमि पर पड़े हैं। चारों ओर उनका मुकुट, शस्त्र, शिरस्त्राण आदि फैले हैं। अभी-अभी कोई महिला वहाँ से लौटकर गई है, क्योंकि कुछ ही दूरी पर किसी जाती हुई महिला का उत्तरीय दिखाई दे रहा है। रावण के मुँह से आह नहीं निकल रही, नेत्र उनके आधे बन्द हैं, लगता है, जैसे वह अपने इष्टदेव की विनती में ध्यानस्थ हैं। लक्ष्मण का रथ कुछ इधर को रुक गया। शीघ्रता से वे उस ओर दौड़े जहाँ रावण भूमि पर पड़े थे।

निकट पहुँचकर समुद्र तट पर हुए अनुष्ठान की घटना से प्रभावित स्वाभिमानी लक्ष्मण ने झुककर नमस्कार किया। रावण ने धीमे स्वर में आशिष देते हुए कहा—"धर्म लाभ हो।" लक्ष्मण वहीं भूमि पर बैठ गये। रावण ने इंगित द्वारा निकट आकर बैठने को कहा। वे और निकट

पहुँच गये और नम्रतापूर्वक राम की इच्छा व्यक्त की—

"लंकापति ! नैतिकता और धर्म के इस युद्ध में प्रभु राम की विजय हुई। सम्भवतः आप महापंडित हैं, स्वयं जानते थे कि इस युद्ध का परिणाम क्या निकलेगा। किन्तु प्रभु राम को विजय से वह उल्लास नहीं, जो होना चाहिए। वे क्षत्रिय हैं और राजपुत्रों की भाँति आपसे व्यवहार करना चाहते हैं। आपने किसी भी चिकित्सक की सेवायें स्वीकार न कीं इसका भी उन्हें खेद है। किन्तु महाराज राम आपकी अन्तिम इच्छा जानने को इच्छुक हैं . . ."

रावण—"राजपुत्र लक्ष्मण ! महाराज राम से कहना, जब मैंने उनके अनुष्ठान का आचार्य-पद ग्रहण किया था उस समय मैं यह निश्चय कर लेना चाहता था कि वे वास्तव में नर के रूप में नारायण ही हैं। मुझे कुछ-कुछ विश्वास उसी समय हो गया था जब खर-दूषण जो मेरे ही समान बलशाली थे उनके शरों से मर गये थे। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया कि वह राम आ पहुँचा जिसके हाथ से मुझे स्वर्ग प्राप्त करना है। आपको शायद पता न हो कि मैंने प्रभु के हाथ से मुक्ति पाने का मार्ग अधिक सुगम समझा। भक्त बनकर बड़ा समय लगता। शत्रु बनकर वह मुझे सहज लगा। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मैं कुछ क्षणों में ही इस लोक का परित्याग कर दूँगा ···" निर्बलता बढ़ने लगी और रावण ने अपना अग्रभाग ऊपर उठाने का प्रयत्न किया। एक छटा उसके चेहरे पर छा गई। ज़ोर लगाकर उसने फिर कहना प्रारम्भ किया— "लक्ष्मण ! कहना राम से कि मैंने अपने जीते जी उन्हें अपने साम्राज्य में न घुसने दिया और उनके हाथ से प्राण त्याग मैं उनके साम्राज्य को जा रहा हूँ।" कमज़ोरी फिर बढ़ी और रावण फिर धराशायी हो गये।

कुछ रुककर, वे फिर बोले—"सौमित्र, उन्होंने मेरी अन्तिम इच्छा पूछी है। क्या करोगे वह पूछकर। भगवान् उसे पूरा न करेंगे और मैं भिक्षा भी न माँगूँगा कि वे उसे पूरा कर दें।" लक्ष्मण ने तुरन्त सहारा देकर रावण के बुझते जीवन दीप की बत्ती ठीक कर दी।

रावण—"मुझे आप से एक बात कहनी है वह यह कि जो शुभ कार्य जब मन में आवे तुरन्त कर डालो। मैं सोचता था कि मैं दीर्घजीवी

ँ, कुछ बातें जो करना चाहता था कभी भी कर लूँगा, किन्तु आज मैं उन ार्यों को अपूर्ण छोड़कर प्राणांत कर रहा हूँ।"

लक्ष्मण—"बताइये तो कि वे क्या कार्य थे ?"

रावण—"क्या बताऊँ, अच्छा सुनो। समय निकट आ पहुँचा, मैं ल्दी में हूँ। देखो, मैं स्वर्ग को सीढ़ी लगाना चाहता था, सोने को सुगन्ध-य बनाना चाहता था, खारी समुद्र को मीठा करना चाहता था और चाहता था अग्नि को निर्धूम करना। लेकिन वह सब अधूरा रह गया। भु से कहने की बात ही क्या है ? वे संसार के नियम में अन्तर डालना ंभवतः उचित न समझें। एक बात और। सीता माता ··· " लक्ष्मण मानो र्वत के शिखर से नीचे गिर पड़े हों। "सीता माता ! · · · "

रावण का बुझता दीप लुपलुपा उठा—"वे पवित्र हैं। मनसा, ाचा, कर्मणा वे परम् पवित्र हैं। प्रभु जानते हैं किन्तु कहीं मर्यादा की ीमा उन्हें कुछ अन्यथा करने को बाध्य न कर दे। यही मेरा संदेश है। अब विदा दो लक्ष्मण। आप शेषनाग के अवतार हैं। मैं भगवान् के रूप में ही आपके दर्शन कर रहा हूँ। शिष्य लक्ष्मण, तुम्हें नमस्कार करता हूँ। धर्म की जय हो।"

रावण वास्तव में जीवन-लीला समाप्त कर चुके थे। लक्ष्मण आर्द्र हृदय से भारी पग रखते लौटे, तब तक सायंकालीन वेदपाठ प्रारम्भ न हुआ था। उन्होंने प्रभु राम को समस्त वार्तालाप कह सुनाया। राम के ओठों में मधुर मुस्कान थी। रावण की वाणी उनके कानों में प्रतिध्वनित होती रही कि शंख और तूर्य के शब्द ने उन्हें संध्या की सूचना दी। और वे भगवती सीता के आगमन की बात भी सोचने लगे। वेद-पाठ का शब्द गूँजने लगा और मलयपीठिका से उठकर वे निकटवर्ती जलाशय की ओर बढ़ चले।

१९

वैदेही अशोक वाटिका से राम-शिविर में

सिंहल की राजधानी लंका में आर्यों के शिविर में आज विजयोत्सव का उल्लास छाया हुआ है। तोरणों पर लगी आम्रवल्लरियाँ और द्वारों पर लगे कदली पत्रों पर यौवन-सा छा रहा है। आज दिन में राम-रावण का नैतिक-युद्ध समाप्त हो गया। धर्म की जय हुई और अधर्म परास्त हुआ। महाराज राम सायंकालीन संध्या इत्यादि सामयिक से निवृत्त होकर रंगशाला में पधार गये हैं। उनके निकट प्रमुख अधिकारी-गण यथास्थान आसीन हैं। भक्तराज हनुमान ने प्रभु की आज्ञा से कहा—"महाराज! आज हमारा कार्य सम्पन्न हो गया। किन्तु असली कार्य अभी शेष है। माता अभी तक अशोक वाटिका से अपने शिविर में नहीं पधारीं। यदि आज्ञा हो तो . . ."

राम ने लक्ष्मण की ओर देखा। लक्ष्मण ने करबद्ध निवेदन किया—"प्रभु! वीरवर हनुमान एक बार अशोक वाटिका में माँ के दर्शन कर चुके।

अब तो दास पर अनुग्रह हो कि जाकर माता को ले आए। ”

राम ने कहा—“हाँ, ठीक है। कल-परसों में विभीषण के राज्याभिषेक के बाद हमें अयोध्या को लौटना ही है। अनुज भरत अब प्रतीक्षा में होंगे। लक्ष्मण तुम जाओ और सीता को ले आओ।”

लक्ष्मण द्रुत गति से सभा-भवन से उठकर अशोक वाटिका की ओर चल पड़े।

अशोक वाटिका का आज नाम सार्थक हो रहा है। वे राक्षसी परि-चारिकाएँ जो अब माता सीता के बहुत सन्निकट आ चुकी थीं उनके राम-शिविर में ले जाने की तैयारी में संलग्न थीं।

एक प्रतिहारी ने अन्दर संवाद दिया कि राजकुमार लक्ष्मण महारानी जी को लिवाने आ गये हैं और वे कुटी में आने को एक साथ उत्सुक ही नहीं व्याकुल भी हैं।

लक्ष्मण नेअन्दर प्रवेश किया और नेत्रों के जल ने भगवती के चरणों का प्रक्षालन किया। अबाध रूप से धरती महासती सीता और लक्ष्मण के परम् पवित्र अश्रुकणों को पीती रही।

लक्ष्मण—“माता ! अब देर कैसी ? द्वार पर रथ तैयार है। प्रभु सहित समस्त गुरुजन, स्नेही आपके स्वागत की प्रतीक्षा में हैं। कृपया चलिये। कितनी प्रतीक्षा के बाद यह समय देखने को मिला है।”

लक्ष्मण को अपने भाव व्यक्त करने को शब्द नहीं मिल रहे थे। वे शीघ्रातिशीघ्र राम-शिविर पहुँच जाना चाहते हैं।

आम्र के झुके पेड़ के नीचे से जब भगवती सीता निकलीं तो कोकिल बोल पड़ी मानों विदा दे रही हो। कुछ आम्र-पत्र झर-झरकर नीचे गिर गये मानो आम का वह वृक्ष जिसे इतने दिनों तक उनके सिर पर छत्र बनने का सौभाग्य प्राप्त रहा अपनी आँखें बिछा रहा हो। पीछे-पीछे लक्ष्मण और दासियाँ भी बाहर निकल आये। कुछ ही आगे बढ़कर सीता इंगित से एक अशोक वृक्ष की ओर उँगली करती हुई बोली—“लखन, यह वह वृक्ष है जिस पर बैठकर हनुमान ने प्रभु की मुद्रिका फैंकी थी। उस समय मैं इस शिलाखंड पर बड़ी दुखी बैठी थी और आज के दिन की कल्पना में व्यस्त थी। ···क्यों युद्ध में प्रभु को चोट तो नहीं आई ?”

और जैसे अंतिम प्रश्न करके वे स्वयं लजा गईं।

लक्ष्मण—"माता ! प्रभु को चोट कैसे आती। किन्तु जब मुझे मेघनाद की शक्ति लगी थी उस समय कहीं आप होतीं।"

सीता—"शक्ति ? अरे मुझे किसी ने क्यों नहीं बताया।" और मानों शक्ति की कल्पना से एक बार उनके ललाट पर स्वेद-बिन्दु दृष्टिगोचर हो गये। पग धीमे पड़ गये।

सीता—"उस ओर देख रहे हो। यह सब संहार हनुमान ने किया। उस दिन मानो लंका में और विशेषकर इस वाटिका में प्रलय का यह दृश्य उपस्थित हो गया था। हनुमान को क्रोधित करना कोई हँसी-खेल थोड़े ही था।" और फिर एक बार उन्हें हनुमान के उस दिन के शौर्य का ध्यान हो आया। किन्तु राम-शिविर में पहुँचने की आकुलता उनके पग-पग से स्पष्ट हो रही है।

वाटिका के सिंहद्वार पर रथ प्रतीक्षा कर रहा था। वैदेही उसमें बैठ गईं। दो-तीन परिचारिकाएँ भी बैठीं और घोड़ों की रास पकड़कर वीर लक्ष्मण भी सारथी के स्थान पर जा बैठे। रथ आगे बढ़ा। सीता आँखें फाड़-फाड़कर मार्ग के भवनों और राजमार्गों की शालीनता देखने लगीं। एक स्थान पर पहुँचते ही उनके मुँह से शब्द निकल पड़े—"आते समय, इस स्थान पर कुछ रुकने का ध्यान मुझे हो आया है और उस अवसर की कल्पना मात्र से मेरे गात में कँपकँपी उठने लगी है। लक्ष्मण, वेग से चलो, और वेग से चलो।" रथ फिर और वेग से आगे बढ़ा।

अनुचरों ने तूर्य और शंख-ध्वनि से सूचना दी कि माता सीता को लिए वीर लक्ष्मण का रथ शिविर के निकट पहुँच रहा है। प्रभु राम समस्त सभा सहित तोरण पर आ गये। सामने घोड़ों के शब्द और उड़ती धूल ने बता दिया कि महासती जानकी पहुँचने ही वाली हैं। राम ने इशारे से सुग्रीव को बुलाया।

"सुग्रीव ! यह अनुचित लगता है कि सीता इस प्रकार रथ में बैठकर ही यहाँ पहुँचे। तुम जाओ और उनसे निवेदन करो कि वे इतने दर्शनार्थियों का ध्यान करके, रथ वहीं छोड़ दें और लक्ष्मण सहित पैदल ही यहाँ पहुँचे।

उपस्थित व्यक्तियों नें से कुछ को इस आदेश पर आपत्ति हुई, किन्तु वह ओठों तक न आई। क्या भगवान् सामान्य व्यक्तियों की भाँति भगवती का स्वागत करना चाहते हैं? क्या उनका गंगाजल की भाँति पवित्र माता के साथ यह व्यवहार उचित है? किन्तु वे भगवान् हैं, कोई बात होगी।

सुग्रीव ने द्रुत गति से जाकर प्रभु का आदेश बता दिया क्योंकि रथ रुका, लक्ष्मण उतरे और रथी भी उतर पड़े। वैदेही मानो शील तथा लज्जा की मूर्ति हों। वे पग-पग आगे रखकर बढ़ रही हैं। उनके नेत्र ऊपर नहीं उठ रहे।

इधर महाराज राम तथा उनके समस्त साथियों के भाल भी झुके हुए हैं। कितने समय बाद यह मिलन हो रहा है। मानो युग बीत गये। सीता के मुख पर अनेक प्रकार के भाव आ-जा रहे हैं। अब वे और भी निकट पहुँच गईं तो प्रथम बार उनके नेत्र ऊपर उठे। उनमें जल इतना भरा है कि वे प्रभु के ठीक से दर्शन न कर सकीं। बूंदे नेत्रों के नीचे झर गई। एक बार फिर उन्होंने नेत्रों को उठाया और प्रथम बार प्रभु के नेत्रों से उनके नेत्र मिल गये। नैनों से ही उन्होंने प्रणाम किया और नैनों ने ही उत्तर दे दिया।

लेकिन यह क्या? प्रभु के नेत्रों में यह भाव अब कैसा? प्रथम बार उनके मन में संशय हुआ। क्या यह भी संभव है? समस्त शरीर पसीने से भर गया। पैर रुक गये। उन्होंने तुरन्त ही निर्णय किया कि अपनी पवित्रता को कसौटी पर कसना होगा। यह ठीक है कि शील की परीक्षा उचित नहीं, वांछनीय नहीं, किन्तु प्रभु मर्यादापुरुषोत्तम जो ठहरे उन्होंने पीछे मुड़कर लक्ष्मण की ओर देखा। लक्ष्मण गम्भीर वातावरण तथा प्रभु की आकृति से स्वयं संदेहशील थे। वे तुरन्त आगे बढ़ आये निकट पहुँचने पर वैदेही ने उनसे कुछ कहा, किन्तु भाई को भगवान् मानने वाले लक्ष्मण बिना उनके आदेश के क्या माता की आज्ञा पालन कर सकेंगे प्रभु के सामने जो आँखें कभी न उठीं थीं, उठ खड़ी हुईं। राजीवलोचन सब समझ रहे थे। उन्होंने अपने लोचनों से लक्ष्मण को अनुकूल आदेश दे दिया।

लक्ष्मण की स्थिति बड़ी विषम थी। वे माता सीता को यह प्रकट भी नहीं करना चाहते थे कि उनका आदेश पालन करने से पूर्व उन्हें भगवान् का आदेश प्राप्त कर लेना आवश्यक है। सब कुछ कुछ ही पलों में हो गया। किन्तु वैदेही में धैर्य न था, वे कुछ ज़ोर से बोल पड़ीं—"लक्ष्मण! अग्नि प्रज्वलित करो। शील की परीक्षा का समय आ पहुँचा। स्तब्ध क्यों हो? मर्यादा का निर्वाह तो होगा ही।" मानो अन्तिम शब्दों में हृदय के किसी कोने में छिपी आत्मीयता पर चोट की झलक उभर आई।

लक्ष्मण ने तुरन्त पावक प्रकट कर दिया। बड़े-बड़े शोले उठ निकले और तभी साश्चर्य उपस्थित समुदाय ने देखा, भगवान राम जब कि श्वेत मरमर की भाँति शान्त थे वैदेही अग्नि में प्रविष्ट हो गई। एक बार लौ भड़की, किन्तु शनैः-शनैः वह कम हो निकली। वैदेही के क्रोध तथा स्वाभिमानपूर्ण शब्द नहीं भुलाये जा सकते। मानो वे वायुमण्डल में बार-बार प्रतिध्वनित हो रहे थे—"पवित्र पावक, पवित्रता को जीवित रख और शेष को भस्म कर दे।"

कुछ ही क्षणों में अग्नि समाप्त हो गई और नेत्र मूँदे सीता प्रकट हो गईं। जिस प्रकार अग्नि में पड़कर स्वर्ण कुन्दन हो जाता है उसी प्रकार भगवती प्रकट हुईं। राम के चेहरे पर उतरते-चढ़ते भाव अवश्य कभी प्रकट हो जाते थे, वह भी परिचित नयन को। वे जैसे पहले खड़े थे अब भी उसी प्रकार बिना हिले खड़े थे। कुछ उपस्थित व्यक्ति इधर-उधर हो गये थे। वैदेही के साथवाली परिचारिकाएँ अर्धमूर्छित अवस्था में खड़ी न रह सकी थीं।

राम ने आगे चलकर सबको बता दिया कि अब शिविर में चलना है। राम के पीछे सीता और फिर उन दोनों के पीछे सब चल पड़े। राम की पर्णकुटी के निकट ही जो इसी सायंकाल एक कुटी बनाई गई थी सीता को उसी ओर ले जाया गया। जब वे प्रभु के निकट से निकलीं तो उन्होंने शान्त स्वर में सिर्फ़ इतना कहा "सीते! अवधि के दिन अब समाप्त हो रहे हैं। अब अवध को लौटना है।"

२०

विभीषण का राज्याभिषेक

आज लंका नववधू के समान सजाई गई है। सम्राट् विभीषण का राज्याभिषेक हो रहा है। और उधर रघुपति राजा राम अभिषेक सम्पन्न होते ही अयोध्या को लौट जायँगे। प्रकार-प्रकार के रेशमी वस्त्र मुख्य पथों के दोनों ओर लटकाए जा रहे हैं। यांत्रिक विभाग विद्युत-व्यवस्था को ठीक करने में लगा है। चारों ओर एक विचित्र चहल-पहल हो रही है। यह वही दो दिन पूर्व की लंका है जहाँ राम-रावण-युद्ध के कारण चारों दिशाओं में आयुधों की गड़गड़ाहट और हताहतों की चिल्लाहट का आर्त्तनाद गूँज रहा था। आज मन्दिरों और उपासनाग्रहों में घंटे बज रहे हैं। राम की जय-जयकार हो रही है। जहाँ राम का नाम लेने पर प्रतिबन्ध था वहाँ आज उनकी कथाएँ हो रही हैं। लंका के नागरिक अपने नवीन सम्राट् से अधिक महाराज राम के दर्शनों की लालसा कर रहे हैं।

राम-शिविर में घर लौटने के वातावरण ने अजीब उल्लास भर दिया है। हर ओर सामान बाँधा जा रहा है। विमानों और रथों को ठीक किया जा रहा है। महाराज राम प्रातःकालीन धार्मिक क्रियाओं से निवृत्त होकर सभामंडप में विराजमान हैं। निकट ही महारानी सीता, लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, जामवन्त, हनुमान, नल-नील तथा अनेक प्रमुख परामर्शदाता आसीन हैं। अंगरक्षकों की चुस्ती आज देखने योग्य है। प्रधान सूचनाधिकारी ने करबद्ध निवेदन किया कि अभिषेक का समय

हो गया और सम्राट् विभीषण का विशेष दूत दर्शन पाने के लिये उत्सुक है।

राम—"उन्हें आने दो।"

दूत—"प्रभु ! मैं सम्राट् विभीषण की ओर से निमंत्रण प्रस्तुत करने उपस्थित हुआ हूँ। अभिषेक का समस्त आयोजन हो चुका, प्रभु के दर्शन पाने के लिये सम्राट् सपरिषद् उत्सुक हैं। उन्होने यह भी निवेदन करने को कहा है प्रभु सदल बल पधारें। आदेश की प्रतीक्षा है।"

राम—"सौम्य ! विभीषण से कहना कि पिता की आज्ञा पालनार्थ मेरा नगर में प्रवेश निषिद्ध है, अतः लक्ष्मण की उपस्थिति मेरी उपस्थिति समझी जाय।"

दूत—"देव ! हमारे प्रभु ने इसी कारण तो राज्याभिषेक उत्सव नगर से दूर मनाने का आयोजन किया है। वहाँ नगर नहीं, बस्ती नहीं। अब अनुचर को क्या आदेश होता है ?"

राम—"सौम्य ! तब ठीक है, बन्धु विभीषण से कहिये कि राम बन्धु-बांधवों सहित शीघ्र ही उपस्थित होगा।"

तैयारी पहले ही पूर्ण हो चुकी थी। सूर्य ध्वज का रथ पहले और उसके पीछे विभिन्न पताका वाले अनेकों रथ पीछे-पीछे चल पड़े। मार्ग की शोभा देखकर एक बार महाराज राम के हृदय में अयोध्या की स्मृति जागृत हो गई। जब रथ रुका और स्वयं विभीषण ने द्वार पर स्वागत किया तो प्रभु का ध्यान उधर आया। धीरे-धीरे समस्त आगत विशाल शामियाने में प्रविष्ट हो गये। राम के जयनाद से आकाश गूँज उठा। विभिन्न वाद्यों पर वेदमंत्रों की धुनें बजाई गईं और रीत्यानुसार सम्राट् के दाहिनी ओर उच्चासन पर प्रभु राम आसीन हुए। मध्य में सम्राट् विभीषण व पटरानी विराजमान थीं। महिषी के बाईं ओर उच्चासन पर महारानी सीता विराजमान हो गईं। और समस्त आगत व्यक्ति अपने-अपने आसनों पर बैठ गये। धार्मिक क्रियाएँ प्रारम्भ हुईं।

अंगदराज को वह घटना याद हो आई जब इसी प्रकार के एक विशाल कक्ष में कुछ समय पूर्व उन्होंने अपना पैर जमा दिया था और लंकापति रावण के क्रोध का पारावार न रहा था। वे निकट ही बैठे

वीर हनुमान को धीरे-धीरे वह घटना सुना गये ।

क्रियाएँ समाप्त हुईं । राजपुरोहित ने रत्नजटित मुकुट विभीषण तथा महिषी के शिरों पर पहना दिये । महाराज राम की ओर से जो आशीर्वाद दिया गया वह वर्णनातीत है । उन्होंने अपने स्वल्प भाषण में कर्त्तव्य, मर्यादा तथा राज्यपालन पर प्रकाश डाला । उन्होंने दुहराकर कहा कि जो राजा अपनी प्रजा का सेवक नहीं वह राज्य करने योग्य नहीं । राजा को सामान्य से सामान्य व्यक्ति की इच्छा का ध्यान रखना परमावश्यक है । यदि एक व्यक्ति भी उसके सम्बन्ध में शंकाशील हो तो उसे राज्य-भार परित्याग कर देना चाहिए ।

अन्त में उन्होंने लंका की जनता के प्रति सद्‌भावना प्रकट की और शीघ्र ही अवध लौट जाने की इच्छा व्यक्त की ।

सम्राट् विभीषण ने प्रभु को सायंकालीन स्वागत-समारोह में सम्मिलित होने के लिये विनम्र निवेदन किया जिसे उन्होंने स्वीकार कर लिया ।

× × ×

राम-शिविर के सभा भवन में महाराज राम विराजमान हैं । समस्त प्रमुख बन्धु-बांधव भी यथास्थान बैठे हैं । सायंकाल होने जा रहा है। और उससे पूर्व प्रभु कुछ कहने को उत्सुक जान पड़ते हैं । लक्ष्मण को पास बुला प्रभु सस्मिति बोले—"लक्ष्मण, आज एक सम्राट् के यहाँ स्वागत-समारोह है । हो सकता है हम में से कुछ राजकीय भोजन परम्परा से परिचित न हों विशेषकर हमारे वानर बन्धु , तो हमारी राय है कि वे थोड़े सजग रहें तो ठीक हो । तुम बन्धु सुग्रीव से यह संकेत कर दो कि वे भोजन करते समय हम लोगों की ओर देख लिया करेंगे ।"

बात निश्चित हो गई और महाराज राम सदलबल स्वागत-समारोह में पधारे। विशाल कक्ष के एक ओर मध्य में विभीषण और महाराज राम के स्थान थे । श्री राम के निकट वीर लक्ष्मण, सुग्रीव, अंगद, जामवन्त तथा हनुमान के आसन थे और उनके बाद पदानुसार अन्य व्यक्ति विराजमान हुए। सम्राट् विभीषण की ओर आमात्यगण तथा विभिन्न उच्चाधिकारी बैठे । सामने स्वर्ण निर्मित थालों में विभिन्न प्रकार

के व्यंजन सजे हुए थे। लवण तथा अन्य मसाले भी छोटी-छोटी कटोरियों म रखे थे। अन्य फलों सहित नीबू का आधा-आधा भाग भी प्रस्तुत था।

प्रभु राम ने देखा कि नीबू के बीज नहीं निकाले गये और यदि वानरगण उसे यूँही खा गये तो हो सकता है कोई शिकायत उन्हें पैदा हो जाय। इसलिये उन्होंने नीबू को उँगलियों में उठाया। सुग्रीव ने देखा कि समय इशारे का आ गया जान पड़ता है। उन्होंने भी नीबू उठा लिया। राम ने उसे दबाकर बीज निकाला तो वह उछलकर ऊपर चला गया। सुग्रीव ने भी बीज निकाला तो वह भी उछला। बस, फिर क्या था वानरों ने समझा संकेत ऊपर उछलने का है। उन्होंने अपने स्थानों पर कूदना आरम्भ कर दिया। अंगद ने देखा कि सभी वानर कूद रहे हैं, तो उन्होंने एक ऊँची कूद लगाई और उनका सिर सबसे ऊँचा हो गया। विभीषण की ओर के व्यक्ति सकते में आ गये कि आखिर हुआ क्या? सुग्रीव को बड़ा संकोच हुआ। लक्ष्मण के मुख पर लालिमा छा गई, किन्तु जामवन्त ने खड़े होकर कहा—"प्रभु राम, सम्राट् विभीषण तथा अन्य प्रतिष्ठित भद्र सज्जनो! वानरों की कूद से आपके मुखों पर आश्चर्य के भाव प्रकट हो रहे हैं। बात वास्तव में यह है कि वानरों में ऐसा रिवाज है कि आनन्द और प्रसन्नता के अवसरों पर कूद लगाकर अपने उल्लास का प्रदर्शन करते हैं। लगता है कि आप महानुभाव इस प्रथा से अपरिचित हैं इसी कारण आपको आश्चर्य हो रहा है।"

लक्ष्मण ने जामवन्त की प्रत्युत्पन्न मति की मन ही मन सराहना की और तभी सम्राट् विभीषण ने खड़े होकर निवेदन किया—"हमारे सब के अनन्त सौभाग्य के कारण ही प्रभु राम के दर्शनों का सौभाग्य हमें प्राप्त हुआ। यह एक दुखद विषय रहा कि उनके आगमन का निमित्त हृदय को आघात पहुँचाता है। उस ओर माता सीता विराजमान हैं। उनके प्रति हम सब अपराधी की भाँति खड़े हों और वे प्राण-दण्ड दे दें तो भी प्रायश्चित न होगा। किन्तु हमें यह गर्व है कि लंका उनके स्वागत में पलक-पांवड़े बिछा रही है और बिछाती रही है। उनको किसी प्रकार का कष्ट न हो इसका पूरा ध्यान रखा गया, किन्तु फिर भी

प्रभु का वियोग कुछ कम न रहा। मैं अपने देश और उसकी जनता के प्रतिनिधि के रूप में उनसे बार-बार क्षमा-प्रार्थी हूँ।

"प्रभु राम के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने का साहस मुझ में नहीं। मैं तो प्रयत्न करके वीर लक्ष्मण का आभार मानने योग्य तक नहीं। फिर भी मैं अशिष्टता न करूँगा। मैं नतमस्तक होकर प्रभु, सौमित्र तथा अन्य समस्त आगत आर्यों के प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ। अब आपसे निवेदन है कि स्वागत-समारोह के प्रीतिभोज का आरम्भ कीजिए।"

सुस्वाद भोजन पूर्ण हुआ। भगवान् और उनके पीछे-पीछे समस्त व्यक्ति आगे चले। विभीषण ने करबद्ध प्रार्थना की कि प्रभु दक्षिण के संगीत, गान और नृत्य के आयोजन में पधारें। राम इन्कार न कर सके। वे चलते-चलते उधर नाट्यशाला से भी निकले किन्तु रुके नहीं। इशारे से उन्होंने जो ठहरना चाहें उन्हें आज्ञा प्रदान कर दी। अब सिंह-द्वार आ गया। सारथी रथ ले आया तो विभीषण ने झुककर राम के चरणों की रज मस्तक पर धारण कर ली। और कहा—"प्रभु! क्या कल ही अयोध्या लौटने का विचार है? दास कल सूर्योदय से पूर्व ही सेवा में उपस्थित होने की अनुमति चाहता है।"

राम—"बन्धुवर! यदि असुविधा न हो तो एक घड़ी दिन चढ़े पधारें, उस समय तक हम सब अग्निहोत्र आदि से निवृत्त हो लेंगे। और उसके कुछ ही बाद आपसे विदा लेंगे। आप लौट जाइये और अभिषेक के उपलक्ष में हो रहे उत्सव में सम्मिलित होइये।"

एक बार पुनः चरण स्पर्श करके विभीषण खड़े हो गये और प्रभु राम रथ में बैठकर चल दिये। 'जय राम' का घोष आकाश में गूँज गया।

२१

लंका से अयोध्या-प्रस्थान से पूर्व

लंकास्थित राम-शिविर में अयोध्या लौटने की तैयारियाँ पूर्ण हो चुकीं। आज दोपहर दिन चढ़े प्रस्थान का मुहूर्त है और प्रभु राम से मिलने के लिये लंका के नये सम्राट् विभीषण आने वाले हैं। शिविर के बाहर लंकावासियों की भीड़ लगी हुई है। कभी-कभी 'जय राम' का घोष सुनाई पड़ रहा है। राम को जितनी जल्दी अयोध्या लौटने की है उससे कहीं अधिक दुःख साथियों को है उनका साथ बिछुड़ने का। प्रमुख प्रतिहारी ने सूचना दी कि सम्राट् विभीषण दर्शन के अभिलाषी हैं। राम ने इंगित द्वारा आज्ञा प्रदान कर दी। विभीषण अन्दर आ गये और प्रभु को साष्टांग प्रणाम कर एक ओर खड़े हो गये।

राम—"बैठो बन्धु, आपके स्नेह और सहायता के लिए साधुवाद। राज-पुरोहित ने आज दो प्रहर दिन चढ़े प्रस्थान का मुहूर्त बताया है। हम सब विदा लेते समय हृदय में प्रेम लेकर ही लौटेंगे।"

विभीषण—"आपके अनुपम अनुग्रह और अनुकम्पा से दास का रोम-रोम आभारी है। अनुचर को कुछ पुष्प भेंट करने का अवसर प्रदान किया जाय।"

विभीषण सोच रहे थे कि रावण के रत्नागार का सर्वोत्तम उपयोग

उसे प्रभु राम के चरणों में अर्पित करके ही किया जा सकता है। हृदय के एक कोने में कहीं यह भावना भी प्रच्छन्न रूप से छिपी पड़ी थी कि संसार के अपूर्व रत्न और मुक्ता श्रीलंका के रत्नागार की ही निधि हैं और प्रभु राम नारायण ही सही एक बार उन रत्नाभरणों को देखकर अवश्य प्रसन्न हो जायेंगे। विभीषण की रामभक्ति का प्रदर्शन भी उससे कम न होगा।

विभीषण के चेहरे पर उतरते-चढ़ते भाव रामाज्ञा की प्रतीक्षा कर रहे थे। महाराज राम कुछ क्षण तक मौन रहे मानो विभीषण के निवेदन पर पूर्णरूपेण विचार कर रहे हों। किन्तु फिर बोले––"लंकापति! आपका अपार स्नेह आपकी भेंट है। इससे अधिक भेंट अपेक्षित नहीं।"

विभीषण का चेहरा उतर गया। कल रातभर उन्होंने रत्नों के आँकने में लगाई है और अब प्रभु उसे स्वीकार करने को तैयार ही नहीं हो रहे। उन्होंने दयनीय नेत्रों से एक बार पुनः निवेदन किया–

"महाराज! मुझे ऐसा लग रहा है कि मैं भेंट अर्पित करने के योग्य नहीं, किन्तु फिर भी आपके अपरिमित सौजन्य के बल पर ही मैं पुनः निवेदन करने की धृष्टता कर रहा हूँ।"

राम–"बन्धु, भेंट की यह आकुलता क्यों ?" लक्ष्मण, सुग्रीव आदि की ओर मुड़कर––"क्यों लक्ष्मण! आप भी कहिये, सुग्रीव! लंकापति विभीषण कुछ पुष्प-भेंट करना चाहते हैं, हमारा कहना है कि उनका स्नेह ही सबसे बड़ी भेंट है।"

लक्ष्मण और सुग्रीव न समझ सके कि क्या उत्तर दें ? किन्तु वे यह नहीं समझ पा रहे कि पुष्प-भेंट को प्रभु क्यों अस्वीकार कर रहे हैं ? दोनों के मुखों पर प्रश्नवाचक चिन्ह देखकर महाराज राम ने कहा– "बन्धु विभीषण ! हमारे अनुज और बलाधिकृत आपकी बात का निषेध नहीं कर रहे अतः आप पुष्प-भेंट कर सकते हैं। मात्र पुष्प-भेंट।"

विभीषण के चेहरे पर जो मलिनता आ गई थी वह दूर हो गई और शिविर के बाहर श्वेत और श्यामल अश्वों के विशालकाय रथों में स्वर्ण और रोप्य के थालों में जो रत्नाभूषण रखे थे उनको भेंट करने के लिये उन्होंने बाहर जाने की अनुमति चाही। श्यामल अंगवाले विभिन्न

प्रकार के रंगीन परिधानों में सज्जित अनुचर रेशमी वस्त्रों से ढके भरे हुए थाल हाथों में लिये शिविर में प्रविष्ट हो निकले। उनकी लम्बी पंक्ति अन्दर से रथों तक पूरी लग गई फिर भी बहुत से अनुचर अभी थाल उठाने की प्रतीक्षा में रहे। विभीषण ने प्रथम पात्र हाथ में लिया और आगे बढ़कर महाराज राम की मलयपीठिका तक पहुँच गये। उन्होंने रेशमी वस्त्र थाल पर से उठाया तो अन्दर से चमकते हुए हीरक, माणिक, पन्ना, नीलम, याकूत और मुक्ताओं की आभा प्रकाशमान हो गई। प्रभु राम ने मुस्काकर लक्ष्मण और सुग्रीव की ओर देखा मानो कह रहे हों कि देख लो इसी कारण मैं भेंट स्वीकार करने से कतरा रहा था। लक्ष्मण और सुग्रीव को विभीषण की यह भेंट अनुपयुक्त लगी। महाराज राम सस्मित बोले—"लंकापति ! क्या आपके यहाँ इन्हीं को पुष्प कहा जाता है ? राम इस सम्बन्ध में इतना अकिंचन है कि वह इन सबको स्वीकार करने की कल्पना भी नहीं कर सकता। पुष्प-भेंट की बात आपने की और अब यह सब क्या ? हम तो वन-विहार के इन लम्बे वर्षों में इनके नाम भी भूल चुके हैं। मानव मानव के बीच इस प्रकार की भेंट अपेक्षित है हम सब तो यह भी नहीं जानते। हम कल्पना करते थे कि आप पाटल, रजनीगंधा, हरसिंगार जाने किन पुष्पों की भेंट करने वाले हैं। एक बार यह ध्यान भी मन में आया कि जम्बूद्वीप के इस खण्ड में न जाने कौन से विशेष पुष्प आपको यह भेंट करने के लिए प्रेरित कर रहे हैं। बन्धुवर ! आप ही कहिये यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है ? कदाचित् इसे तो अनुज भरत भी, जिनके कंधों पर इन दिनों अयोध्या का राज्यभार है, स्वीकार न करते। इन सब परम्पराओं के हम आदी नहीं। आशा है आप अन्यथा न समझेंगे।"

एक बार फिर विभीषण अप्रतिभ हो गये, किन्तु वे अपनत्व की बाज़ी लगाकर भी इस भेंट को वापस ले जाना नहीं चाहते। उन्होंने कुछ सोचकर निवेदन किया—"महाराज ! हो सकता है कि आप इसे अस्वीकार कर दें किन्तु हमारे वे साथी जिन्होंने इस धर्म और नैतिक युद्ध में कंधे-से-कंधा भिड़ाकर भाग लिया कदाचित् अस्वीकार न करें।"

लक्ष्मण, सुग्रीव, जामवन्त तथा हनुमान को यह सुझाव अच्छा न

लगा किन्तु भगवान के चेहरे पर फिर मुस्कराहट खेल गई। उन्होंने कहा—"लंकापति ! आपका सुझाव असामयिक नहीं किन्तु हमारा विचार है कि सम्भवत: हमारे शिविर के किसी भी बांधव को यह रुचिकर न लगे। इतने व्यक्ति यहाँ विद्यमान हैं इनसे आप पूछ सकते हैं।"

विभीषण—"मगर प्रभो! प्रस्थान का समय सन्निकट है, और यह सम्भव नहीं कि मैं समस्त नायकों से निवेदन कर सकूँ। यहाँ पर तो केवल पचास-साठ श्रेष्ठजन विद्यमान हैं। मैं बड़े असमंजस में हूँ। यह मैं कहने का साहस नहीं कर पा रहा कि इन्हें लौटा ले जाने में मुझे आपके प्रति अपनी भक्ति में न्यूनता अनुभव होती है। आदेश की प्रतीक्षा में हूँ।"

राम के मन में एक विचार एक क्षण को आया कि क्या हमारे शिविरवासी इन रत्नाभरणों का लोभ संवरण करने में समर्थ होंगे? क्यों न इसे कसौटी ही बना दिया जाय। हास्य की रेखा फिर चन्द्रानन पर स्पष्ट हो गई। उन्होंने कहा—"लंकापति! आपकी ऐसी ही इच्छा है तो एक बात ही शेष है। प्रस्थान का मुहूर्त टल न सकेगा। हम नियत समय पर ही चल देंगे। इस समय सैनिक अपने-अपने प्रस्थान-कार्यों में व्यस्त हैं। यदि आप भेंट लौटाना नहीं चाहते तो किसी विमान में भर-कर इन्हें बरसा दीजिये, यदि कोई पसन्द करेगा तो उठा लेगा। यही इस अन्तिम घड़ी में सम्भव है।"

विभीषण को बड़ी प्रसन्नता हुई। उनका निवेदन स्वीकार्य हो गया। तत्क्षण उन रत्नाभूषणों को विमान में लादने की व्यवस्था की गई और लंका की राजधानी के उस भाग पर जल की वर्षा के स्थान पर रत्नों की वर्षा की गई। कुछ वानरों ने देखा कि कुछ पत्थर के टुकड़े इधर-उधर गिर पड़े। कुछ के शरीरों पर भी वे लगे और कुछ क्षणों तक उनके चेहरों पर क्रोध भी झलक आया। दो एक ने मुक्ताओं की चमक से प्रभावित होकर उन्हें उठा लिया और उन्हें हाथ से तोड़ने का यत्न किया किन्तु सफल न हुए, फिर दाँतों से भी कुतरने का प्रयत्न किया किन्तु यह देखकर कि वह कोई फल-फूल नहीं वहीं फेंक दिया।

विभीषण ने समस्त दृश्य देखा, उनका उत्साह भंग हो निकला और

उनके हृदय में यह भाव उत्पन्न होने लगा कि रत्नों का जो गर्व मन में था तो क्या उसके प्रतिकारस्वरूप ही यह सब घटना घटित हुई है ? यहाँ तक कि किसी सैनिक तक ने एक रत्न भी नहीं छुआ। इनके चेहरे पर कालिमा छा गई और वे प्रभु राम के शिविर में पुनः लौट आए। राम के चेहरे पर अब भी वही प्रसन्नता की आभा थी। वे बोले कुछ नहीं किन्तु विभीषण के गर्व के खर्व होने पर उन्हें एक प्रकार का संतोष था, अपने शिविरवासियों की भक्ति और श्रद्धा पर उन्हें आनन्द अनुभव हुआ।

प्रस्थान का समय आ गया। प्रभु शिविर से बाहर निकल आए और लंकावासियों की उमड़ती हुई भीड़ को संबोधन करके उन्होंने कहा—"बन्धुओ ! इस युद्ध में हमें अपनी इच्छा के विरुद्ध पड़ना पड़ा। कठोर अनुशासन के बाद भी यद्यपि कोई शिकायत किसी प्रकार की अभी तक प्राप्त नहीं हुई, हो सकता है हमारे शिविरवासियों में से किसी के द्वारा आपका अलाभ हो गया हो, उसका मुझे खेद है। किसी भी नागरिक को किसी प्रकार का कोई कष्ट न पहुँचे, इसकी पूरी सावधानी रखी गई।" फिर चारों ओर बिखरे रत्नों की ओर उनकी दृष्टि गई—"यह सब आपके हैं आप ले लीजिए। हम लोग इन्हें अधिक नहीं समझते। जीवन में इनसे परे जो कुछ है उसकी कामना करते हैं। आप लोगों के आतिथ्य और सौजन्यता के लिये मैं आप सबको साधुवाद कहने के अतिरिक्त कुछ नहीं कह सकता। अब विदा दीजिए।"

विभीषण के नीर के भरे नैन सामने थे। देखते-ही-देखते विमान तैयार हो गया। और विभीषण बारम्बार प्रभु के चरणों की रज मस्तक पर लगा रहे थे। विदा का समय आ गया और उस समय कोई नेत्र ऐसा न था जिसमें प्रेमाश्रुओं का अभाव हो।

२२

लंका से प्रयागराज

महाराज राम का लंका से अयोध्या-प्रस्थान का मुहूर्त आ पहुँचा। महाराज पुष्पक विमान की ओर बढ़ रहे हैं। उनके पीछे महारानी सीता, वीरवर लक्ष्मण, लंकापति विभीषण, साम्राज्ञी मन्दोदरी, राजा सुग्रीव, राजकुमार अंगद, मंत्रीराज जामवंत, अंजनासुत हनुमान, अभियांत्रिकद्वय नल-नील और पीछे वानर सेनानायक तथा सैनिक चल रहे हैं। चारों ओर लंकावासियों का अपार जनसमूह है जो 'जय राम' का घोष कर रहा है।

प्रभु मुड़े और बोले—"बन्धु विभीषण और महिषी मन्दोदरी! अब आप लौट जाइये। भाई सुग्रीव, तात अंगद आप भी किष्किंधा के लिए सदल बल प्रस्थान कीजिये। लंकावासी बन्धुओ! आपकी कृपा के लिए धन्यवाद, अब आप भी विदा दीजिये।" किन्तु कोई भी व्यक्ति लौटना नहीं चाहता।

लंकापति विभीषण ने भरे हुए गले से कहा—"महाराज ! मैं तो लौट न सकूँगा। आपके साथ अयोध्या तक चलने की अनुमति का अभिलाषी हूँ।" मन्दोदरी से—"भद्रे ! आप लौट जाइये।"

प्रभु राम ने सुग्रीव की ओर देखा। सुग्रीव बोले—"प्रभु ! लगता है लंकापति का निवेदन स्वीकार हो गया। पुष्पक में मुझ दास के लिये स्थान अवश्य होगा।" प्रभु के नेत्र अंगद की ओर गये। अंगद के नेत्र आँसुओं से भरे हुए थे, उन्होंने बोलने का प्रयत्न किया लेकिन बोल न सके। हनुमान की ओर प्रभु स्वयं आँख न उठा सके। अब समस्या यह उत्पन्न हुई कि कौन पुष्पक में प्रभु के साथ जाए और कौन स्वदेश लौटे ?

प्रभु ने स्थिति को समझा और बोले—"लगता है आप में से कोई लौटने को तैयार नहीं। मेरा हृदय भी वह कठोरता झेलने को तैयार नहीं कि आपकी भावनाओं की कद्र न करूँ। किन्तु बन्धु सुग्रीव ! आपके राज्य का क्या होगा ? मंत्रीवर जामवंत को लश्कर के साथ सीधे किष्किन्धा भेज दीजिये। प्रियवर अंगद हमारे साथ ही चलेंगे। किन्तु बन्धु विभीषण! आप को एक बार अवश्य नयी परिस्थितियों का ध्यान करना चाहिए। अब तुम लंकापति हो और यहाँ के पुनर्निर्माण आदि की समस्या तथा राज्य की व्यवस्था का ध्यान तो करना आवश्यक है।"

विभीषण—"प्रभु ! वह पद भी आपके आदेश और आग्रह पर ही मैंने ग्रहण किया है। मैं उस पद का परित्याग करने के लिये प्रस्तुत हूँ।"

राम—"कुछ अन्यथा न समझो विभीषण। अपने प्रधान–आमात्य तथा महिषी मन्दोदरी से अनुमति प्राप्त करना आवश्यक है।"

विभीषण—"प्रभु ! मुझे पूर्णाशा है कि यह दोनों व्यक्ति मेरे आपकी सेवा में जाने से प्रसन्न ही होंगे।" मन्दोदरी से—"भद्रे ! क्या परामर्श है तुम्हारा ?" भरे गले से मन्दोदरी के मुख से भी शब्द न निकला, उन्होंने सिर हिलाकर अनुकूल मत व्यक्त कर दिया।

अब समय व्यर्थ न जाय इसलिए प्रभु पुष्पक में सवार हो गये। महारानी सीता, लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, अंगद तथा हनुमान के अतिरिक्त केवल एक अंगरक्षक और एक सेविका विमान में बैठ गये। अंतिम बार प्रभु के लोचनों ने अपार भीड़ के नमस्कार का उत्तर दिया और घर-घर

शब्द करता पुष्पक आकाश में उड़ चला।

कुछ ही समय व्यतीत हुआ होगा कि प्रभु ने महारानी सीता की ओर एक क्षण के लिये नेत्र फेरे और कहा—"सीते! हमारे ठीक नीचे देखो, वहाँ आचार्य महापंडित रावण ने विजय-लिंग की स्थापना कराई थी और तुम्हारे ये लक्ष्मण और हनुमान उस अनुष्ठान के सफल होने की शंका करते थे, किन्तु आज मानो रावण को परास्त करके हृदय में ऐसा लगता है कि हमारी विजय उसके आचार्यपद ग्रहण करने के महान् कार्य के समक्ष बहुत हल्की हो। पूछो इन पवनसुत से कि बालुका-लिंग को उखाड़ फेंकने में इन्होंने क्या-कुछ कसर बाकी रखी थी किन्तु सब निष्फल।" हनुमान लज्जित हो गये और सौमित्र के चेहरे पर भी परिवर्तन हो गया। कुछ ही क्षणों में विमान आगे निकल गया।

समय और बीता कि सीता एक साथ कह निकली—"देखना, यह तो पंचवटी का-सा स्थान ज्ञात होता है?" कह तो गई किन्तु साथ ही वहाँ की अप्रिय घटना की याद भी ताज़ा हो गई और एक साथ उनके नेत्र कुछ देखने के लिये प्रभु के नेत्रों से जा लगे। राजीवलोचन के चेहरे पर कोई भाव न था। ऐसा लगता था कि मानो वे कही और की बातें विचार रहे हों। कोई कुछ न बोला।

कुछ देर बाद ही प्रभु मानो कहने लगे—"सम्भवतः आज सायंकाल को ही हमारे बनवास की अवधि समाप्त हो रही है। आप में से कोई क्या गणित करके देखेंगे?"

लक्ष्मण और हनुमान एक साथ—"हाँ प्रभु! हम तो कब से एक-एक दिन का हिसाब लगाते रहे हैं। जब तक हम अयोध्या पहुँचेंगे, अवधि समाप्त हो जायगी।"

प्रभु फिर मौन हो गये मानो उनके मस्तिष्क में उलझी गुत्थी अभी भी सुलझी न हो। अब सीता, लक्ष्मण, विभीषण, हनुमान आदि कुछ चिंतित हुए कि प्रभु ने अयोध्या पहुँचने का स्पष्ट आदेश क्यों नहीं दिया। अब कौन सी बाधा शेष है? हर मस्तिष्क चारों ओर के विचारों से भर गया।

असमंजस की स्थिति कुछ देर और चली कि किष्किंधा के ऊँचे-ऊँचे प्रासादों के गुम्बद दिखाई देने लगे। सुग्रीव के नेत्र एक साथ झरोखे में लगे

पारदर्शी शीशे पर जा लगे जहाँ पर बृहदाकार होकर नीचे की दृश्यावलि दिखाई दे रही है। एक साथ सुतारा का ध्यान उन्हें हो आया और कुछ समय तक वे चित्र-लिखे से रह गये। अंगद की आँखों में भी एक बार चमक आई, किन्तु उनका ध्यान शीघ्र ही प्रभु की ओर गया जिनके मुख पर शालीनतापूर्ण हास्य दृष्टिगोचर हो रहा था।

प्रभु बोले—"सीते! जानती हो हमसे ठीक नीचे महिषी सुतारा अपने आराध्य के ध्यान में संलग्न है तो यहाँ आकाश में बन्धु सुग्रीव भी अपने आपको बिलकुल भुला चुके हैं—देखो उधर ध्यान तो दो।" सुग्रीव इस अति आत्मीय और शिष्ट हास्य से द्रवित हो गये कि इतनी देर में विमान किष्किधा को पीछे छोड़ चुका था।

लक्ष्मण ने कहा—"प्रभु! अब अयोध्या पहुँचने में अधिक विलम्ब नहीं। सम्भवतः प्रयागराज अभी पहुँचे जाते हैं और वहाँ से अयोध्या पहुँचने में कितनी देर लगेगी।" प्रयागराज के नाम ने मानो प्रभु की गुत्थी सुलझा दी। उन्होंने कहा—"पहले हम त्रिवेणी-स्नान करेंगे तब अयोध्या-प्रवेश होगा। आप सब लोगों की इसमें क्या सम्मति है?" बात प्रश्न न होकर पूर्ण थी।

थोड़ी देर में विमान से गंगा की धारा दिखाई देने लगी। और एक साथ सबने हाथ जोड़कर मस्तक पर लगाये, परम् श्रद्धा से सिर झुकाया और प्रणाम किया। प्रणाम करते समय जाह्नवी के दर्शनों से प्रभु राम तथा अन्य अयोध्यावासियों को सरयू का ध्यान हो आया। कुछ क्षणों बाद ही प्रभु बोले—"प्रयागराज सम्भवतः निकट ही है। हम सब पहले यहाँ की यात्रा करेंगे, न जाने कितने सद् और असत्कर्म हमने इन गत वर्षों में किये हैं, अतः त्रिवेणी-स्नान करना आवश्यक जान पड़ता है।"

महारानी सीता और लक्ष्मण विचारमग्न हैं कि प्रभु की जिह्वा पर असत्कर्म की बात आई कैसे? यह तो सम्भव ही नहीं कि धार्मिक और नैतिक मर्यादा से परे वे कुछ कर सकें फिर क्या कारण है कि प्रभु आज ही अयोध्या पहुँचना नहीं चाहते? शायद अवधि के सम्बन्ध में उनके मन में द्विविधा है, किन्तु अभी थोड़ी देर पहले ही तो यह बात हुई थी और उन्होंने कोई निषेध न किया था? इसी प्रकार की उथल-पुथल शायद प्रभु के मानस

में भी हो रही थी। वे एक बार किसी को अयोध्या भेजकर वहाँ की स्थिति से अवगत हो लेना चाहते हैं। वास्तव में अयोध्या का दरबार और वहाँ की जनता उनका स्वागत करना चाहती है अथवा नहीं।

ऊँचे देवालयों की चोटियों ने सूचना दे दी कि प्रयागराज आ गया और धीरे-धीरे पुष्पक की गति भी कम होती गई और वह भूमि से जा छुआ।

२३

अयोध्या और नन्दिग्राम में दिवाली-उत्सव

त्रिवेणी-स्नान के उपरान्त प्रभु राम ने हनुमान की ओर देखा मानो कुछ कहना चाहते हैं। उपाध्याय और पुरोहित प्रभु को यजमान पाकर धन्य हो गये हैं और चाहते हुए भी कि प्रभु जल्दी से जल्दी अयोध्या पहुँचें वे उनका सान्निध्य त्यागने में हार्दिक वेदना अनुभव कर रहे हैं। प्रभु ने एक बार वीर हनुमान की ओर देखा तो वह उनके सन्निकट हो गये। महाराज बोले—"पवनसुत! अयोध्या की रह-रहकर याद आ रही है। बन्धु-बान्धवों के श्रीमुख नेत्रों में घूम रहे हैं।"

हनुमान—"हाँ प्रभु! अवधि भी समाप्त हो चुकी, और आपकी त्रिवेणी-स्नान की इच्छा भी पूर्ण हो चुकी। अब कुछ ही देर में पुष्पक हमें अयोध्या पहुँचा देगा।"

राम—"नहीं हनुमान! तुम पहले अकेले अयोध्या जाओ। बन्धु भरत और अयोध्याजनों को एक बार जाने से पूर्व देख आओ।"

कुछ रुककर--"यदि वास्तव में राम की वहाँ आवश्यकता है तो वह अवश्य जायगा अन्यथा अयोध्या लौटना न लौटना किसी अर्थ का नहीं।" इस वाक्य के पूरा होते-होते महारानी सीता, अनुज लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव और अंगद के नेत्र एक साथ प्रभु की ओर जा लगे।

यह आज इन्होंने क्या कह दिया? लक्ष्मण को वह दृश्य याद हो आया जब वनवास के प्रारम्भ में ही भरत जंगल में आए थे और उनकी सेना को देखकर उन्हें क्रोध हो आया था। उनकी अँगुलियाँ तो धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाने तक को तैयार हो गई थीं किन्तु उस समय प्रभु के वे शब्द कि भैया जल्दबाज़ी न करो, भरत को अन्यथा न समझो। किन्तु आज क्या हो गया? हर व्यक्ति प्रभु के श्रीमुख से भरत और अयोध्या के सम्बन्ध में प्यार और दुलार भरे भाव सुन चुका था। सीता से न रहा गया, वे बोल ही पड़ीं---"महाराज! यह कैसी बात? अंजनासुत से भरत और अयोध्या की दशा देखने की कल्पना कैसे उठी?"

राम--"जानकी! कुछ भी हो मेरे धर्म की मर्यादा मुझे बाध्य करती है कि मैं अयोध्या की दशा बिना जाने प्रविष्ट न होऊँ। हाँ, आप लोग यदि चाहें तो"...

सीता --"प्रभु! आपकी मर्यादा हिमालय से भी अधिक अचल और सागर से भी अधिक शांत और गम्भीर होती है। हम लोग आपके चरणों में स्थान चाहते हैं। अयोध्या जाने की जल्दी, आप स्वीकार कीजिए, आपको भी है फिर हम पर जल्दी भेजने की कृपा क्यों हो रही है। देखिये जी, इतनी भारी कृपा हम सब कैसे झेल सकेंगे।"

श्रीराम के ओठों में मुस्कान आई और शीघ्र ही ग़ायब भी हो गई। उन्होंने निर्णयात्मक ढंग से कहा--"हनुमान! अधिक विलम्ब न करो, शीघ्र जाओ, क्योंकि शीघ्र ही फिर तुम्हें लौटना जो है। हाँ, घर में सब से यथायोग्य प्रणाम और आशिष वचन कहना न भूल जाना।"

अंजनासुत शीघ्र ही अयोध्या के लिये रवाना हो गये।

अयोध्या से कुछ दूर नन्दिग्राम का वातावरण, जहाँ महाराज भरत एक योगी का-सा जीवन व्यतीत करते हुए प्रभु राम की चरण-पादुका के लिए राज्य की व्यवस्था देखते थे, कुछ उड़ा-उड़ा-सा है। लगता

है मानो किसी महान् शोक में समस्त अयोध्या और विशेष रूप से नन्दि-ग्राम का यह भरत-धाम डूबा हुआ है। स्थान-स्थान पर लोग एकत्र होकर चर्चा कर रहे हैं कि अवधि समाप्त हो आई फिर क्या कारण है कि हमारे प्रभु के लौटने का कोई समाचार प्राप्त नहीं हो रहा। क्या प्रभु हमसे नाराज़ हो गये हैं? नाराज़ होने का कारण क्या हो सकता है? जब भरत वन में उन्हें प्रणाम करने गये थे तब तो प्रभु नाराज़ नहीं दीखते थे?

हनुमान ने यह सब दृश्य देखा, उनका हृदय द्रवित हो गया। नीर भरे नयनों को देखकर उनके नयनों में भी जल भर आया। वे राजप्रासाद की ओर बढ़े। वहाँ की दशा भी उसी प्रकार थी बल्कि उससे भी गई-बीती दिखाई दी। हनुमान शीघ्र ही सबके पास हो आए। किन्तु शोक-सागर में डूबे गुरुजनों और बन्धु-बान्धवों को देख प्रभु राम का संदेश देने की उनमें ताब नहीं। वे जल्दी ही नन्दिग्राम में भरतजी की दशा देखने चल पड़े। वहाँ पर भरतजी प्रभु की चरण-पादुकाओं पर शीश रखे बालकों की भाँति अनेक प्रकार के विलाप कर रहे थे। हनुमान को देखते ही वे उनसे लिपट गये और जिह्वा तो मौन रही लेकिन आँखें सब कुछ पूछने लगीं। हनुमान के होठों पर भी ताला लग गया और आँसुओं ने बहकर भरतजी की आँखों के प्रश्नों का उत्तर दिया।

हनुमान को समस्त स्थिति समझने में देर न लगी। वे चाहते हैं कि किसी प्रकार प्रभु को शीघ्रातिशीघ्र यहाँ ले आयें। यदि विलम्ब हुआ तो उसका बड़ा भयानक परिणाम हो सकता है। वे उठकर चलने को हुए कि देखते हैं सामने खलिहानों में से आबाल-वृद्ध-नारी यह समाचार पाकर कि उनके प्रभु का कोई संदेश लेकर आया है, इधर बढ़े आ रहे थे। हनुमान चाहते हैं कि जल्दी जायें और वहाँ भीड़ बढ़ती जा रही है। जो भी आता है हनुमान से अनेक प्रश्न करता है। हर कोई स्वयं ही सब वर्णन प्रभु के दूत के श्रीमुख से सुनने को लालायित है। हनुमान का हृदय स्नेह और श्रद्धा से पग रहा है, किन्तु उनके लिए हर व्यक्ति को अलग-अलग उत्तर देना भी कठिन हो रहा है। एक ओर वे प्रभु को शीघ्र ले आना चाहते हैं तो दूसरी ओर उत्सुक नेत्रों को निराश करना भी उनके बस

की बात नहीं रह गई है। भरत मानों उस शोक-सागर के कूल हैं और जैसे सागर में बड़े वेग से ज्वार-भाटा आ-जा रहा हो।

एक वृद्ध जिसकी आयु एक सौ को कब की पार कर गई थी, झुकी कमर, आगे बढ़कर आया और हनुमान के बिलकुल निकट पहुँचकर उसने उनकी चरण-रज मस्तक पर धारण की। भरे हुए गले से उसने कहा—"प्रभु के दूत तुझे शत-शत प्रणाम! यह तो बता कि क्या मुझे भगवान् के सलोने दर्शन मिल सकेंगे?"

एक और वृद्धा ने पीछे भीड़ में से कहा—"कौन आया है, हमारे प्रभु का संदेश लेकर, प्रभु नहीं तो तू ही दर्शन दे। मैं तो दर्शनों की लालसा के कारण ही जीवित हूँ।"

एक युवक सामने आया। चाहा उसने कि कुछ बोले, लेकिन हिच-कियों से गला भर गया और हनुमान के चरणों में सिर झुकाकर लौट गया।

छोटे बालक जिनका जन्म भी प्रभु के अयोध्या-निवास के समय न हुआ था इस प्रकार सोच रहे थे कि क्या वास्तव में नारायण लौटने वाले हैं? समस्त वातावरण का हनुमान पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि जैसे-तैसे प्रभु के भक्तों और उपासकों की तुष्टि करके वे शीघ्र ही प्रयागराज लौट आये और उन्होंने प्रभु से आँखों में आँसू भरे समस्त वर्णन कह सुनाया जिसे सुनकर प्रभु के अतिरिक्त सब के नेत्रों से जल बह निकला।

शीघ्र ही तैयारियाँ की जाने लगीं।

× × ×

आज प्रभु अयोध्या लौट रहे हैं इस ख़ुशी में लोगों की समझ में नहीं आ रहा कि क्या करें। वे अपनी आँखें मार्गों पर बिछा देना चाहते हैं। छतों पर दीपक सजे रखे हैं। अन्धकार होते ही दीपमालिका मनाई जायगी। हर मार्ग और पथ को कपड़ों से बुहारा जा रहा है, कहीं कोई तिनका भी नहीं रहने दिया जायगा कि कहीं प्रभु के चरणों में चुभ जाय।

राम के जय-जयकार सुनाई दे रहे हैं। आज अयोध्या और नन्दिग्राम में दीपावली मनाई जा रही है क्योंकि प्रभु राम चौदह वर्ष की लम्बी अवधि बनवास में व्यतीत कर लौट रहे हैं।

२४

राम के स्वागत में अयोध्या ने आँखें बिछा दीं

अयोध्या के राजप्रासाद के विभिन्न कक्षों तथा वातायनों को आम्र-वल्लरियों, कदली पत्र और अनेक शुभ उपकरणों से सजाया जा रहा है। सब ओर अदम्य उल्लास का वातावरण विद्यमान है। माता कौशल्या और सुमित्रा का पैर भूमि पर नहीं ठहर रहा। न जाने कितनों को अपने आप और प्रश्नों के उत्तर में यह बता दिया गया है कि 'हमारे' राम अयोध्या लौट रहे हैं।

पास के कक्ष से साधारण-सी वेशभूषा में कोई एक महिषी निकली और उन्होंने सामने से तेज़ी से जाते हुए एक अनुचर से पूछा--"क्या राम जल्दी ही अयोध्या आ रहा है?" पता नहीं, अनुचर ने सुना या नहीं क्योंकि वह उपेक्षा से कुछ बड़बड़ाता हुआ निकल गया। महिषी वातायन की ओर बढ़ीं। समस्त सजावट का अर्थ कुछ और हो ही नहीं सकता कि

ाम लौट रहे हैं। पर वे किनसे पूछें कोई भी तो सुनने के लिए तैयार ाहीं। किन्तु तभी उन्होंने देखा कि सामने आरती के लिये थाल सँजोए जा रहे ; और आज राम के बनवास के १४ वर्ष भी समाप्त हो गये हैं; निस्संदेह ाही लौट रहे हैं। भरत तो नन्दिग्राम में हैं। तो क्या राम पहले यहाँ भावेंगे अथवा नंदिग्राम ? कैकेयी को एक बार फिर अपने आप में परि-यक्ता और उपेक्षिता होने का भान हो आया। लेकिन वे यह जानती हैं के संसार आकृति को देखता है हृदय को नहीं। यही बात अनेकों बार उन्होंने सोचकर अपने उद्वेलित हृदय को शान्त किया है।

इसी प्रकार एक दूसरे कक्ष में अनेक परिचारिकाओं, सखियों और दासियों से घिरी कोई एक राजकुमारी वस्त्र बदलने और शृंगार करने र विरोध प्रकट कर रही है। वे किसी प्रकार भी तैयार नहीं हो रहीं कि एक विशेष प्रकार से जूड़ा बँधवाएँ। एक साथ सूखे और सूजे-से नेत्रों की किस कोर में उल्लास छिपा हुआ है यह कोई एक ही जान सकेंगे। सखी माधवी बोली—

"बहिन ऊर्मि! चौदह लम्बे वर्ष, १६८ मास तथा ५,०४० दिन और रात के बाद तुम्हारे प्रभु लौट रहे हैं, क्या तुम्हारा हृदय ऐसा पत्थर है कि उनके स्वागत के लिये परिधान भी न बदलोगी ?"

उर्मिला—"माधवी, उर्मिला उन्हें खूब पहचानती है। उन पर इसका उल्टा प्रभाव ही पड़ सकता है। इसके अलावा बीती उमर में मुझे तो भूले हुए शृंगार करने की प्रेरणा भी नहीं हो रही। भूले हुए प्रसाधनों को रहने ही दो बहिन, मुझे क्षमा करो।"

माधवी—"अच्छा न सही प्रसाधन। पर झटपट तैयार तो हो जाओ उनके स्वागत के लिये, आरती के लिये चुप और मनमारी-सी क्यों बैठी हो ?"

उर्मिला—"इतनी उतावली क्या ? आने तो दो उनके चरण स्पर्श करने तो अवश्य ही जाऊँगी।"

शंख और तूर्य ध्वनि बड़े नाद से हो निकली। सम्भवतः प्रभु का आगमन होने ही वाला है। अयोध्या तथा नन्दिग्राम अपने इतिहास में प्रथम बार नववधू की भाँति सुसज्जित हो रही है। आज से १४ वर्ष पूर्व

जब राम का युवराज पद पर राज्याभिषेक होने वाला था तब भी आज जैसी सजावट न थी।

राजप्रासाद के मुख्य द्वार के सम्मुख राज-मार्ग की सीढ़ियों पर मखमली फ़र्श बिछा है। सीढ़ियों के आगे मंगल-कलश दोनों ओर सजे हैं। अनेक दासियों के हाथों में आरती के लिये थाल सजे हैं जिनमें अष्टद्रव्य रखे हुए हैं। समाचार मिला कि पुष्पक आ पहुँचा। इधर राजप्रासाद की महिषियाँ और राजकुमारियाँ बाहर आकर स्वागतार्थ खड़ी हो गई हैं। किन्तु माता कैकेयी और राजकुमारी उर्मिला अभी तक दिखाई नहीं दे रहीं। शायद दोनों के कानों तक अभी शंख और तूर्य ध्वनि नहीं पहुँचने पाई।

तभी ज्ञात हुआ कि प्रभु सीधे नन्दिग्राम की ओर चले गये हैं। वहाँ भरतधाम की कुटिया प्रासादों से होड़ ले रही है। भरत के हृदय में क्या-क्या भाव उठ रहे हैं इसकी कल्पना करके उसे शब्दों में सीमित करना भाषा के सामर्थ्य से बाहर की बात है। नन्दिग्राम की उस धूल भरी गली में कितनी ही सफाई के बाद अब भी रेत की कमी नहीं है और प्रभु के दूर ही से दर्शन करके परम् भक्त भरत साष्टांग प्रणाम करने उसी धूल पर लेट गये। प्रभु आगे बढ़े तो उनके जल भरे नयनों ने भरत के गीले नेत्रों में जो कुछ देखा उससे उनका हृदय पिघल उठा। एक प्रकार से दौड़कर उन्होंने उन्हें बाहुपाश में भर लिया और राम-भरत मिलन का वह स्वर्गीय दृश्य भारत के स्वर्णमय इतिहास की एक अपूर्व घटना बन गया। कितने समय दोनों का वक्ष मिला रहा किसी को ज्ञात नहीं क्योंकि जब लक्ष्मण ने नत होकर प्रणाम किया तब समय का ध्यान उपस्थित जनों को हुआ। लगता है कि उस समय काल स्थिर हो गया था और सूर्य का रथ रुक गया था। सीता माता को भी भरत ने उसी प्रकार साष्टांग प्रणाम किया और शीघ्र ही सब अयोध्या की ओर लौट पड़े। राज्य की ओर से रथ तैयार खड़े थे जिनमें प्रभु के साथ साथ समस्त बन्धु-बान्धव भी सवार होकर अयोध्या की ओर चल पड़े।

रघुकुल की ध्वजा दूर ही से दिखाई देने लगी और अयोध्या में शंख और तूर्य का तुमुल नाद बढ़ चला। अयोध्या में प्रवेश करते ही प्रभु ने

रथ में से उतरने की इच्छा व्यक्त की किन्तु प्रधानामात्य सुमंत्र ने निवेदन किया कि कार्यक्रम राज्यभवन से ही प्रारम्भ होना चाहिये, अतः रथ राजप्रासाद की ओर बढ़ा दिये गये। जहाँ से प्रभु को माताओं का दर्शन हुआ तुरंत ही वे रथ से उतर पड़े और पदानुसार उनके पीछे-पीछे सब लोग चल पड़े।

मुख्य द्वार पर सभी माताएँ सामने खड़ी थीं विशेषकर माता कौशल्या तथा सुमित्रा सबसे आगे थीं। प्रभु ने कुछ दूर से ही नत-मस्तक होकर बार-बार प्रणाम किया और निकट पहुँचकर उनके नेत्र इधर-उधर कुछ खोजने निकले। कुछ ही पलों में मुरझाई-सी, म्लानवस्त्रा अतीव उपेक्षिता और अपने में लज्जित माता कैकेयी की ओर राम बढ़ने लगे और तभी उपस्थित जनसमुदाय ने देखा कि मौन प्रस्तरमूर्ति-सी वह महान् नारी आगे बढ़ी और उसने प्रभु राम को अंक में भर लिया। भरत की जननी का राम-प्रेम भरत से मानो बाज़ी मार गया। कई निमिष प्रभु अपने दोनों नेत्रों से जल बहाते रहे और माता कैकेयी के अश्रु तो प्रभु के स्कंध से नीचे इतने बहे कि मानो मूसलाधार वर्षा हुई हो। उनके बाद ही प्रभु माता सुमित्रा के चरण स्पर्श करने बढ़े जिनके नेत्र एक बार लक्ष्मण की ओर भी हो आये; उन्होंने आरती उतारी। माता कैकेयी ने सीता को और भी ज़ोर से अंक में भर लिया। और उनकी सिसकियाँ वेगमयी हो गई। प्रभु अब माता कौशल्या के सामने थे और उस महा-नारी ने भी मस्तक पर तिलक कर आरती उतारी। इसी प्रकार जब कि वर्षों बाद सम्मिलन हो रहा था उस समय भी पीछे की पंक्ति में खड़ी उर्मिला प्रभु राम की चरण-धूलि लेने आगे बढ़ रही थी जिन्हें देखते ही प्रभु राम का हृदय फिर भर आया। उस देवी तपस्विनी का समस्त शरीर महान् उपवास और पूजा-अर्चना की साक्षी दे रहा था। लक्ष्मण आगे बढ़े और फिर उर्मिला ने उनकी चरण-रज भी मस्तक पर लगाई; फिर वे एक साथ दौड़कर अपने कक्ष की ओर बढ़ीं, किन्तु मार्ग में ही मूर्च्छित हो गईं। माता कैकेयी भी मूर्च्छितावस्था में ही भवन में ले जाई गईं।

प्रभु राम के पीछे सीता फिर लक्ष्मण, विभीषण, सुग्रीव, अंगद तथा हनुमान सबने गुरुजनों के चरण स्पर्श किये। और अयोध्या के समस्त

प्रजाजन आबाल-वृद्ध-नारी तक ने प्रभु को अर्घ्य दिया और आरतियाँ उतारीं।

इस प्रकार अयोध्या अपने प्रभु को १४ वर्ष बाद पाकर धन्य हुई। अब मंत्रिवर सुमंत्र को प्रभु के राज्याभिषेक के आयोजन की चिन्ता पड़ी और तदनुसार निमन्त्रण और आदेश दे दिये गये।

२५

राम-राज्य का उदय

मंत्रिवर सुमंत्र ने गुरु वशिष्ठ से परामर्श लेकर प्रभु राम के राज्याभिषेक के लिए एक तिथि निश्चित कर दी और समस्त कौशल प्रदेश में उसकी अपूर्व तैयारियाँ हो निकलीं। समस्त नगर, नगरियाँ तथा ग्रामों की सजावट इन्द्रपुरी से होड़ लेने लगी। घर-घर में मंगल गान होने लगे। हर देवालय और पूजा-स्थान पर अखंड पाठ शुरू हो गये। अनेक पंडित और पुरोहित धार्मिक क्रियाओं को सम्पन्न करने में व्यस्त थे। अयोध्या में एक बार फिर उत्सवों का वातावरण छा गया।

आख़िर राज्याभिषेक का दिन आ गया। समस्त कौशल में शंख और झालरें बज उठीं। ब्रह्म-मुहूर्त से ही लगता था मानों स्वर्ग भूमि पर उतर आया हो। प्रभु राम प्रातःकाल महारानी सीता तथा अनुज-बांधवों सहित सरयू स्नान के लिये गये जहाँ गुरु वशिष्ठ भी विद्यमान थे। विशेष रूप से मंत्रपूत यज्ञोपवीत धार्मिक क्रियाओं सहित उन्हें धारण कराया गया। केशर के रंग में रंगे वस्त्र उस अनुष्ठान में पुनः धारण कराये गये और केशरिया परिधानों ने एक बार फिर अप्रिय घटनाओं की याद ताज़ा कर दी। लंकापति विभीषण, किष्किधा-नरेश सुग्रीव, युवराज अंगद, महावीर हनुमान और महानगरियों से आए अनेक नरेन्द्र तथा उनके सहचर मस्तक पर मंत्रोच्चार के साथ चन्दन का टीका धारण करते हुए नतमस्तक हुए। कार्योपरांत प्रभु सदल राजभवन में पधारे और अब गुरु वशिष्ठ ने उठकर सभा के सम्मुख प्रवचन करना प्रारंभ किया——

"महाराज राम! महारानी सीता! पंडितो! नरेन्द्रो! मंत्रिवरो! तथा प्रतिष्ठित देवियो एवं सज्जनो! आज आयोध्या ही नहीं समस्त भरत-खंड राम को कौशल के सिंहासन पर पाकर गौरवान्वित है। चिरंजीव राम की अनुपस्थिति में अयोध्या की राजधानी अनाथ के समान थी, इसलिए नहीं कि कोई शासन-व्यवस्था में शिथिलता थी वरन् इसलिए कि स्वयं शासक भरत अपने आपको अनाथ अनुभव करते थे और उनके अकिंचन के आदर्श से स्वयं अकिंचनता लज्जित हो रही थी। आर्थिक दृष्टि से कौशल राज सब प्रकार से सम्पन्न है। धार्मिकता का तो उल्लेख करना ही निरर्थक है, क्योंकि विगत १४ वर्षों में एक प्रकार से समस्त राज्य धार्मिकता में ही पगता रहा है। हर नागरिक अपना कर्त्तव्य भली प्रकार समझता है और सुकृत्यों में तो प्रतिस्पर्धा ही देखने को मिलती है।

"कितने गर्व की बात है कि आज भरत-खंड में कोई भिक्षार्थी नहीं और पारिवारिक सुखी जीवन का तो कहना ही क्या है। हर व्यक्ति अपने कर्त्तव्यानुसार कार्य करता है और समाज का कोई भी अंग पिछड़ा हुआ नहीं। सब लोगों का जीवन इतना नियमित-संयमित है कि सभी पूर्ण आयु को प्राप्त होते हैं और रोग के कारण भी कोई अल्पायु में

काल-कवलित नहीं होता । शिक्षा के लिए आश्रम और गुरुकुल-ऋषिकुलों का प्रबन्ध है जिनको राज्य भेंट करने में अपना अहोभाग्य मानता है ।

"मैं देवाधिदेव का स्मरण कर कौशल का यह राजदंड तथा मस्तक-शोभा-चिन्ह महाराज राम को अर्पित करता हूँ ।"

ज्यों ही प्रभु ने दोनों राज्य चिन्हों को धारण किया राजभवन का विशाल कक्ष 'जय राम' के घोष से गूँज उठा । उसके बाद ही गुरु वशिष्ठ ने महारानी सीता को शोभा-चिन्ह धारण कराया। और एक बार 'जय सीता' का जयघोष हुआ । तदनन्तर आमंत्रित नरेन्द्रों ने अपनी भेंट प्रस्तुत करना प्रारंभ कर दिया और इस सुकृत्य में भी काफी समय लगा ।

जिस विशाल कक्ष में राज्याभिषेक हो रहा था उसके निकट वातायन में राजमाताएँ तथा रघुकुल वधुएँ बैठी थीं । सबके नेत्र राज्य तथा धार्मिक कृत्य की ओर लगे हुए थे । अगरुधूम से समस्त वातावरण सुरभित हो रहा था । माता कौशल्या के नेत्र वात्सल्य भाव से पूर्ण थे । निकट ही माता सुमित्रा बैठी थीं और उनके पास राजवधू उर्मिला तथा मांडवी आदि बिलकुल शांत थीं । मांडवीदेवी के नेत्र कभी कभी योगी भरत की ओर जा पहुँचते थे । किन्तु बिलकुल कोने में बैठी थीं राजमाता कैकेयी, जिनके परिधान साधारण थे, आभूषण के नाम पर शायद ही कुछ कृश शरीर पर रहा हो। वे बेसुध थीं मानो स्वयं उनके पुत्र का राज्याभिषेक हो रहा हो, प्रसन्नता के आँसू मुँह पर ढुलक रहे थे । लेकिन आँसू थे इसलिए प्रमुख सहचरियाँ उन्हें अन्यथा समझने को स्वतंत्र थीं । कैकेयी स्वर्गीय महाराज दशरथ की उपस्थिति की कल्पना कर रही थीं और जैसे वे अपने आपको निर्दोष मानते हुए भी दोषी बनी बैठी थीं। उन्होंने इन १४ वर्षों में एक बार भी अपने निर्दोष होने का प्रदर्शन नहीं किया । जननेत्रों में मानो वे परित्यक्त बने रहने में अधिक सुख मानती हों ।

तभी प्रभु राम ने यज्ञोपवीत को ठीक करते हुए एक बार समस्त उपस्थितों की ओर नेत्र डाले । प्रेम रस की वर्षा चारों ओर हो रही थी । उन्होंने कहा--

"गुरुवर ! मान्य अथितियो ! मंत्री श्रेष्ठ ! तथा बन्धु बान्धवों ! आपने जिस सेवा का भार मेरे कन्धों पर रखा है में प्रभु से प्रार्थी हूं कि उसे वहन करने में समर्थ होऊँ। अनुज भरत ने पिछले इन वर्षों में जिस सौम्य राज्य-व्यवस्था का परिचय दिया है वह आदर्श है । हमारे देश में सब समान हैं। हर नागरिक हर कार्य करने को स्वतंत्र है। चोरी और कुशील हम नहीं जानते क्या होता है । हर उपज प्रभु की कृपा से हरी भरी होती है । ईत-भीत हमें नहीं सताते। उपज का षष्ठांश राज्य-कार्य की सहायतार्थ हर व्यक्ति प्रसन्नता से राज्य भंडार को प्रदान करता है। वह जब आवश्यकता से अधिक एकत्र हो जाता है तो उसका उपयोग हम सब की भलाई के लिये कर दिया जाता है। राज्य की ओर से चिकित्सालय और आतुरालय खुले हुए हैं जिनमें रोगों पर निरंतर शोध कार्य होता है ।

"मैं यह घोषणा कर देना चाहता हूँ कि हम सब आपके अनन्य सेवक हैं । राज्य कर्मचारी, सेवा तथा अन्य विभाग हर क्षण जनहित के लिये जीवन तक अर्पण कर देने को प्रस्तुत हैं। आपने ही सेवा का यह प्रथम पद दिया है और आप चाहें उस समय मुझे इसे त्यागने को कह सकते हैं। मेरा शरीर तक आपका है । यदि कभी आपको यह भान हो कि मैंने उचित कार्य नहीं किया तो सिर्फ संकेत ही मिलने पर मैं अपना आचार ठीक कर लूंगा । आप लोगों की इस परम कृपा के लिए अत्यन्त आभारी हूं ।"

साधु-साधु तथा 'जय राम' के जयनाद से कक्ष गूँज उठा । प्रभु की ओर से समस्त ब्राह्मणों, आचार्यों, उपाध्यायों और साधुओं को भेंट अर्पित की गईं और भरत-खंड में रामराज्य का उदय हुआ ।

२६

अतिथियों की विदा

कौशल में रामराज्य का उदय हुए कुछ समय बीत गया और एक दिन मुख्य अतिथियों के बीच बैठे महाराज राम ने कहा—"बन्धुओ ! आपके साथ रहते समय व्यतीत हो गया। किष्किधा से लंका और लंका से अयोध्या आपके साथ रहने से बड़ा सुख और आनन्द रहा किन्तु सोचता हूँ कि आपके सान्निध्य का लालच कब तक रखे रहूँ ? वहाँ लंका में क्या विभीषण की चाह न हो रही होगी ? क्या किष्किधा में सुग्रीव और अंगद की बाट नही जोही जा रही होगी ? और पवनसुत की तो हर जगह आवश्यकता अनुभव की जाती है। हृदय कहता है आपके साथ ही रहें किन्तु कर्त्तव्य आपको शीघ्र ही विदा करने को बाध्य करता है। आप लोग शांत हैं ? कुछ कहिये किस समय विदा की तैयारी की जाय।"

फिर कुछ रुक कर—"मंत्रिवर सुमंत्र से उस दिन चर्चा चल पड़ी—उनकी भी सम्मति है कि न जाने वहां लंका और किष्किधा में आपकी कितनी आवश्यकता अनुभव की जा रही होगी। हमारा तो विचार है कि गुरुवर से आपकी विदा का मुहूर्त्त दिखवा लिया जाय ?" प्रश्न अपने आप में पूर्ण हो गया।

विभीषण और अंगद एक साथ बोल पड़े—"प्रभु! शासन चलाने के लिये राम-राज्य व्यवस्था का कुछ तो अध्ययन करने का अवसर प्रदान

कीजिये । अभी तो हम लोग राज्यातिथ्य में इतने संलग्न रहे हैं कि कृषि-उद्योग की काम की बात की ओर ध्यान ही नहीं दिया ।"

विभीषण और अंगद की इस बात को जितना प्रभु समझ रहे हैं उतना ही स्वयं वे भी समझे हुए हैं कि अयोध्या में रुके रहने का और कोई अचूक बहाना उन्हें सुझाई नहीं पड़ा।

महाराज राम मुस्काते हुए बोले––"अच्छा, आपकी सम्मति राज्य में घूमने फिरने की है तो वैसी ही व्यवस्था कर दी जायगी।" तुरंत ही विभीषण बोले––"नहीं प्रभु ! हम स्वयं अयोध्या के निकट कृषि–उद्योग को घूम-फिर कर देख लेंगे। कहीं दूर जाने की व्यवस्था करने की आवश्यकता न पड़ेगी।"राम के निकट बने रहने की उत्कंठा इस उत्तर से और स्पष्ट हो गई। किन्तु प्रभु मुस्काते रहे उन्होंने निषेध न किया।

समय और बीता। नाम-बहाने को राज्य की कृषि शालाओं का पर्यटन मान्य अतिथियों ने किया। प्रातःकाल जाकर मध्यान्ह तक वे लौट आते। मित्र लक्ष्मण से एक दिन बातें हो निकलीं।

विभीषण––"सौमित्र ! प्रभु तो अब हमें भेज देना ही चाहते हैं, क्या कोई भी तरकीब अब काम न देगी ? अभी उस दिन ही तो अयोध्या लौटे हैं, मानो कल की सी बात हो किन्तु तिथियों ने लम्बी दौड़ लगा दी तो इसमें हमारा क्या दोष ? हमारी कुछ तो सहायता कीजिये ।"

सौमित्र कुछ देर मौन रहे फिर बोले––"बन्धुवर ! प्रभु की इच्छा के विरुद्ध मैं आपकी कुछ भी सहायता करने में असमर्थ हूँ। आप मुझे क्षमा कीजिये। क्यों नहीं स्वयं ही एक बार फिर प्रयत्न कर देखते ?"

प्रश्न प्रश्न न होकर पूर्ण होगया। उधर से मंत्री सुमंत्र निकल रहे थे तो सुग्रीव शीघ्र ही उनके पीछे जा पहुँचे। सुमंत्र ने देखा और पग रुक गये। प्रश्नवाचक दृष्टि से देखते हुए उन्होंने प्रति अभिवादन किया। सुग्रीव बोले––

"आप तो हमारे पितृ तुल्य हैं। देखिये हम लोग अभी यहाँ से नहीं जाना चाहते पर प्रभु हैं कि एक बार कह चुके हैं और अब हमें आशंका है कि किसी दिन भी जाने का मुहूर्त शोधवा लिया जायगा। क्या आप हमें कुछ दिनों और नहीं रोक सकते ? कृपा करके प्रभु से कुछ तो कहिये।"

वृद्ध सुमंत्र कुछ क्षणों विचार में पड़ गये और एक बार कुछ निर्णय-सा करके बोले--"महाराज ! एक बार प्रभु राम ने स्वयं इसी सम्बन्ध में चर्चा की थी और उनकी इच्छा आपको शीघ्र भेज देने की प्रतीत होती थी। उधर शासन कार्यों की ओर लक्ष्य कर मैंने भी अपनी सम्मति उनके अनुकूल दी थी। यह कैसी विडम्बना है, कि अतिथि रुकना चाहते हैं और आतिथेय उन्हें भेजने को प्रस्तुत हैं। कुछ समझ नहीं पड़ता।" और एक प्रकार से विचार मग्न ही सुमंत्र आगे बढ़ गये।

समस्या विकट है और उसका कोई हल अतिथियों को ढूंढ़े नहीं मिल रहा। एक दिन सायंकाल भोजन करते-करते फिर प्रसंग प्रारम्भ हो गया। राम बोले--"कहिये बंधुओ ! अब तो आप लोग अयोध्या के चारों ओर काफी घूम फिर लिये। अपने निकट जनों का विचार कर कब प्रस्थान करना पसंद करेंगे ? मंत्रिवर और अनुज लक्ष्मण कह रहे थे कि आप यहां पर कुछ और ठहरना चाहते हैं किन्तु एक बार अपने कर्त्तव्य की ओर भी ध्यान कीजिये। क्या लंका और किष्किधा के प्रजाजन आपके यहां चिरकाल तक रुके रहने के लिये राम को दोषी न मानेंगे?"

हनुमान माता सीता की ओर याचक की दृष्टि से देख निकले। राम ने इसे लक्ष्य कर लिया तो.वे बोले--"पवनसुत ! क्या कहना चाहते हो ? क्या यह नहीं जानते कि महिलाओं से पुरुष को कभी कोई लाभ भी पहुँचा है ? आशा है जानकी अन्यथा न समझेंगी।" इतना कह कर प्रभु हँस पड़े। हनुमान संकुचित हो गये। वे बोले--"प्रभु को लंकापति और किष्किधा नरेश को भेजने की बात समझ में आ सकती है, किन्तु अनुचर को तो यहाँ बहुत काम पड़ा है। उस पर कृपा दृष्टि अवश्य होनी चाहिये।"

प्रसन्नता के वातावरण में राम ने कहा--"लंकेश ! देख लीजिये, अब मेरा कोई दोष नहीं। स्वयं आपके दल के बारे में महावीर की भी यही सम्मति है। हनुमान ! चाहते हुए भी सदैव अपने पास किसी को रखना राम के लिए संभव नहीं। जब इच्छा हो पुनः अयोध्या तुम्हारा स्वागत करके धन्य होगी।"

सीता समस्त स्थिति समझ गई। उन्होंने पक्ष लेते हुए कहा--"हनुमान

के जाने की कल्पना से ही मुझे दुख होता है। आपकी देख-रेख का इतना सब दायित्व आज इन्हीं पर तो है। फिर हमारे मान्य अतिथि अभी आतिथ्य स्वीकार करना चाहते हैं तो क्यों नहीं इस अप्रिय प्रसंग को किसी और समय के लिए स्थगित कर दिया जाय।" फिर कुछ रुक कर—"आर्यपुत्र! देखिये तो इन लोगों के हाथ भोजन से कैसे हट गये हैं, न-न यह प्रसंग यहीं रोक दीजिये।" और अतिथियों से—"आप लोग चिन्ता न कीजिये। रघुकुल की यह वधू यह अशिष्टता न होने देगी कि आतिथ्य की इच्छा होते हुए भी आपके प्रस्थान का मुहूर्त दिखवाने की चिन्ता करे। इनके कुछ काम ऐसे ही होते हैं। आप लोग तो स्वयं जानते ही हैं कि लंका से प्रस्थान से पूर्व एक बार किस प्रकार इन्होंने आप लोगों को यहाँ लाने में आनाकानी की थी। आप भोजन कीजिये अन्यथा भूखे रहने का दोष मुझे लगेगा, इन्हें नहीं।"

बात वहीं समाप्त हो गई और एक प्रकार से कुछ दिनों और प्रभु के पास रहने का भरोसा सबके हृदयों में हो गया।

समय और व्यतीत हुआ कि एक दिन मंत्रिवर सुमंत्र अतिथिशाला में आ पहुँचे। अभी मध्यान्ह-भोजन के उपरान्त सब लोग कुछ विश्राम कर ही रहे थे कि प्रधान सूचिक (दर्ज़ी) भी मंत्रिवर के पीछे दिखाई दिया। सुमंत्र ने कहा—"मान्य अतिथियो! बड़ी कुवेला में मैं आपको कष्ट देने आ गया। राज्य-काज से इसी समय कुछ सुविधा मिल पाई, गत दो दिनों से आना चाहकर भी न आ सका। प्रभु राम का आदेश है कि आपको विदा के समय जो परिधान राज्य की ओर से भेंट किये जायेंगे उनका माप लिवा लिया जाय। इसी कारण हमारे मित्र सूचिकार यहाँ आये हैं। कृपया कष्ट कर इन्हें माप दे दीजिये।"

माप लेने का कार्य प्रारम्भ हो गया तो फिर सबके मन शोक से भर गये कि विदा-वेला निकट ही आ गई। जब सूचिकार जाने लगा तो सुग्रीव बोले—"महाशय! कृपया एक बार पुनः दर्शन दीजियेगा। क्योंकि यहां अयोध्या का जलवायु हम लोगों के इतना अनुकूल पड़ा है कि हो सकता है माप में सप्ताह भर में ही अन्तर आ जाय।"

इतने में हनुमान बोले–"सूचिकार ! आपको कष्ट करन की अवश्यकता न होगी क्योंकि विदा-काल निकट आने से हम लोग जलवायु अनुकूल होने से जितने बढ़ते उतने ही कम हो जायँगे।"

माता सीता का दिया अभय अब अतिथियों के हृदय से दूर हो गया। और वियोग की दुखभरी कल्पना में सब निमग्न हो गये।

: २७ :

अयोध्या से अतिथि विदा

लंका-नरेश विभीषण, किष्किन्धा-पति सुग्रीव, राजकुमार अंगद तथा वीर हनुमान का आज अपने-अपने स्थानों को प्रस्थान का दिन है। गत सप्ताह ही तो मंत्रिवर सुमंत्र ने गुरु वशिष्ठ द्वारा शोधी लग्न मुहूर्त के लिये बता दी थी। ब्रह्म मुहूर्त में ही सब नित्य कर्मों से निवृत्त होकर कुछ भूले-भूले से उस घड़ी की प्रतीक्षा कर रहे हैं। शायद अभी कोई सूचना लेकर पहुँच जाय कि रथ तैयार है।

अंगद और हनुमान की दशा सबसे खराब है। वे तीन बार राज भवन में प्रवेश पाने के लिये निवेदन कर चुके और द्वारपाल ने आकर बताया कि वे राज-भवन में जा सकते हैं। दोनों ही बालकों की भाँति सीताजी के कक्ष में पहुँचे। स्वयं महारानीजी भी अतिथियों के प्रस्थान के कारण स्वस्थ दिखाई नहीं दे रहीं। दोनों ने चरणों में प्रणाम किया और चाहा कि कुछ बोलें, किन्तु जिह्वा न खुल सकी। कुछ क्षण मौन वातारण

रहा और तभी एक परिचारिका ने सूचना दी, प्रभु स्मरण कर रहे हैं। दोनों ही सजल नयन लौट पड़े और प्रभु के समक्ष ले जाये गये। वहाँ पर विभीषण और सुग्रीव पहले ही आ चुके थे। आज प्रभु ने आदेश दिया कि अतिथियों को आसन दिया जाय। पहले कभी इस औपचारिक आदेश की आवश्यकता न होती थी। विशाल कक्षा में एक ओर चौकियों पर अनेक वस्त्र तथा भेंट की सामग्री चुनी हुई रखी थी। कुछ ही देर में गुरुवर तथा सुमंत्र आ पहुँचे। यात्रा की तैयारी पूर्ण हो चुकी थी और रथ सम्भवतः सिंहद्वार पर आ चुके थे। गुरुवर ने मंत्रोच्चार के साथ प्रभु को इशारा किया और उन्होंने रेशमी उत्तरीय लेकर अतिथियों के कंधों पर डाल दिये। अनेक स्वर्ण तथा रौप्य के पात्र, फल तथा मिष्टान्न के भरे थाल रथों में पहुँचा दिये गये। अन्त में स्वयं महारानी सीता ने सबके मस्तक पर केसर-युक्त चन्दन की टीका लगाई और असहाय बच्चों की भाँति अतिथियों की विदा का समय आ पहुँचा।

प्रभु राम ने कहा—"मान्य अतिथियो! आपके कारण हमें कितनी सुविधा और रण में सहायता मिली इसका उल्लेख करते हुए हमें संकोच हो रहा है। जानकीजी का अयोध्या पहुँचना केवल आपके ही कारण संभव हुआ। उसके लिये हम हृदय से आपके तथा आपके प्रजाजनों के आभारी हैं। जम्बू द्वीप का यह खंड अब दक्षिण के बिलकुल निकट आ गया है। जहाँ पहले हम लंका को विदेश मानते थे वहाँ आज उससे बड़ा मित्र हमारा दूसरा कौन हो सकता है? आपको विदा करते हुए हमारा हृदय गद्गद् है। आप जाकर अपने प्रजाजनों से हमारा आभार प्रदर्शित कीजिये।

"अयोध्या को किसी समय भी आपका स्वागत करने में गर्व होगा। मैं कौशल राज्य की जनता की ओर से इतने दिनों हमारे अतिथि बने रहने के लिये आपका आभार मानता हूँ।"

जब प्रभु राम यह शब्द कह रहे थे तब विदा को प्रस्तुत अतिथि अपने हृदयों में सोच रहे थे कि आज प्रभु को हो क्या गया है? यह औपचारिक बातें उनके श्रीमुख से बिलकुल सुन्दर नहीं लग रही हैं। यदि हमारे यहाँ ठहरने से अयोध्या प्रसन्न है तो हम स्वेच्छा से जा ही कब रहे हैं? न

जाने प्रभु को आज क्या हो गया है ?

अन्त में महारानी सीता ने अनेक प्रकार के मुक्ताओं की चार मालायें जो एक थाल में उनके सम्मुख प्रस्तुत की गई थीं एक-एक चारों अतिथियों की ग्रीवा में डाल दी। शायद जाना ही शेष था कि वीर हनुमान ने निकट के एक पत्थर के टुकड़े को लेकर मुक्ताहार का एक मोती लिया और उसे तोड़ डाला और उसके टूटे टुकड़ों को लेकर उंगलियों में रखा और आँखों से देखा फिर उसे फेंक दिया और दूसरा मोती लिया, उसे भी तोड़ डाला कि सीताजी के नेत्र उधर पहुँच गये। उनकी समझ में न आया कि वानर की सी प्रकृति वाले पवनसुत उन दुर्लभ मुक्ताओं का मूल्य इस प्रकार आँक रहे हैं ? वे तुरन्त उनके निकट पहुँचीं और कहा—"अंजना सुत ! यह क्या हो रहा है ?" हनुमान—"माता ! मेरे इस उर पर तो प्रभु का चित्र ही टंग सकता है। यह हार आपने भेंट किया अतः मैं समझ रहा हूँ कि इन मुक्ताओं के ऊपर तो प्रभु की मूर्ति है नहीं कदाचित अन्दर हो इस लिये इन्हें तोड़ने की धृष्टता मैंने की। अभी तक तीन टूट पाये हैं और इनमें एक में भी प्रभु की मूर्ति नहीं है।"

सीताजी समझ गईं। उन्हें यह कल्पना भी नहीं हुई कि यह वानर-प्रकृति हनुमान प्रभु को इतना प्यार करता है। किन्तु फिर भी सहज भाव ही उनके मुँह से निकल गया—"तो क्या तुम्हारा मस्तक और हृदय प्रभु की मूर्ति से ही व्याप्त है ?" और तभी वीर हनुमान के बढ़े हुए नख हृदय के ऊपर के मांस में घुस गये और जिल्द चीर गये और तभी वैदेही के नेत्रों ने देखा कि वास्तव में उनके हृदय में प्रभु के अतिरिक्त हो ही क्या सकता है, जब हृदय तक चीरने को हाथ बढ़ गये हैं। राज्य के प्रधान शल्य चिकित्सक की तुरन्त बुलाहट हुई और भावुक हृदय हनुमान के वक्ष पर औषधि लगाने की आवश्यकता हो गई।

राम और सीता दोनों ही के हृदय में एक बार आया कि इस बहाने ही सही हनुमान की इच्छा के प्रतिकूल उन्हें भेजना नहीं चाहिये और एक साथ वैदेही के नेत्र प्रभु के नेत्रों से जा मिले, किन्तु मर्यादा पुरुषोत्तम इतनी देर में विपरीत निर्णय पर पहुँच चुके थे। वे अकारण ही पक्षपात करने के पक्ष में न रहे और शीघ्र ही विदा का मुहूर्त आ पहुँचा।

अब विभीषण ने गुरुवर के, प्रभु के, सीता और उपस्थित सभी गुरु-जनों के चरण स्पर्श किये। लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न से गले मिले और निकट था कि वे वयोवृद्ध सुमंत्र के पैर छू लेते कि उन्होंने उठा कर उन्हें गले से लगा लिया। सुग्रीव ने भी यही सब किया, किन्तु अंगद बालकों की भाँति रो पड़े और फैल गये।

हनुमान सदमे की चोट से मौन थे। उनके नेत्रों के आंसू भी सूख गये थे। अन्तिम बार उनके कातर नेत्र सीता की ओर गये और वहाँ से आश्वासन मिला। धीरे से वे माता की ओर खिसके और ऐसे धीमे स्वर में पूछा जिसे सीता के अतिरिक्त और कोई न सुन सका—"माँ! यदि मार्ग से मैं लौट आऊँ तो प्रभु रुष्ट तो न होंगे?" वैदेही ने उन्हें अभय दे दिया और हनु-मान के पैरों में जान आ गई।

सुन्दर स्वस्थ बैलों के रथों में अतिथि बैठ गये और ज्योंही सरयू पार की, हनुमान ने निश्चय के स्वर में साथियों को बता दिया कि वे अयोध्या लौट रहे हैं। उनके हृदय में बड़ी वेदना हो रही है। सभी ने एक प्रकार से कोई विरोध न किया और हनुमान रथ से तुरन्त कूद पड़े और गरुड़ की भाँति अयोध्या की ओर लौट पड़े।

२८

सीता तपोवन जाने की इच्छुक

"कितने वर्ष हो गये राज्य करते हुए हमें ? बहुत। याद भी धुंधली हो गई। अब तो गुरुवर से परामर्श करके हमें राज्य त्याग कर देना ही उचित है। किन्तु जानकी का परामर्श लेना भी तो आवश्यक है। पर पहले गुरुवर से ही पूछा जाय।" यह सोचते-सोचते प्रभु गुरुवर के चरणों में जा बैठे। प्रातःकालीन सामयिक से गुरुदेव निवृत्त ही हुए थे कि महाराज राम ने अपना प्रश्न कर दिया—"गुरुवर! आपकी आज्ञानुसार राज्यभार संभाले हमें युग व्यतीत हो गये और त्रेता के नियमानुसार सम्भवतः हमारा राज्य-काल समाप्त होगा और अब हमें तपोवन को प्रस्थान कर जाना चाहिए। आपके चरणों में आने का अभिप्राय यही है। परामर्श का अभिलाषी हूँ।"

गुरुदेव कुछ देर मौन रहे फिर गणित करके उन्होंने कहा—"राजन् ! आपका कहना ठीक है, नियमानुसार आपका राज्यकाल समाप्तप्राय है

लेकिन"—"लेकिन क्या गुरुवर ?" प्रभु ने उत्सुकता से पूछा। वे यह नहीं चाहते कि उनके स्नेह में पड़ कर गुरुदेव अन्यथा आदेश दे जायँ।

कुछ और मौन रह कर गुरु बोले—"बात यह है कि तुम्हारे स्वर्गीय पिता महाराज दशरथ तुम्हारे शोक के कारण अपना राज्यकाल पूर्ण न कर सके। अत: उचित है कि उस काल का उपयोग तुम स्वयं करो किन्तु यह उत्तरदायित्व तुम पर है कि अपने आपको बिल्कुल दशरथ ही समझना।"

"अच्छा, गुरुदेव !" राम ने कहा। बात समाप्त हो गई और प्रभु राम उठ कर राजभवन लौट आए। सायंकाल हो गया और मुख्य परिचायिका ने आकर सूचना दी कि महारानीजी दर्शनों की अभिलाषी हैं। महाराज ने पूछा—"इस समय वे कहाँ पर हैं ?"

परिचायिका—"श्यामलोद्यान में।"

राम—"उनसे जाकर कहो वे वहीं हमारी प्रतीक्षा करें। हम शीघ्र ही उद्यान में आ रहे हैं।"

और कुछ देर में ही राम कौशल की राजधानी के सर्वश्रेष्ठ और सर्वसुन्दर श्यामल-उद्यान में महारानी सीता के सन्निकट थे।

न जाने क्यों वैदेही आज कुछ अतिरिक्त सलज्ज हैं। एक बार भी नमस्कार के बाद उनके नेत्र ऊपर नहीं उठे। उनका पाटल का सा चन्द्रमुख कुछ केशरयुक्त सा लग रहा है। शरीर में ढीलापन सा ज्ञात हो रहा है। यह सब एक निगाह में ही महाराज ने लक्ष्य कर लिया तो एक हल्की सी मुस्कान उनके श्रीमुख पर आ गई। उस मुस्कान के भाव से जानकी उद्यान में एक ओर बढ़ चलीं कि राम ने शांति भंग की और वह भी हँस कर खिल खिलाकर—"सीते! कैसे संयोग की बात है कि आज ही हम यह सोच रहे थे कि राज्यभार उतार फैंकें किन्तु अब तुमने समस्या का हल ही कर दिया जान पड़ता है। इस भार को सम्भालने के लिए शायद ..." प्रभु वाक्य पूरा न कर सके और वैदेही और भी उधर बढ़ चलीं।

"सुनो जानकी, अरे सुनो तो सही। ऐसे आनन्द और प्रसन्नता के सुअवसर पर यह संकोच शोभनीय नहीं। अरे ऐसे समय तो सद्गृहस्थों में गृहिणी की इच्छाओं के पूर्ण करने में घर भर लग जाता है। क्या तुम हमें कुछ अवसर न दोगी ?"

वैदेही का स्वाभाविक संकोच उन मधुर शब्दों से कम पड़ा किन्तु बोल वे कुछ न सकीं। राम फिर बोले—"सीते ! इसमें लज्जा क्यों ? यह तो अति स्वाभाविक बात है। यदि अपने हृदय में उत्पन्न कामना का प्रकाशन न करोगी तो नये जीव पर उसका विपरीत प्रभाव पड़ सकता है। उसके लिए ही सही यह तो कहो कि इन दिनों तुम्हारी क्या इच्छा होती है ?"

सीता ने इस बार मुँह खोला—"महाराज ! मन करता है कि तपोवन में विचरण करूँ, साधु-महात्माओं का सत्संग हो और ज्ञान चर्चा सुनू। यहाँ अयोध्या में रहते दिन भी तो बहुत हो गये।" कुछ ठहर कर—"स्वामी ! वहाँ आपके दर्शन सुलभ न होंगे यही एक विचार कभी कभी हो आता है। लगता है वनवास जैसे सारे जीवन में ही व्याप्त हो गया है।" यह कहते-कहते एक दुख की छाया-सी उनके चेहरे पर छा गई।

प्रभु ने उसे लक्ष्य न किया क्योंकि वे गुरुदेव की ही व्यवस्था का ध्यान कर रहे थे कि भविष्य में उन्हें महाराजा दशरथ का शासनकाल ग्रहण करना है और इस प्रकार सीता से उनका पत्नी का व्यवहार समाप्त हो जाना चाहिये। इधर स्वयं सीता तपोवन को जाने की इच्छा बतला रही हैं। कैसा संयोग है। सब कार्य नियमानुसार ही हो रहे हैं।

और कुछ देर बातचीत करने के बाद प्रभु ने कहा—"रात्रि का आगमन हो गया, वैदेही रनिवास में पधारें तो उचित है। कोमल शरीर, वह भी ऐसी अवस्था में, प्रतिश्याय हो जाने का भय है।"

× × × ×

रात्रि का प्रथम प्रहर समाप्ति पर है और महाराज नगर के शांति रक्षकों की मनोहर बातें सुनने में व्यस्त हैं। समस्त नगर की छोटी-छोटी चर्चाओं में भी प्रभु रस ले रहे हैं। एक शांति रक्षक से वे बोले—"अपाप, कहो उधर पूर्वी क्षेत्र के क्या समाचार रहे ? किसी को कोई कष्ट तो नहीं ?"

× × × ×

"महाराज, इन दिनों सब यही कामना कर रहे हैं कि उन्हें राम-राज्य युग-युग तक मिले किन्तु एक धोबी—" और यह सोचने के लिए कि अप्रिय सत्य को किन शब्दों में व्यक्त करे, अपाप रुक गया। राम—"धोबी क्या ?

सुनाओ न वह घटना भी ! अभी तो अधिक रात्रि नहीं हुई । हम सुनने को प्रस्तुत हैं ।"

अपाप अब लगभग तैयार हो गया था—"महाराज ! धोबी कह रहा था कि ऐसे शासन में जहाँ किसी को कोई कष्ट नहीं उसकी धोबिन ने उसे दुख क्यों पहुँचाया ?" और फिर अपाप को अगली कड़ी जोड़ने को सोचना पड़ा कि महाराज ने पूछा—"आख़िर बात क्या थी ?" अपाप को अब सब कुछ बतलाना ही पड़ेगा—"महाराज ! गत रात धोबिन अपने एक सम्बन्धी के यहाँ किसी पारिवारिक उत्सव में रुक गई थी । उनके विवाह को अभी अधिक दिन नहीं हुए थे । अतः धोबी को यह बुरा लगा । उसने इसीलिए वह बात कह दी—" फिर चुप ।

राम—"क्या बात कह दी ? तुम हकला क्यों रहे हो ? आज प्रथम बार तुम्हें सत्य बोलने में विलम्ब हो रहा है ।"

अपाप—"महाराज ! कुछ नहीं उसने उसी सम्बन्ध में माता सीता का दृष्टान्त दे दिया—" फिर चुप ।

राम—"बोलते क्यों नहीं अपाप ? जानकी का क्या प्रसंग उपस्थित हुआ ? अब तो हमारी उत्कंठा तुमने और भी बढ़ा दी । जल्दी से कह जाओ । वह धोबी भी तो हमारा एक अपना ही है ।"

अपाप—"महाराज ! ये लोग यह तो जानते नहीं कि मन्तव्य को व्यक्त करने के लिये कौन से शब्द चाहिए । उसने कहा कि महाराज राम समर्थ हैं, वे महारानीजी को इतने दिनों लंका रहने पर भी सती मान सकते हैं (और महाराज माता सती हैं ही) किन्तु मैं तो नीच धोबी हूँ । तू कल रात वहाँ अपने सम्बन्धी के यहाँ ठहरी ही क्यों ?" राम सन्न रह गये । शायद इतने वर्षों के रहने के बाद इस प्रकार की बात की कोई कल्पना भी कैसे कर सकता था ? प्रभु उठ पड़े और बोले—

"आप लोग अब जा सकते हैं । हम एकांत चाहते हैं ।" अपाप को काटो तो ख़ून नहीं । अगर वह इस घटना का उल्लेख न करता तो क्या मर जाता ? लेकिन प्रभु के सामने असत्य भाषण से भी तो काम नहीं चलता । यदि मृत्यु सुलभ होती तो अपाप अब उसी की कामना करता । समस्त साथी शांति रक्षकों ने कहने में कुछ भी कसर न रखी । अपाप

सोच रहा है कि भूमि फट जाय और वह उसमें समा जाय। कहे हुए शब्द लौट नहीं सकते। प्रभु मर्यादा पुरुषोत्तम हैं। न जाने अब क्या होगा ? यही चिन्ता उसे व्याप्त हो रही है।

सब शान्ति रक्षकों ने कहा—"अपाप, तूने आज कौशलराज के मस्तक पर कलंक लगाने की धृष्ठता की है। न जाने अब क्या होगा ?"

समस्त दिशाओं से, वेगमयी वायु से मानों यही शब्द निकल रहे हैं। "अब क्या होगा ?"

२९

सीता का तपोवन को प्रस्थान

महाराज राम बहुत समय तक सोचते रहे कि 'अब क्या किया जाय ?' । गुरुदेव की राज्य सम्बन्धी व्यवस्था कि स्वर्गीय महाराज दशरथ की अकाल मृत्यु के कारण त्रेता युग में नियमानुसार महाराज राम अपना राज्य-काल तो समाप्त कर चुके किन्तु वे शेष समय महाराज दशरथ की हैसियत से राज्य कर सकते हैं, उस दशा में सीता के साथ पुत्र-वधु का सा व्यवहार ही किया जा सकता है, इसके अलावा स्वयं वैदेही गर्भावस्था में तपोवन जाने की कामना रखती हैं । पर सर्वोपरि आलोचना तो धोबी ने कर दी है और राम का राज्य-धर्म उन्हें बाध्य कर रहा है कि वे अविलम्ब उस पर कार्रवाई करें । प्रभु के मस्तिष्क

में धनुष-टंकार हो रहा है। वे सायंकालीन आहार न ले सके और सीता के लिये, जो उन्हें अपने से कहीं अधिक प्रिय हैं, क्या व्यवस्था की जाय ? यह उन्हें कचोट रहा है। बहुत सोच् विचार के बाद उन्होंने तीनों भाइयों को बुला भेजा।

रात्रि का दूसरा पहर है और इस प्रकार आवश्यक आदेश प्राप्त होने से भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न तीनों चिंतित हो गये। वे प्रभु के विचार-कक्ष में आ उपस्थित हुए और विशाद की रेखाओं से घिरे प्रभु के ललाट की ओर उनके नेत्र अनेक बार हो आए। किसी की ताब नहीं कि बुलाहट का कारण पूछ सके। स्वयं राम बोले—"भाइयो ! एक परमावश्यक कार्य के लिये ही आपको इस विश्राम वेला में बुलाने की आवश्यकता हो गई।" फिर कुछ ठहर कर उन्होंने कहा—"ध्यान है आप लोगों को कि राज्याभिषेक के दिन हमने क्या घोषणा की थी ? हमने कहा था कि यदि कोई कार्य हम भूल से ऐसा कर जायें जिसे हमारे प्रजाजन उचित न मानते हों तो संकेत कर देने पर ही हम अपनी भूल सुधार लेंगे। ऐसा अवसर आ पहुँचा है। प्रतिहारी"—

प्रतिहारी—"हां महाराज—"

राम—"देखो यदि नगर शांतिरक्षक अपाप यहीं राजभवन में हों तो उन्हें यहाँ भेज दो।"

शांतिरक्षक अपाप कुछ देर में ही आ उपस्थित हुए। राम की आज्ञा पर उन्होंने धोबी की बात तीनों राजकुमारों की उपस्थिति में सुना दी। जिसे सुनकर एक साथ स्तब्धता छा गई। रात्रि के कारण वातावरण शांत था। किन्तु अपाप के कथन के बाद वह और भी शांत हो रहा। राम फिर बोले—"आप लोगों की क्या सम्मति है इस सम्बन्ध में ?"

भरत—"प्रभु ! माता पावक के समान पवित्र हैं। और एक नाचीज़ धोबी के कथन पर इतना विचार किया जाय, यह भी विचारणीय है। मेरी तुच्छ सम्मति में"—बीच ही में प्रभु बोल पड़े—"भरत ! इतनी सरलता और सहज रूप से इस प्रश्न को नहीं सोचा जा सकता। न्याय के सम्मुख वैदेही और धोबिन एकदम समान हैं।"

लक्ष्मण—"किन्तु प्रभु ! माता की पवित्रता की परीक्षा आप स्वयं ले चुके। अग्नि में प्रविष्ट हो कर उन्होंने समस्त चर्चाओं को शेष कर दिया है। क्या किसी भी निर्णय से पूर्व माता की सम्मति आवश्यक नहीं ?"

राम—"लक्ष्मण ! तुम भूल रहे हो। जिसके सम्बन्ध में शिकायत है उसकी सम्मति का क्या अर्थ ?" और लक्ष्मण एक साथ मौन हो गए। वे कल्पना नहीं कर पा रहे कि माता सीता को उस कोटि में रखा भी जा सकता है ?

शत्रुघ्न—"प्रभु ! मेरी तो समझ में नहीं आ रहा कि इस अति विषम प्रश्न पर अपनी तुच्छ सम्मति कैसे प्रकट करूँ किन्तु यदि उचित समझा जाय तो गुरुवर और मंत्रिवर का मत भी जान लिया जाय।"

राम—"किन्तु शत्रुघ्न ! तुमने यह न सोचा कि रघुकुल के राजकुमार कभी विषम से विषम परिस्थिति में मानसिक संतुलन नहीं खोते। उन्हें उचित निर्णय करते समय कोई चीज़ इसलिये बाधा नहीं पहुंचाती कि प्रश्न उनकी पट्टरानी का है। आगे की संतति हम लोगों के अनिश्चित निर्णय के सम्बन्ध में क्या सोचेगी ? निर्णय होगा और इसी समय होगा। देर इसलिये न होगी कि मामला वैदेही का है। वैसे गुरुवर की आज्ञा और सुमंत्र के परामर्श का सदैव स्वागत है।"

कक्ष में पुनः शांति छा गई और दृढ़ निश्चय के साथ उन्होंने लक्ष्मण को आदेश दिया—"लक्ष्मण ! तुम ही सदा से जानकी के साथ आए-गए हो और इस बार भी तुम्हें ही यह न्याय्य, यद्यपि तुम्हारे लिये अप्रिय, यात्रा करनी पड़ेगी। हमने निर्णय किया है कि वैदेही को कल प्रभात में ही तुम तपोवन ले जाओ और उन्हें वहीं रहने दिया जाय।"

"महाराज" ! तीनों भाइयों के मुख से निकला। भरत फिर बोले—"प्रभु ! अत्यन्त विनम्रता के साथ मैं निर्णय पर पुनर्विचार करने के लिए निवेदन करूंगा।"

लक्ष्मण—"प्रभु ! माता इस अवस्था में और आपका यह निर्णय ! क्या एक बार फिर विचार न किया जा सकेगा ?"

शत्रुघ्न—"प्रभु ! आपका यह निर्णय हम कैसे सह सकेंगे ?" शायद शत्रुघ्न यह नहीं जानते कि अपने इस निर्णय को झेलने की शक्ति राम

को भी पैदा करनी पड़ेगी।

राम—"न्याय-निर्णय में भावुकता को कोई स्थान नहीं है। हमसे कुछ भी अनुचित न होगा। शायद आप लोग यह नहीं जानते कि तपोवन जाने की इच्छा स्वयं सीता ने अब से कुछ समय पूर्व हमसे प्रकट की थी और उसकी शीघ्र व्यवस्था कर देने का हमने उन्हें वचन भी दे दिया था। उनकी इच्छापूर्ति के लिए भी तो उन्हें तपोवन भेजना ही होगा। इसमें हमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं। लक्ष्मण! तुम प्रातःकाल ही जाने की तैयारी कर लेना। रथ आदि के लिए आवश्यक आदेश पशुशाला के अध्यक्ष के पास इसी समय भेजने की व्यवस्था भी अभी हो जानी चाहिए।"

लक्ष्मण भलीभांति जानते हैं कि अब इस आदेश में व्यतिक्रम नहीं हो सकता। समस्त कार्य आदेशानुसार ही सम्पन्न करने होंगे। लक्ष्मण के नेत्रों के सामने माता सीता के हरण के तुरन्त बाद के दृश्य घूम गये। प्रभु का वृक्षों से पूछना। वे सहज ही अनुमान लगा सकते हैं कि सीता के तपोवनवास का अर्थ प्रभु के हृदय में क्या उत्पन्न कर रहा होगा। किन्तु लाचारी है कुछ किया नहीं जा सकता। रघुकुल की रीति निबाहनी ही पड़ेगी। वे मुड़े ही थे कि राम ने कहा—"लक्ष्मण! अर्धरात्रि व्यतीत हो चुकी। हो सकता है प्रातःकाल हम प्राप्य न रहें तो वैदेही से कहना कि वे अपनी इच्छापूर्ति के लिए हमसे बिना मिले भी जा सकती है।" इतना कहकर वे कक्ष से बाहर निकल गये।

शयन कक्ष के वातायन के पर्दे खुले हैं। प्रतिहारी ने प्रभु के पदार्पण के बाद ही उन्हें डालना चाहा किन्तु निषेध-ग्राज्ञा के कारण वह हट गया। राम खुले आकाश की ओर नेत्र चढ़ाये खड़े हैं। न जाने कितना समय व्यतीत हो गया कि उनके नेत्र शुक्र के तारे पर जा लगे। सम्भवतः प्रभात होने में अधिक देर नहीं। वे नियमित क्रियाओं के लिए चल पड़े। एक निमिष को उन्हें यह विचार ग्राया कि सीता को तपोवनवास तो उचित है किन्तु नये जीव के साथ यह व्यवहार अत्याचार की संज्ञा में तो न आ जायगा? पर यह विचार ग्राया और गया। वे चल पड़े, शायद विदा की वेला में रहने का उनका मन नहीं।

बैलों का सुन्दर रथ ब्रह्म महूर्त में ही सिंह-द्वार पर उपस्थित हो गया। सौमित्र ने महारानी सीता के पास समाचार भेज दिया कि तपोवन चलने का समय हो गया। सीता बड़ी प्रसन्न हैं। वे एक ओर सोचती हैं कि प्रभु कितने कृपालु हैं कि सायँकाल को तपोवन जाने की उन्होंने इच्छा व्यक्त की और प्रातःकाल ही व्यवस्था कर दी गई। धन्य है ऐसे प्रभु को। क्या कोई नारी संसार में ऐसी है जिसके पति अपनी सहधर्मिणी की इच्छाओं का इतना ध्यान रखते हों? वे शीघ्र ही तैयार होकर आ गई।

कोई परिचारिका अथवा दासी इसलिए तैयार होकर न आई कि तपोवन के प्राकृतिक वातावरण में राजभवन की समृति न आए। लक्ष्मण ने झुक कर अति श्रद्धा से जानकी के चरण स्पर्श किये और सदा की भाँति वहाँ से वे भी मंगल आशिष मुख से निकले। लक्ष्मण की अतिरिक्त गम्भीरता की ओर शीघ्र ही वैदेही का ध्यान गया और उन्होंने पूछा—"भैया! आज इतनी गम्भीरता क्यों? क्या बहिन उर्मिला से रुष्ट होकर आ रहे हैं। वह हमारी बहिन तो इतनी सरल है कि उसके रुष्ट होने की कल्पना भी हम नहीं कर सकतीं।"

गम्भीर श्वास लेकर लक्ष्मण ने कहा—"माता! गम्भीर होने की कोई विशेष बात नहीं। यों ही न जाने कैसे दुष्ट विचार इस दुष्ट मन में आते रहते हैं। संसार में दुख ही दुख दीखता है कहीं शांति नहीं, राहत नहीं।" लक्ष्मण के ये उद्‌गार स्वाभाविक होते हुए भी जानकी पर वह प्रभाव न डाल सके जो अपेक्षित था।

प्रभु के दर्शनों की याद होते हुए भी सीता उनके पास जाने की बात लक्ष्मण से कहने में संकोच कर गईं और रथ में बैठ गई और लक्ष्मण ने बैलों की बागडोर हाथ में ले ली। रथ चला और एक बार सीता ने पीछे छूट रहे राजभवन को करबद्ध प्रणाम किया। वह उनके श्वसुर-कुल का भवन जो है। किन्तु वह सम्भवतः उस समय यह न जानतीं थीं कि उनकी यह विदा अयोध्या से किन परिस्थितियों में हो रही है। अब लौट कर उन्हें यहां नहीं आना है। वनवास ही उनके भाग्य में बदा हैं।

३०

मधुकैटभ का समय आ गया

महाराज राम को राज्य करते समय व्यतीत हो गया। सर्वत्र शांति ही शांति फैली हुई है। कौशल राज्य के शासन को देख सुरलोक के शासक भी चमत्कृत हैं। हर ओर सुख और समृद्धि का विस्तार हो रहा है। प्रभु राम का अधिकांश समय धर्म-चर्चा और पूजा-अर्चना में व्यतीत होता है किन्तु सायंकाल को जनता के सुख-दुख की बातें सुनने के समय में वे सब कार्य छोड़ देते हैं।

बहुत दिनों बाद एक सायँकाल को नगर शांति रक्षक अपाप तथा भास्कर ने आकर बताया कि पड़ौसी ब्रजमंडल में मधुपुरी के शासक मधुकैटभ के अत्याचार दिनों दिन बढ़ते जा रहे हैं और साधुवर्ग की धार्मिक क्रियाओं में बाधा पड़ने लगी है। मधुपुरी के धर्मपरायण

व्यक्तियों का एक शिष्टमंडल उसी दिन अपरान्ह में अयोध्या पहुँचा है और प्रभु से प्रार्थी है कि किसी प्रकार मधुकैटभ के अमानुषिक अत्याचारों का अन्त किया जाय।

प्रभु इस संवाद से थोड़े विचलित हुए और उन्होंने शिष्टमंडल के प्रतिनिधियों से तुरन्त ही बातचीत करने की उत्सुकता प्रकट की। व्यवस्था कर दी गई और कुछ समय में ही वे लोग विचार-कक्ष में उपस्थित कर दिये गये।

राम—"मधुपुरी के प्रतिष्ठित नागरिको! आपके अयोध्या आगमन के कारण का कुछ आभास हमें मिला है किन्तु हम स्वयं आपसे ही सब कुछ सुनने को उत्सुक हैं।"

मधुपुरीवासी—"महाराज! बहुत समय से मधुपुरी नरेश मधुकैटभ के अत्याचार होते आ रहे हैं। हम सब उन्हें सहन करते रहे किन्तु अब तो राज्य की आज्ञानुसार धार्मिक क्रियाओं में भी बाधा डाली जा रही है। कई बार हम लोगों ने स्वयं उपस्थित होकर मधुकैटभ के सम्मुख अपनी प्रार्थना उपस्थित की किन्तु उन्होंने सदैव ही अपने स्वेच्छाचारी राज्य कर्मचारियों का पक्ष लिया और हमारे निवेदन की उपेक्षा कर दी। अन्त में हमने आपके चरणों में उपस्थित होने का निश्चय किया और गुप्त रूप से ही हम यहाँ तक पहुँच पाये हैं। प्रभु! मधुकैटभ अपने साले लंकेश रावण से भी अधिक आसुरी वृत्ति का है—"

राम—"अच्छा, तो मधुपुरी नरेश रावण के बहनोई हैं।"

—"हां महाराज! और आसुरी कृत्यों में रावण से भी अधिक उग्र, कटु और भीषण। आप ही हमारे आराध्य देव हैं और इस अति संकट-ग्रस्त काल में हमारा उद्धार कर सकते हैं।"

राम—"यह तो आपकी हम पर कृपा है कि इतना मानते हैं किन्तु हम मंत्री तथा परामर्शदाताओं से मत लिये बिना आपकी सहायता करने में असमर्थ हैं। कल ही दरबार में इस प्रश्न पर विचार होगा। आप सब भी पधारिये।"

× × ×

राम का दरबार लगा है। मंत्री, भाई तथा अन्य उच्च पदाधिकारियों

के अतिरिक्त नगर के विशिष्ट व्यक्ति विराजमान हैं। एक ओर मधुपुरी से आए शिष्टमंडल के सदस्य भी सुखासनों पर आसीन हैं। राम के पदार्पण की सूचना मिल गई और प्रभु आकर अपने उच्चासन पर विराजमान हो गये। निस्तब्धता भंग करते हुए प्रभु ने कहा—"मंत्रिवर! बंधुओ! मधुपुरी के प्रतिष्ठित नागरिको! तथा उपस्थित जनो! आज इस समय आपको कष्ट देने का एक विशेष कारण है। पड़ौसी ब्रजमंडल में वहाँ के नरेश मधुकैटभ के अत्याचार इतने बढ़ गये हैं कि प्रजा की धार्मिक क्रियाओं में भी बाधा उपस्थित हो गई है। कल सायंकाल मधुपुरी के कुछ प्रतिष्ठित नागरिकों ने हमें बताया कि मधुकैटभ लंकापति रावण का बहनोई है और आसुरी वृत्ति में उसे भी मात दे चुका है। ये लोग हमारी सहायता के अभिलाषी हैं। आप की क्या सम्मति है?"

मंत्री सुमंत्र—"महाराज! राज्य नियमानुसार हमें अपना दूत पहले भेजना उचित है। यदि फिर भी मधुकैटभ न माने तो जनता के कष्ट दूर करने के लिये शस्त्र उठाना भी अनुचित न होगा।"

सब ओर से "उचित है, उचित है" की ध्वनि आई। और यही निर्णय हुआ कि पहले दूत भेजा जाय और यदि मात्र कहने ही से काम हो जाय तब शस्त्र उठाने की ज़रूरत ही कुछ न रहे।

दौत्य कार्य के लिये नगर के शांति रक्षक भास्कर को प्रभु का मुद्रांकित पत्र मंत्री सुमंत्र ने प्रदान किया और शीघ्र ही लौटने का आदेश दिया। मांसल बैलों के रथ का वेग मानों अश्वों से होड़ ले रहा था और सात दिन की मंज़िल कुल चार दिन में व्यतीत कर भास्कर मधुपुरी जा पहुँचे। भास्कर ने देखा कि सायंकाल का समय है किन्तु कहीं से भी होम-धूम्र की सुगंध अथवा शंख और घंटों की ध्वनि सुनाई न दी। यमुना के तट पर भी कहीं कोई साधु दृष्टिगोचर न हुआ। मधुपुरी की प्रथम प्रतिक्रिया कुछ सुहावनी न रही।

अगले दिन प्रातःकाल ही वे मधुपुरी नरेश के दरबार में जा उपस्थित हुए और प्रभु की मुद्राअंकित पत्रिका दे दी। दो बार पत्र पढ़कर मधुकैटभ बोले—"राम के दूत! अपने स्वामी से कहना कि लंका विजय करना, अपनी स्त्री को देश निकाला देना एक बात है और मधुकैटभ को छेड़ना दूसरी।

तुम दूत हो इसलिये हम क्षमा कर देते हैं अन्यथा राम के इस उद्दंड पत्र का जवाब यही है।" इतना कहकर उसने पत्र फाड़ डाला और कहा—"तुम फौरन हमारे सामने से निकल जाओ। राम को हमारे शासन में दखल देने का साहस कैसे हुआ ? रावण को विभीषण के विश्वासघात ने परास्त करा दिया था लेकिन मधुकैटभ अजेय है, यह शायद तुम्हारे राम नहीं जानते। भिड़ों के छत्ते में हाथ डालने से जो परिणाम निकलता है वही मधुपुरी की ओर दृष्टि करने से हुआ करता है, शायद यह वह नहीं समझते। लिखते हैं आसुरी वृत्ति त्याग देने में ही भला है। जैसे हमारा भला बुरा उन्हीं के निर्देश की चीज़ हो। दशरथ के लड़के को कुछ मतिभ्रम तो नहीं हो गया है ? अच्छा दूत ! यहाँ ख़ड़े मत रहो। हमारा क्रोध बढ़ता है कहीं हम तुम पर वार न कर बैठें। भाग जाओ यहाँ से और अविलम्ब राज्य की सीमा छोड़ दो। कोई है—"

सेवक—"हाँ महाराज"

मधुकैटभ—"राम के इस दूत को तुरन्त राज्य सीमा छोड़ने की आज्ञा हमने दी है, किसी सैनिक से कहो कि हमारे आदेश का तुरन्त पालन होना चाहिए। जाओ, खड़े क्या हो।"

भास्कर चल दिये। उन्हें इस प्रकार के व्यवहार की आदत नहीं। अत्यन्त क्षोभ और क्रोध के कारण वे शीघ्र ही प्रभु के सामने पहुँचना चाहते हैं। और वापसी में भी बैल उतने ही समय में अयोध्या की सीमा में आ पहुँचे। यद्यपि सायंकाल का समय हो गया है फिर भी थका-माँदा भास्कर प्रभु के सामने सब कुछ कह देने को उतावला हो रहा है।

× × × ×

अयोध्या नगर के शान्ति-रक्षक भास्कर अभी-अभी मधुपुरी से लौटे हैं और सायंकाल की वेला होते हुए भी महाराज राम के दर्शनाभिलाषी हैं। मधुपुरी नरेश मधुकैटभ के उत्तर से वे इतने क्षुब्ध और असन्तुष्ट हैं कि चार दिन की लगातार यात्रा के बाद वे विश्राम करने का धैर्य भी न रख सके। सूचना भेज दी गई और शीघ्र ही दर्शनों की अनुमति भी प्राप्त हो गई, मानो स्वयं महाराज राम भास्कर की प्रतीक्षा में हों।

विचार-कक्ष में महाराज राम उच्चासन पर आसीन हैं और निय-

मित दंडवत के उपरान्त भास्कर ने अपना आरक्त मुंह ऊपर उठाया। भास्कर के बोलने से पूर्व ही महाराज बोल पड़े—"भास्कर ! इतने विचलित होने का तो कोई कारण नहीं, यह सुन चुके हो कि मधुकैटभ आसुरी वृत्ति का प्रतीक हो रहा है।" फिर भी भास्कर अपने भावों को शब्द देने में संकुचित हो रहे हैं। राम—"यही तो न भास्कर कि वह हमारी बात मानने को तैयार नहीं। विपरीत बुद्धि के कारण हो सकता है उसने तुम्हारे साथ नियमानुसार दौत्य व्यवहार भी न किया हो। ठीक है। चिंतित अथवा दुखी होने का अवसर नहीं। अब तो कल हमें विचार परिषद में आगे का कार्यक्रम निश्चित करना है। यहाँ कब पहुँचे ? हम तो तुम्हारे यहाँ लौटने की अभी २-३ दिन में आशा करते थे।"

भास्कर—"महाराज ! आपके राज्य में गोधन पर विशेष ध्यान रहने से बरधाओं ने केवल चार दिन इधर से और इतना ही समय लौटने में लिया। मैं इसी सायंकाल यहाँ पहुँचा हूँ और अयोध्या पहुँचते ही प्रथम कार्य मैंने आपके दर्शन करने का ही किया है। प्रभु ! मधुकैटभ तो सामान्य शिष्टता से भी अपरिचित जान पड़ता है। उसने पत्र पढ़ा और फाड़ फेंका। मुझे तुरन्त राज्य त्याग की घुड़की दी। और भी · · · ·"

राम—"उद्वेलित न हो भास्कर। कटुता और अशिष्टता का तुम्हारे लिये यह पहला परिचय है। जाओ थके-माँदे हो, विश्राम लो। कल मध्यान्ह से पूर्व ही परिषद में विचार करेंगे तब सविस्तार आपबीती सुनाना।"

भास्कर—"जो आज्ञा महाराज।" और थके-माँदे भास्कर विश्राम करने चल पड़े।

मध्यान्ह से पूर्व ही महाराज राम सपरिषद विचार करने में तल्लीन हैं। नगर रक्षक भास्कर मधुपुरी नरेश मधुकैटभ के अत्यन्त अशिष्ट व्यवहार का ब्यौरा दे चुके। अधिकांश चेहरों पर असंतोष और रोष के भाव झलक रहे हैं। मंत्रिवर सुमंत्र ने अपना मत व्यक्त करते हुए कहा—"परम आदरणीय महाराज ! तथा उपस्थित संभ्रान्त सज्जनो ! मैं आर्य भास्कर का वक्तव्य सुन चुका और तब से यह विचार कर रहा हूँ कि एक बार—अन्तिम बार—चेतावनी स्वरूप पुनः मधुपुरी नरेश को पत्र

लिखा जाय अथवा नहीं !"

वीर लक्ष्मण बोल पड़े—"मंत्रिवर ! मधुकैटभ ने सिर्फ़ अशिष्टता का परिचय ही नहीं दिया वरन प्रभु राम का अपमान भी किया है। मेरी सम्मति में हमें अब तत्काल पग उठाना चाहिये।"

सुमंत्र पुनः बोले—"राजकुमार की सम्मति तथ्यों पर ही आधारित है अतः वह भी हमारे निर्णय में सहायक होगी। हाँ, मधुपुरी के निवासियों से मैं यह जानना चाहूँगा कि मधुकैटभ रावण के बहनोई हैं तो उनका दक्षिण के नरेशों से कैसा संपर्क है और उस विवाह में कौन-कौन नरेश सम्मिलित हुए थे ?"

मधुपुरीवासी—"महाराज ! मधुकैटभ का विवाह प्रचलित परम्परा के अनुसार नहीं हुआ अतः किसी व्यक्ति के उसमें सम्मिलित होने का प्रश्न ही नहीं। यह उस समय की बात है जब जनकपुर में माता सीता का स्वयंवर हो रहा था तब लंकापति रावण इधर आया हुआ था। पीछे ही मधुकैटभ रावण की बहिन कुम्भीनसि के सौंदर्य की प्रसिद्धि से प्रभावित होकर लंका पहुँच गया और चुपचाप उसे ले आया। वहाँ पर जब पता चला तब तक वह बहुत दूर निकल आया था। लंकेश विभीषण से उसकी कभी नहीं बनी और दक्षिण के किसी नरेश से कदाचित वह परिचित भी न हो।"

सुमंत्र—"ठीक, ठीक। अब हमें यह विचार करना है कि क्या पग उठाया जाय ? मधुकैटभ ने अपने आपको अजेय कहा तो क्या उसकी सैन्य और शस्त्रास्त्र शक्ति अपरिमित है ?"

एक मधुपुरीवासी बीच ही में कहने लगा—"मंत्रिवर ! बीच में बोल पड़ने के लिये क्षमाप्रार्थी हूँ। किन्तु मधुकैटभ के सम्बन्ध में कुछ और बताना शेष रह गया। जनकपुर से जब रावण लंका पहुँचा तो उसे अपनी बहिन के हरण का संवाद मिला और वह क्रोधावेष में सेना के साथ मधुपुरी के लिये चल पड़ा। मधुपुरी पहुँच कर वह राजभवन में प्रविष्ट हो ही रहा था कि मधुकैटभ ने भय के कारण अपनी नवपरिणीता कुम्भीनसि को आगे भेज दिया और भाई के सामने बहिन सजल नेत्रों से

वे मेरे पति और तुम्हारे बहनोई हैं। अतः अब लंका लौट जाओ। उन्हें क्षमा कर दो।" रावण ने भी वस्तुस्थिति पर विचार किया और बहिन की इच्छा का ध्यान करके लंका लौट गया। किन्तु मधुकैटभ को सदा ही यह भय बना रहा कि कहीं रावण पुनः आक्रमण न कर दे। अतः उसने घोर तप किया और एक त्रिशूल प्राप्त किया जिसे यह वरदान है कि वह जब तक मधुकैटभ के हाथ में रहेगा उसे कोई भी मार न सकेगा। इसी कारण उसे अति दम्भ है और उसी से उसने अयोध्या के दूत से अपने अजेय होने की बात कही है।"

राजकुमार शत्रुघ्न—"तो क्या मधुकैटभ उस त्रिशूल को सदैव ही अपने पास रखता है ? कभी अलग ही नहीं करता ?"

मधुपुरीवासी—"नहीं महाराज ! उसे वह अपने अस्त्रालय में सुरक्षित रखे हुए है और अब उसे धारण नहीं करता। किन्तु अब इस परिवर्तित स्थिति में नहीं कह सकते कि वह उसे सदैव ही अपने पास रखने लगा हो।"

सुमंत्र—"ठीक, ठीक। यह कार्य हमारा है कि इन सब बातों की सूचना प्राप्त करें। आपकी इन समस्त सूचनाओं के लिये धन्यवाद। मैं महाराज से प्रार्थना करूँगा कि परिषद के विचार वे जान चुके, अब अपना निर्णय दे दें।"

राम—"हम एक बार निर्णय करने से पूर्व परिषद के विभिन्न विचार जानने के लिये तैयार हैं। उपस्थित जनों में से कोई ऐसे व्यक्ति हैं जो इस मामले में पग उठाने के पक्ष में न हों ?" समस्त समुदाय शान्त रहा—

राम—"आपके मौन रहने से मैं समझता हूँ कि सब एकमत हैं। इतना निर्णय हमने कर लिया कि मधुकैटभ के विरुद्ध पग उठाना चाहिये। उसका समय और ब्यौरा हम शीघ्र ही विचार-कक्ष में निर्णय करेंगे।"

विचार-परिषद उठ गई। राम शाद्वल-उद्यान की ओर चले गये, मध्याह्नकालीन आहार का मानो उन्हें ध्यान ही न रहा। पाकशाला के अध्यक्ष को चिन्ता हुई कि प्रभु का आहर-त्याग दिन-दिन बढ़ता जा रहा है। शरीर में निर्बलता बढ़ रही है। राजवैद्य भी पिछली बार इस पर चिन्ता व्यक्त कर चुके हैं। वह धीरे-धीरे उद्यान की ओर चला कि सामने से प्रभु कुछ वेगमय पगों से आते दृष्टिगोचर हुए। प्रभु ने पाकशाला-अध्यक्ष

को देखते ही कहा—प्रधान ! हमें शीघ्र सूचित करो कि मंत्रिवर, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न भोजन कर चुके अथवा नहीं ? यदि वे निवृत्त हो गये हों तो उनसे कहना—अच्छा कहना कुछ नहीं—मात्र यह देख आओ कि वे भोजन कर चुके कि नहीं और इस समय विश्राम तो नहीं कर रहे ?"

प्रधान—"जो आज्ञा महाराज ! प्रभु ने अभी तक भोजन नहीं किया। क्या"—

राम—"प्रधान ! पहला काम पहले करो। राम भूखों नहीं मरने वाला। जाओ, चिन्ता न करो। निराहार रहने से विचार अच्छा किया जा सकता है।" प्रधान के पगों की गति को लक्ष्य कर प्रभु फिर बोले—"इतना मोह क्या उचित है ? तनिक वेग से बढ़ो। आज हमें फिर एक अति महत्वपूर्ण निर्णय करना है।"

× × × ×

सायंकाल होने को है और महाराज राम के विचार-कक्ष में मधुपुरी नरेश मधुकैटभ के विरुद्ध पग उठाने पर विचार किया जा रहा है। वातावरण गम्भीर है। मंत्री सुमंत्र, राजकुमार लक्ष्मण, भरत तथा शत्रुघ्न मौन किन्तु विचारमग्न बैठे हैं। महाराज राम ने ही पहले कहा—"हम लोगों को इस महत्वपूर्ण प्रश्न पर चर्चा करते काफी समय हो गया। एक प्रकार से हमने आप लोगों को विश्राम भी न करने दिया और सूर्य अस्ताचल की ओर चल पड़ा। मंत्रिवर ने यह भार अपने ऊपर लिया है कि वे शान्तिरक्षक अपाप और भास्कर के साथ चार गुप्तचरों को रवाना कर देंगे। अब यह और निर्णय शेष रहा कि हम कब प्रस्थान करें ?"

तीनों एक साथ—"आप ?—आप का स्वास्थ्य इन दिनों ठीक नहीं रह रहा फिर हम लोग यह कैसे सहन करेंगे कि निर्बल स्वास्थ्य में भी आप इतनी लम्बी यात्रा करें।"

राम मुस्करा कर बोले—"मेरे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में आपको मिथ्या धारणा कैसे हो गई ? मैं तो बिल्कुल स्वस्थ हूँ, बल्कि पिछले कुछ दिनों से तो मैं पूर्ण स्वस्थ अनुभव कर रहा हूं।"

लक्ष्मण—"प्रभु ! राजवैद्य और प्रधान कभी मिथ्या भाषण नहीं करते। उनका कहना है—"

राम बीच ही में—"अरे उनकी बातों पर न जाओ। यदि एक बार आहार त्याग दिया तो प्रधान के पेट में दर्द होने लगता है और राजवैद्य तो वृद्ध होकर स्वर्गीय पिताजी से भी अधिक मोही होते जा रहे हैं।"

लक्ष्मण—"प्रभु! चौदह वर्ष के वनवास का आपके स्वास्थ्य पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, यह कोई कैसे सोच ले, फिर इधर हममें से कोई भाभी के अभाव में सेवारत भी तो नहीं रहा।" माता के उल्लेख से उपस्थितों के सामने एक महान दुखदायी चित्र खिंच गया। राम के हृदय का पुराना घाव हरा हो गया किन्तु क्या मजाल जो उसकी प्रतिक्रिया चेहरे पर हो जाय।

कुछ क्षणों के बाद भरत बोले—"प्रभु! आपका और बन्धुवर लक्ष्मण का वास्तव में बनवास के कारण मधुपुरी जाने का दावा उतना तथ्यपूर्ण नहीं जितना मुझ दास का। क्या मैं प्रार्थना करूं कि इस कार्य के लिए मुझे जाने की अनुमति प्रदान की जाय?" इतना कहकर वे याचक नेत्रों से प्रभु की ओर देखने लगे कि अति मौन बैठे शत्रुघ्न ने मुँह खोला—"प्रभु! यह यथार्थ ही है कि आप और अग्रज लक्ष्मण बनवास के कारण मधुपुरी जाने का विचार न करें। किन्तु मेरा विनम्र निवेदन है कि बन्धुवर भरत भी अयोध्या में १४ वर्ष बनवास का-सा ही जीवन व्यतीत करते रहे हैं। धार्मिक क्रियाओं में उन्होंने न जाने निरंतर कितने दिनों तक आहार त्याग किया है। तब मुझ तुच्छ दास पर ही अनुग्रह करके मधुपुरी जाने का आदेश दिया जाना ही उपयुक्त है। आदेश की प्रतीक्षा में हूं।" अन्तिम वाक्य से स्पष्ट हो गया कि शत्रुघ्न के तर्क के साथ ही उनकी हार्दिक अभिलाषा भी कम सुदृढ़ नहीं। महाराज राम ने बारी-बारी से उपस्थित सबकी ओर देखा और सुमंत्र से बोले—"मंत्रिवर! अनुज शत्रुघ्न का दावा हम सबसे अधिक बलशाली है अतः उनको ही अवसर मिलना उचित है। अब आप इन्हें अपनी योजना बता दीजिये ताकि ये तुरन्त प्रस्थान करने की स्थिति में हो सकें।"

निर्णय हो गया और शत्रुघ्न की विजय रही। उन्हीं को मधुपुरी जाने का सुअवसर प्राप्त हुआ।

प्रस्थान से पूर्व वीर योद्धा के वेष में शत्रुघ्न महाराज राम की चरणधूलि लेने उपस्थित हैं। और प्रभु के कोमल किन्तु दृढ़ चेहरे पर पिता के स्नेह और आशिष की छाया व्याप्त है। शत्रुघ्न ने चरण स्पर्श किये और राम ने कोमलता से उनके सिर पर हाथ फेरा और सफलता का कल्याणकारी आशीर्वाद दिया। बोले—"अनुज शत्रुघ्न! तुम मधुकैटभ को परास्त कर मधुपुरी का शासन-भार स्वयं ही संभालना और हम बुलावें तभी अयोध्या लौटना। तुम्हारी जय हो।"

इसी प्रकार राजकुमार भरत और लक्ष्मण के उन्होंने चरण छुए और आशीर्वाद प्राप्त किया। सुमंत्र ने गले मिलते हुए इतना ही कहा—"युद्ध में परामर्शदाता के निर्णय की अवहेलना से कभी जल्दबाज़ी हो जाने का खेद बाद में हो जाया करता है। आर्य! अपाप और भास्कर रवाना हो चुके। वे आपको उचित ही परामर्श देंगे।"

शत्रुघ्न अपने चुने योद्धाओं सहित मधुपुरी के लिये उचित मुहूर्त में प्रस्थान कर गये। मार्ग में वाल्मीकि आश्रम में वे रुके। उसी समय एक आश्रमवासिनी के पुत्र-जन्म का समाचार प्राप्त हुआ। शत्रुघ्न को यह पता न था कि ये नवशिशु अन्य कोई नहीं उनके भतीजे ही थे।

मधुपुरी के निकट एक निर्जन किन्तु मनोहर स्थान में शत्रुघ्न का शिविर लगा है। चारों ओर ऊँचे कदम्ब और आम्र के वृक्ष हैं जिनकी सघनता के कारण पास के व्यक्ति को भी यह पता नहीं चल सकता कि उस स्थान पर कोई वाहिनी पड़ी हुई है। सायंकाल होते ही अपाप लौट आये। राजकुमार शत्रुघ्न के निजी शिविर में वे अकेले ही प्रविष्ट हो गये।

शत्रुघ्न—"अपाप! मैं तुम्हारी प्रतीक्षा ही कर रहा था। हम लोगों ने अब काफ़ी विश्राम कर लिया है और मार्ग की थकान दूर हो गई। अब कहो हमें किस समय मधुपुरी अभियान करना है?"

अपाप—"महाराज! अभी उचित अवसर नहीं आया। मधुकैटभ तथा उसके लोग सतर्क हैं। किन्तु अभी तक उन्हें श्रीमान के पहुँचने का संवाद नहीं प्राप्त हुआ। यहाँ का गुप्तचर विभाग निकम्मा जान पड़ता है, वरना दो दिन का समय सूचना के लिए कम नहीं होता। यहाँ की प्रजा के सम्पर्क में आने से अनुचर को ज्ञात हुआ है कि राज्य की सेना के

अतिरिक्त नागरिकों में से कोई भी मधुकैटभ का साथ न देगा। सेना में भी भ्रष्टाचरण के कारण कोई नैतिक साहस नहीं। जिस दिन से आर्य भास्कर यहाँ से लौटे हैं और राजाज्ञा निकली है, सेना में क्षोभ और असन्तोष छाया हुआ है। अधिकांश राज्य कर्मचारी भी मधुकैटभ के शासन से दु:खी हैं। किस समय हमें आक्रमण करना है इसका निश्चय भास्कर के आने पर ही करना उचित होगा।"

शत्रुघ्न--"अपाप! मेरी भुजाएं उस असुर से जूझने को फड़क रही हैं। अधिक धैर्य करना मेरे लिए दुष्कर होगा। रात्रि में जिस समय भी भास्कर आवें आप दोनों तुरन्त यहाँ मेरे पास आ जाइये।"

दो पहर रात जा चुकी कि शत्रुघ्न के प्रतिहारी से स्वामी को जगाने के लिए कहा गया। प्रतिहारी ने अन्दर जाकर देखा कि जगाने की आवश्यकता नहीं वे स्वयं प्रतीक्षा में हैं।

शत्रुघ्न--"अपाप और भास्कर आ गये हैं क्या? उन्हें तुरन्त अन्दर ले आओ।"

वार्तालाप प्रारम्भ हो गया।

भास्कर--"महाराज! कल प्रातः मधुकैटभ मृगया के लिए जायगा और स्वभावतः सायंकाल से पूर्व न लौटेगा। वह अपने साथ अपना अजेय त्रिशूल नहीं ले जा रहा। अतः हमें उसके लौटने पर इस प्रकार योजना बनानी है कि वह अपने अस्त्रालय से त्रिशूल न ले सके।"

शत्रुघ्न--"प्रभु का आशीर्वाद इस शीष को प्राप्त है, हमें विश्वास है कि वह त्रिशूल भी इसे क्षत न कर सकेगा। हम कल प्रातःकाल ही आक्रमण करेंगे।"

भास्कर--"महाराज! प्रातःकाल आक्रमण करने से अपरान्ह में आक्रमण करना अधिक उपयुक्त होगा। मधुकैटभ मृगया से थका-मांदा लौटेगा--"

शत्रुघ्न--"क्या यह सतर्कता की अति नहीं? ज्योंही वह राज-प्रासाद से निकलेगा हम उस पर आक्रमण कर देंगे।"

भास्कर--"महाराज! उस दशा में उसे त्रिशूल प्राप्त करने की सुविधा हो सकेगी।"

शत्रुघ्न को मंत्री सुमंत्र के शब्द ध्यान में आ गये कि परामर्श की उपेक्षा न होनी चाहिये। अतः जब अपाप और भास्कर तम्बू से बाहर निकले तो प्रभात होने में अधिक देर न थी। कदाचित कुछ ही देर बाद प्रातःकालीन सामयिक आरम्भ होने वाली थी और कुछ सैनिक स्वभावतः नींद शेष कर चुके थे। किन्तु अपाप और भास्कर को सूर्योदय से पूर्व ही पुनः नगर लौट जाना था। अतः वे जमुना के तट पर स्नान करने चल पड़े।

शत्रुघ्न ने भी अंगड़ाई लेकर शैया त्याग दी और दिन के नियमित कार्यक्रमों में लग गये।

मधुपुरी के निकट बाहर ही कालिन्दी के कूल पर शत्रुघ्न के शिविर में प्रातःकालीन सामयिक से सैनिकगण निवृत्त हो चुके और प्रतिदिन की भाँति नियमानुसार उन्होंने अपने अस्त्र-शस्त्र ठीक करके समर की तैयारी कर ली। सेनानायक तथा सैनिकगण यह नहीं जानते कि अभियान का आदेश किस समय प्राप्त होने वाला है अतः वे हर क्षण तैयार हैं। राज-कुमार शत्रुघ्न का आदेश प्राप्त होते ही आठ नायक उनके कक्ष में आ उपस्थित हुए।

शत्रुघ्न—"नायको! आज ही हमें मधुकैटभ के प्रासाद पर आक्रमण करना है। हम यहाँ से अपरान्ह में प्रस्थान करेंगे। हमारी राय है कि चार नायकगण अपने सैनिकों सहित राज-प्रासाद का घेरा डाल दें और किसी को भी प्रासाद से बाहर न निकलने दें। दो नायकगण अपने सैनिकों सहित सिंह तथा पृष्ठ द्वार से प्रासाद के अन्दर पहुँच कर अस्त्रालय पर अधिकार कर लें। एक नायक प्रासाद में रहनेवाले थोड़े से सैनिकों से आत्मसमर्पण करा लें, किन्तु अस्त्रों का प्रयोग अनिवार्य न हो जाय तब तक न करने की सावधानी रखी जाय। एक नायक मधुकैटभ से युद्ध के समय अपने सैनिकों सहित हमारे साथ रहें। यदि इसमें कुछ परिवर्तन हुआ तो अगले आदेश की प्रतीक्षा में रहें। सावधानी करने वाले भटों की टुकड़ी यहाँ शिविर में तैयार रहे। अब आप तुरन्त ही तैयारियाँ पूर्ण कर लीजिये।"

दिनकर नामक नायक ने कहा—"महाराज! हम तो जिस क्षण से यहाँ आये हैं तभी से तैयार हैं। इन तीन दिनों का विश्राम भी धैर्यपूर्वक ही पूर्ण हुआ है। किन्तु प्रभु! क्या आपके साथ केवल एक ही नायक को

रहने का आदेश है ? प्रासाद के घेरे के लिये दो टुकड़ियाँ बहुत काफी हैं। क्या इस आदेश पर पुनर्विचार नहीं किया जा सकता ?"

शत्रुघ्न—"हमारा मत अकेले मधुकैटभ से युद्ध करने का है। जो एक नायक उपस्थित रहेंगे वह भी अतिरिक्त सावधानी के विचार से ही किया गया है। यह ठीक है कि जनता मधुकैटभ का साथ नहीं देगी, किन्तु हमें प्रासाद का सम्पूर्ण दृढ़ घेरा रखना परमावश्यक है।"

एक अन्य नायक—"महाराज! प्रासाद के लिए तो एक नायक ही पर्याप्त हैं, फिर अन्दर भी तो हमारे काफी भट रहेंगे। अतः सेवक की विनम्र प्रार्थना है कि वास्तविक युद्ध के समय एक नायक के स्थान पर कम से कम दो नायकों के रखने का आदेश दे दिया जाय। आगे जैसी आज्ञा हो महाराज की।"

शत्रुघ्न ने कुछ क्षणों तक अपने निर्णय पर पुनर्विचार किया और यह प्रस्ताव उन्होंने स्वीकार कर लिया कि उनके साथ दो नायक अपने भटों सहित विद्यमान रहें।

आठों नायक शिविर में लौट कर आ गये और आवश्यक आदेश उन्होंने जारी कर दिये।

अपरान्ह का समय है और राजकुमार शत्रुघ्न की सेना अश्वों और रथों पर मथुरा नगर की ओर बढ़ चली। योजनानुसार प्रासाद का घेरा डाल दिया गया और निर्देशानुसार नायकगण अपने सैनिकों सहित प्रासाद के भीतर प्रविष्ट हो गये।

वास्तव में जिस विरोध की आशा थी वह भी न हुआ और सरलता से ही अस्त्रालय तथा प्रासाद के भटों पर अधिकार कर लिया गया। कुछ सैनिकों ने तो प्रसन्नतापूर्वक ही आत्मसमर्पण कर दिया।

लेकिन एक घटना अनहोनी हो गई। रनिवास से महिषी कुम्भीनसि ने प्रधान नायक से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। दिनकर काफी विचार करके उपस्थित हो गये।

कुम्भीनसि—"आप राम की सेना के नायक हैं ?"

दिनकर—"जी हाँ, मैं महाराज शत्रुघ्न की सेना का एक तुच्छ नायक हूँ।"

कुम्भीनसि––"तो राम स्वयं नहीं आय। अपने छोटे भाई को भेजा है उन्होंने।"

दिनकर––"जी"––

कुम्भीनसि––"मैं तो राम से ही कुछ कहना चाहती थी। लंका की नारियों का उन्हें ही कुछ अनुभव हो सकता है।"

दिनकर मौन रहे।

कुम्भीनसि––"सेनानायक! क्या यह ठीक नहीं कि मेरे भाई रावण से वैर होने के कारण ही उसकी बहिन के पति पर आक्रमण किया जा रहा है, इसे क्या आप लोगों में न्याय कहते हैं?"

दिनकर––"महारानीजी! हम सैनिक यह सब बातें नहीं समझते।"

कुम्भीनसि––"तो सेनानायक! किसी ऐसे व्यक्ति को यहाँ भेजो जो कम-से-कम हमारी बातें समझ सके।"

दिनकर लौट आये और उन्होंने भास्कर को भेज दिया। कुम्भीनसि ने उनसे भी यही प्रश्न किया।

भास्कर––"महारानीजी! आपकी धारणा कुछ भ्रमपूर्ण है, ऐसा कहने के लिये मुझे आशा है आप क्षमा करेंगी। वस्तुस्थिति यह है कि मधुपुरीवासियों की प्रार्थना पर कि मधुपुरी नरेश के शासन में घोर पाप हो रहे हैं, यहाँ तक कि धार्मिक कार्यों पर भी प्रतिबन्ध है, उन्हें अत्याचार से मुक्त करने के लिये हमारे परम प्रभु राम ने मुझ दास को ही मधुपुरी नरेश के पास पत्र लेकर भेजा था। उसके उत्तर में देवि! उन्होंने मुझ दूत का अपमान तो किया ही साथ ही प्रभु का भी घोर अपमान किया और पत्र के उत्तर में उसे फाड़ डाला। अब आप ही विचार कीजिये कि यह आक्रमण क्यों किया गया है?"

कुम्भीनसि को यह सब ज्ञात न था, अतः वह कुछ देर मौन रह गईं। किन्तु पति-प्रेम ने उन्हें फिर कुछ कहने को बाध्य कर दिया।

"मुझे ज्ञात नहीं कि आपका कहना कहाँ तक ठीक है पर मैं अब कहूँ क्या? यदि राम होते तो वे मेरे मन की अग्नि को समझ सकते थे। यह तो तुम्हें भी पता होगा कि सती सुलोचना लंका के रनिवास की ही एक महानारी थीं। लंका में पतिपरायण नारियों की कमी नहीं, समस्त

सद्गुण अयोध्या के ही भाग में नहीं आये हैं। जब लौटोगे तो राम से कहना शूर्पणखा और कुम्भीनसि बहनें होते हुए भी उनमें बड़ा भारी अन्तर है। अच्छा अब तुम जा सकते हो।"

जिस समय प्रासाद के भीतर कुम्भीनसि दिनकर और भास्कर से बातचीत कर रहीं थीं बाहर मधुकैटभ का काल उसे समय से पूर्व ही खींच लाया था। राजकुमार शत्रुघ्न ने उसे ललकारा—"मधुकैटभ ! तुमने प्रभु राम के पत्र का जो उत्तर दिया था उसकी कैफ़ियत माँगने हम आ पहुँचे हैं। हमारा कहना है कि तुमने मधुपुरी के नागरिकों पर मनमाने अत्याचार स्वयं किये और अपने धूर्त कर्मचारियों से कराये। जब अयोध्या के अधिपति ने तुम्हें सावधान किया तो तुमने उनका अपमान किया। तुम इन दो अक्षम्य अपराधों के सम्बन्ध में कुछ कहना चाहते हो ?"

मधुकैटभ स्वभाव से कायर था, घबड़ा गया। किन्तु कड़क कर बोला—"मुझसे कैफ़ियत लेनेवाले तुम कौन हो? यह तो कहो। बड़ी बढ़-बढ़ कर बातें मारते हो।"

शत्रुघ्न को क्रोध हो आया—"मधुकैटभ ! तुम पापी तो हो ही साथ ही तुम्हें बोलने की तमीज़ भी नहीं। बहुत बातें न करो। तुम्हें उन आरोपों के सम्बन्ध में कुछ कहना है ?"

मधुकैटभ इधर-उधर देखने लगा कि किसी प्रकार त्रिशूल प्राप्त करे। अपने प्रमाद और भूल पर वह पछताने लगा।

शत्रुघ्न—"प्रासाद पर देखो सूर्य-ध्वज फहरा रहा है। यह प्रासाद, अस्त्रालय और उसमें रखा त्रिशूल अब तुम्हारा नहीं।"

मधुकैटभ एक साथ निराश हो गया। और निराशा में डूबे हुए उसे बोलने का ज्ञान भी जाता रहा। उसने कोई अपशब्द राम के लिये कहा कि शत्रुघ्न ने न चाहते हुए भी उसे समाप्त कर दिया। मधुकैटभ के

३१

मधुपुरी में रघुकुल के शासन की घोषणा

राजकुमार शत्रुघ्न की विजय के उपलक्ष में मधुपुरी ने दिन को होली और रात को दीपावली मनाई। शत्रुघ्न के आदेशानुसार साधु तथा अन्य बन्दी, जो न जाने कब से बिना विचार के ही कारावास में बन्द पड़े थे, मुक्त कर दिये गए। मधुकैटभ की मृत्यु के अगले दिन ही शासन में महान परिवर्तन हो गया। रामराज्य का आनन्द नागरिकों को प्रथम वार जीवन में प्राप्त हुआ। चारों ओर मंगल गान हो निकले। साधु तथा धार्मिक पुरुष आ-आ कर शत्रुघ्न को धन्यवाद और बधाई देने लगे।

दोपहर को राजकुमार शत्रुघ्न का दरबार लगा। धार्मिक क्रियाओं को समाप्ति के बाद भास्कर ने प्रभु राम की आज्ञा पढ़कर सुनाई कि मधुपुरी का शासन महाराज शत्रुघ्न द्वारा किया जायगा। महाराज शत्रुघ्न ने कहा—"उपस्थित महानुभावो ! मधुपुरी का शासन रघुकुल पूर्ण सेवा भाव से निबाहने का प्रयत्न करेगा। प्रभु राम के आशीर्वाद से हमारे कंधों पर वह भार डाला गया है, अतः हम घोषणा करते हैं कि अयोध्या के समस्त नियम यहाँ लागू रहेंगे तथा हम जनता की इच्छानुसार सेवा के लिए प्रस्तुत रहेंगे। किसी समय भी जनता हमारे किसी कार्य को उचित न समझे तो संकेत करते ही उसे सुधार लिया जायगा। हर व्यक्ति

अपनी आस्थानुसार धार्मिक कृत्य करने में स्वतन्त्र हैं। शासन ब्रज-मंडल की सर्वांगीण उन्नति के लिए निरन्तर उद्योगशील रहेगा। मृत मधुकैटभ की रानी कुम्भीनसि के साथ अति सौजन्यतापूर्ण व्यवहार किया जायगा। आर्य भास्कर स्वयं उनकी सेवा में जायेंगे और उनसे उनके भविष्य के सम्बन्ध में विचार-विनिमय करके हमें बतलायेंगे।

"जिन सज्जनों ने मधुकैटभ के अत्याचारों से ब्रज-मंडल को मुक्त कराने में सहायता दी है राज्य उनका आभारी है। जो पुराने राज्य कर्म-चारी सेवा कार्य करते रहने के इच्छुक हैं उनके सम्बन्ध में भी अनुकूल विचार किया जायगा। वे अपने विभाग के अध्यक्षों द्वारा आर्य भास्कर से बातचीत कर लें।

"आज के शुभ दिन साधु तथा अभ्यागतों को राज्य की ओर से भोजन कराया जायगा तथा राज्याधिकारी ध्यानपूर्वक उन असमर्थों के वस्त्र आदि का भी प्रबन्ध करेंगे जो किसी कारण स्वयं याचना करने में संकोच कर सकते हैं। हमारे समस्त प्रजाजन निर्भयतापूर्वक जीवन-यापन करने को स्वतन्त्र हैं।"

× × ×

अपराह्न में ही भास्कर रनिवास में पहुँचे और उन्होंने रानी कुम्भीनसि से भेंट की अनुमति चाही। उन्हें तभी ज्ञात हुआ कि कल से रानी अपने पति का शव गोद में लिए मौन बैठी हैं और दासियों तक को उनके निकट जाने की ताब नहीं। भास्कर ने सोचा कि पति का दुःख कुम्भीनसि को इसलिए और खाता जा रहा होगा कि वह यह सोचती होंगी कि अब रानी न रहेंगी तो जीवनयापन कैसे होगा? पर इसी आश्वासन के लिए ही तो मैं महाराज का संदेशवाहक बनकर आया हूँ कि अपने भविष्य की ओर से वे निश्चिन्त रहें। भास्कर कल्पना कर रहा है कि उसके इस प्रस्ताव को सुनकर कुम्भीनसि रघुकुल की ओर कितनी नत-मस्तक हो जायगी।

एक दासी को भेजा गया। वह भी बहुत देर में लौटी। और यह उत्तर दिया कि वह रानी से बात करने की हिम्मत न कर सकी, वाता-वरण बड़ा गम्भीर था। भास्कर ने फिर विचार किया और यह समझकर

कि अनुकूल बातें करने जा रहे हैं, इसलिए रानी के रुष्ट होने की सम्भावना नहीं, स्वयं चल दिये ।

जिस कक्ष में कुम्भीनसि अपने पति का शव लिए बैठी थीं वहाँ अत्यन्त शांत और गम्भीर वातावरण था । कुछ देर भास्कर खड़े रहे फिर उन्होंने कहा—'देवि ! नमस्कार" । कुम्भीनसि ने सिर उठा कर लाल और गीले नेत्रों से ऊपर देखा, बोली कुछ नहीं । भास्कर फिर कुछ देर चुप रहे और उन्हें बोलने को बाध्य होना पड़ा—"देवि ! मैं आपकी सेवा में महाराज शत्रुघ्न के आदेशानुसार उपस्थित हुआ हूँ । उनकी आज्ञा है"—बीच ही में रानी बोल पड़ी—"कि मैं प्रासाद से चली जाऊँ, यही न ?"

भास्कर—"नहीं देवि ! यह रघुकुल की रीति नहीं"—

रानी—"यह तो रघुकुल की रीति है कि किसी नारी को वैधव्य प्रदान कर दिया जाय । मैं तो स्वयं ही नहीं रहना चाहती । अपने महाराज से कहिये कि वे परेशान न हों । मैं उनके विरुद्ध कुछ भी करने का विचार नहीं रखती ।"

भास्कर—"रानीजी ! हमारे महाराज ने तो मुझे इसीलिये आपकी सेवा में भेजा है कि अपने भविष्य के बारे में जो भी आपकी इच्छा होगी उसे वे पूर्ण करेंगे ।"

रानी—"सेनानायक ! मेरी इच्छा पूर्ण करने की सामर्थ्य तुम्हारे महाराज में नहीं । अगर राम स्वयं आते तो कदाचित मेरी इस बात की कीमत समझ सकते ।" कुछ चुप रह कर जब भास्कर वहाँ से न हटे तो वे बोलीं—"आखिर आप लोग मुझसे चाहते क्या हैं ?"

भास्कर—"देवि ! क्षमा करेंगी, संभवतः मेरी बात अन्यथा समझी गई । महाराज की इच्छा है कि आप जहां जिस प्रकार रहना चाहें राज्य वही व्यवस्था अपनी ओर से कर देगा ।" इतना कह कर भास्कर ने समझा कि उन्होंने अपनी बात पूरी कह दी है और अब इस अति स्वाभिमानिनी नारी के रुख में अवश्य परिवर्तन हो जायेगा ।

किन्तु कुम्भीनसि ने कहा—"मैंने पहले ही कह दिया भाई ! आप चाह कर भी मेरी इच्छा पूर्ण न कर सकेंगे । लेकिग हाँ, समय बहुत बीत गया ।" और वे उठ पड़ीं । भास्कर को बड़ा विचित्र लगा । यह नारी तो

अजीब है। उधर कुम्भीनसि ने भास्कर की ओर इस दृष्टि से देखा कि अब आप जा सकते हैं।

× × ×

कुछ ही देर में कुम्भीनसि ने अपना पूर्ण शृंगार किया और अपनी एक सेविका को शत्रुघ्न के पास अपना संदेश लेकर भेजा। सेविका ने थोड़े से शब्दों में जो कुछ कहा उसे सुनकर महाराज शत्रुघ्न स्वयं चल पड़े। दूर से ही उन्होंने कुम्भीनसि की ओर देखा और अपने आप उनके दोनों हाथ मस्तक पर जा लगे और शीष झुक गया। वे बोले—"देवि! आपकी सेविका ने संदेश दिया है कि आप अपने पति के अन्तिम संस्कार के लिये आवश्यक सामग्री, चन्दन आदि की व्यवस्था कराना चाहती हैं। यह प्रबन्ध तो पहले से ही किया जा चुका, किन्तु आप स्वयं इस प्रासाद से जाने की इच्छा रखती हैं, यह क्यों? कुछ दिनों तक तो हमारा आतिथ्य स्वीकार कीजिये। उसके उपरान्त यदि आप तपोवन अथवा सिंहल, जहाँ भी जाना चाहेंगी उसकी व्यवस्था कर दी जायेगी।"

कुम्भीनसि बड़े धीमे स्वर में बोली—"राजकुमार! आतिथ्य के निमंत्रण में महाराज के आदेश की ध्वनि छिपाने पर भी नहीं छिप सकी। कुम्भीनसि का अब शेष क्या है जो वह यहाँ रुके? इतनी कृपा ही पर्याप्त होगी यदि स्वामी के अन्तिम संस्कार की व्यवस्था शीघ्र करा दी जाय।" फिर कुछ ठहर कर—"दुख तो इस बात का है कि आपके सामने लंका की नारियों का चित्र शूर्पणखा के मलिन रूप से छिप गया है। आपने चित्र का एक ही पहलू देखा है। वरना शत्रुघ्न! तुम तो क्या अयोध्या से स्वयं राम को यहाँ आना पड़ता और शायद वे भी आतिथ्य का निमंत्रण देने का साहस न कर पाते। अब तुम केवल अन्तिम संस्कार के शीघ्र प्रबन्ध करने का अनुग्रह करो। अच्छा"—और महाराज शत्रुघ्न को प्रथम बार कुछ फीके-फीके भावों का हृदय में अनुभव हुआ।

उसी दिन सायंकाल से कुछ पूर्व ही महाराज शत्रुघ्न को समाचार दिया गया कि कुम्भीनसि हठ पूर्वक अपने पति की चिता में प्रविष्ट हो गई।

शत्रुघ्न सोच रहे हैं कि मधुकैटभ तो परास्त हो गया, किन्तु उसकी महिषी अजेय ही रही।

३२

राम के अश्वमेध की तैयारी

अयोध्या के सुप्रसिद्ध शाद्वलोद्यान में राम घूम रहे हैं। रह रह कर उनके विशाल हृदय में यह भावना उठ रही है कि कितने वर्षों से वे राज्य कर रहे हैं और राज-काज में न जाने कितनी भूलें अज्ञान में हो गई होंगीं। सती सीता का वनवास, शत्रुघ्न को मधुपुरी भेजना तथा भरत को किन्नरों के उपद्रव को दबाने के लिये किन्नर-देश भेज देना उनके मानस पर प्रच्छन्न रूप से व्याप्त हैं। शत्रुघ्न और भरत को यह आदेश दे दिया गया था कि बिना अनुमति के वे अयोध्या न लौटें। अब समय आ गया है कि वे सब भाइयों से परामर्श करके एक वृहद् यज्ञ भूलों की शांति के लिये संपन्न करें। तुरन्त ही उन्होंने प्रतिहारी को बुलाया--

राम--"प्रतिहारी--"

श्रेष्ठ--"आज्ञा महाराज!"

राम--"श्रेष्ठ! अनुज लक्ष्मण इस समय कहाँ हैं?"

श्रेष्ठ--"महाराज! वे अध्ययनकक्ष में हैं, आज्ञा?"

राम--"श्रेष्ठ! उनसे कहो कि हम उनसे परामर्श करना चाहते हैं

श्रौर अपने विचार-कक्ष में उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

प्रभु के विचार-कक्ष में लक्ष्मण आ उपस्थित हुए।

राम--"लक्ष्मण ! इतने लम्बे वर्षों में राजकाज में न जाने कितनी भूलें हमसे हुई होंगी।"

लक्ष्मण--"प्रभु ! आप और भूलें ? यह तो दो असंगत बातें हैं।"

राम--"नहीं लक्ष्मण! अज्ञान में न जाने क्या-क्या हुआ होगा ? सुनो, तुरन्त ही किन्नर-देश श्रौर मधुपुरी को सन्देश भेज दो, हम भरत और शत्रुघ्न से परामर्श करना चाहते हैं।"

लक्ष्मण--"प्रभु! आपका स्वास्थ्य निरन्तर निर्बल होता जा रहा है। स्वयं भरत तथा शत्रुघ्न दर्शनों के लिये कई बार लिख चुके हैं। उन्हें यहाँ बुलाने के लिये तुरन्त ही सन्देशवाहक भेज रहा हूँ। सम्भवतः एक पखवाड़े से पूर्व ही दोनों बन्धु अयोध्या पहुँच जायेंगे।"

व्यवस्था कर दी गई श्रौर वास्तव में १० ही दिन में दोनों राजकुमार अयोध्या पहुँच गये। वे स्वयं प्रभु के दर्शनों को लालायित थे, अतः किन्नर की लम्बी यात्रा १० दिनों में ही समाप्त कर ली गई। वर्षों बाद प्रभु के दर्शन कर दोनों भाई उनके चरणों से उठने का नाम ही नहीं लेना

सायंकाल होते ही प्रभु के विचार-कक्ष में चारों भाइयों की चर्चा प्रारम्भ हुई। प्रारम्भ में राम ही बोले--"वर्षों बाद हम सब एकत्र हुए हैं और वह भी एक विशेष आयोजन पर विचार करने के लिये। हमने बन्धु लक्ष्मण से उस दिन यह इच्छा प्रकट की थी कि इन गत वर्षों के राज्य-काल में न जाने कितने पाप जाने-अनजाने हुए हैं। उनकी निष्कृति के लिये हम एक वृहद् यज्ञ का आयोजन करना चाहते हैं। मानव शरीर अक्षय तो है नहीं अतः जितना शीघ्र हो यज्ञ की व्यवस्था की जाये। श्राप लोगों की इसमें क्या सम्मति है ?"

भरत--"प्रभु ! आपका इतना निर्बल स्वास्थ्य यज्ञ की क्रियाओं को किस प्रकार वहन करेगा यही एक चिन्ता बलवती होती है। वैसे यज्ञ करने की इच्छा का विचार बहुत श्रेष्ठ है।"

की इच्छा का विचार बहुत श्रेष्ठ है।"

लक्ष्मण और शत्रुघ्न ने भी इसी प्रकार के विचार व्यक्त किये किन्तु राम अपने मत पर दृढ़ रहे तो अन्त में तीनों भाइयों ने सुझाव रखा। "प्रभु ! आचार्य तथा मन्त्रियों का परामर्श भी इस वृहद् आयोजन की व्यवस्था के लिये अपेक्षित है। कम से कम एक बार उन लोगों के विचार तो जान लिये जायें।"

और अगले दिन प्रथम प्रहर में ही विचार-कक्ष में चारों भाइयों सहित आठों मंत्री तथा गुरुवर भी चर्चा में तल्लीन थे।

राम का विचार सुनकर गुरुवर ने कहा—"महाराज ! आप का विचार श्रेष्ठ है। कुछ समय पूर्व आपने राजसूय-यज्ञ के लिये मुझसे इशारा किया था किन्तु धर्माचार के अनुसार निर्बल स्वास्थ्यवाले व्यक्ति को इतना बड़ा आयोजन उचित नहीं।"

राम—"गुरुवर ! हमारे स्वास्थ्य के संबंध में आप लोग मोह के दृष्टिकोण से ही चिंतित जान पड़ते हैं। हम आपसे यथार्थ कह रहे हैं कि हमारा स्वास्थ्य बहुत ठीक है।"

गुरुवर—"राम ! तुम्हारे निर्बल स्वास्थ्य को सिद्ध करने के लिये क्या मुझ बूढ़े को वे समस्त अप्रिय दुर्घटनायें सुनानी पड़ेंगी जिनके कारण वज्र हृदय भी दुग्ध समान हो जायेगा। सती सीता का निर्वासन, अनिच्छा से ही सही, भरत और शत्रुघ्न का किन्नर-देश और मधुपुरी को भेज कर वहीं रहने का आदेश। तनिक हृदय पर हाथ रख कर तो देखो। क्या कहूँ ? मर्यादा पुरुषोत्तम राम को अकारण चिंता हो रही है, ज्ञान अथवा अज्ञान में हुए पापों के लिये वृहद् यज्ञ करने की ? क्या अपने इस शरीर पर इतना रोष हो रहा है जो दूसरों के लिये उसे निर्बल भी बना रहने देना नहीं चाहते ?"

राम के कमलनयनों में प्रेमाश्रु झलक आये और शेष तीनों भाई तथा मंत्रियों ने तो अपने उत्तरीय आँखों पर रख लिये। वातावरण कुछ देर के लिये शांत हो गया पर राम तो मानों किसी भी तर्क को स्वीकार ही नहीं करना चाहते, बोले—"गुरुवर ! कहता था न कि भावुकता ही अधिक काम कर रही है, तो क्या इस राम को इस कामना के साथ ही शेष होने की आज्ञा देते हैं ?" और इस अप्रत्याशित निर्णय से सभी एक साथ

चौंक पड़े। गुरुवर ने सोचा कि मर्यादा पुरुषोत्तम जिसे कहा है वह आज आत्म-शुद्धि की भावना से विकल है अतः उन्होंने एक सुझाव दिया—"यज्ञ ही तो करना चाहते हो। पापों के शमन के लिये अश्वमेध भी तो अति महत्वपूर्ण है।" और अपने समर्थन के लिये उनके नेत्र भरत से लगा कर समस्त उपस्थित जनों की ओर घूम गये।

एक साथ ही सब ने गुरुवर के इस नये सुझाव को स्वीकार कर लिया और समस्त नेत्र प्रभु के चेहरे पर जा लगे। कुछ देर स्तब्धता रही और फिर गुरुवर ने कहा—"महाराज! अश्वमेध यज्ञ करने में भी आपको उपवास आदि काम न करने पड़ेंगे, फिर राजसूय और इसके फल में कोई विशेष अन्तर नहीं। यदि कोई संशय हो तो कह डालो?"

राम कुछ क्षण और सोचते रहे फिर मानों दृढ़ निश्चय कर उन्होंने कहा—"गुरुवर! राम ने आज तक क्या पितृ-तुल्य गुरु की आज्ञा टाली है जो आपका आदेश आदेश न होकर प्रश्न बन गया? मुझे शिरोधार्य है आपकी आज्ञा। अब मैं आप समस्त जनों से अनुरोन करूँगा कि यज्ञ की तैयारियाँ शीघ्र संपन्न की जायें और नेमिशारण्य में अभ्यागतालय, अतिथ्यालय आदि की व्यवस्था कर दी जाय"—कहते-कहते उनके नेत्र गुरुवर की ओर जा लगे, वे कुछ गंभीर दिखाई दिये तो राम ने पूछा—"गुरुवर! अनुचर ने तो आज्ञा शिरोधार्य कर ली फिर यह विशाल ललाट पर मलिन रेखायें क्यों? जो आज्ञा हो उसे अविलम्ब कह डालिये।"

गुरुवर भी कुछ रुक कर बोल पाये—"कुछ नहीं महाराज! मैं सोचने लगा कि राम की मर्यादा के साथ उसका विवेक भी कितना जागृत है। वशिष्ठ से अभी अभी यह कहा गया कि उसकी आज्ञा शिरोधार्य है। राम! मैं इस समय मन में अपने आपको बधाई और आशीर्वाद दे रहा था।" गुरुवर ने जिस रुकी-रुकी वाक्यावली में ये शब्द कहे उससे किसी को संतोष न हुआ। राम बोले—"गुरुवर ने राम को स्वयं ही इतना मननशील बना दिया कि वह गुरु की चिंता के इस दिये कारण से संतुष्ट न हो। गुरुदेव! राम चिंता का वास्तविक कारण जानने को उत्सुक है।"

गुरुदेव कुछ देर मौन रहे मानों हृदय की बात कह डालने की तैयारी

कर रहे हों। अन्त में वे बोले--"यज्ञ-अनुष्ठान के लिये महाराज के साथ नियमानुसार महिषी भी उपस्थित होनी चाहिये। मेरा मन कुछ उधर ही चला गया था। लेकिन ख़ैर, सौभाग्यशालिनी वैदेही के स्थान पर अब एक निर्जीव स्वर्ण-प्रतिमा ही रखनी पड़ेगी। मंत्रिवर सुमंत्र इसका प्रबंध भी कर लीजियेगा।"

समस्त जन स्तब्ध रह गये और गुरुवर तुरन्त उठ कर चल दिये।

× × ×

महाराज राम के आदेशानुसार नेमिशारण्य में अयोध्या की सी जगमगाहट हो रही है। स्थान स्थान पर अभ्यागतालय तथा आतिथ्यालय आदि खुले हुए हैं जिनमें धान्य के शकट निरन्तर पहुंच रहे हैं। मीठे जल की व्यवस्था के लिये राज के अभियांत्रिकों ने नल-कूप की व्यवस्था कर दी है जिनसे हर समय जल प्राप्त हो रहा है। राजकुमार भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्न के शिविर लगे हुए हैं जहाँ पर हर क्षण सूचनायें पहुँच रही हैं कि अमुक स्थान के ऋषि-मुनि पहुँच गये हैं और तीनों भाई उनके स्वागत में क्रियाशील हैं। प्रभु राम भी शीघ्र ही पहुँचने वाले हैं। उनके आगमन का समाचार अश्वारोही से प्राप्त हो चुका है।

दिवस का तीसरा प्रहर है और विचार-शिविर में मंत्रियों के अतिरिक्त राज परिवार के व्यक्ति भी विद्यमान हैं। निमंत्रण की लम्बी सूची पर विचार जारी है। उन नामों पर चिन्ह दिये जा रहे हैं जो आ पहुँचे अथवा आने ही वाले हैं। राजकुमार शत्रुघ्न ने महर्षि वाल्मीकि का नाम आते ही प्रश्न किया--"आमात्यप्रवर! महर्षि को अपने आश्रमवासियों सहित आमंत्रित किया गया है न?"

आमात्य--"हां महाराज! विशेष रूप से लिखा गया है कि वे सदल-बल पधारें।"

शत्रुघ्न--"संभवत: महर्षि उन दो ऋषिकुमारों को लाना न भूलेंगे जो संयोग से उस समय जन्मे थे जब मधुपुरी के मधुकैटभ को पराजित करने हम जा रहे थे और उस रात महर्षि के आश्रम में ही ठहरे हुये थे। और फिर अगला संयोग देखिये कि जब १२ वर्ष बाद मैं मधुपुरी से प्रभु के दर्शनार्थ अयोध्या आ रहा था तो फिर महर्षि के

आश्रम में ठहरा था और वे ही दोनों ऋषिकुमार सुन्दर स्वरों से प्रभु राम के जीवनवृत्त का गान कर रहे थे। काफी दूर से हम लोगों ने सुना और जब वह गान शेष हुआ तो उसे पुनः पुनः सुनने की इच्छा हुई। हमारे आत्मीय-सचिव आर्य भास्कर ने तो यहाँ तक कहा कि उन ऋषिकुमारों का परिचय प्राप्त किया जाय लेकिन कुछ सोच विचार कर मैंने इस भय से कि कहीं ऋषिराज रुष्ट न हो जायँ परिचय न पूछा। पर सच मानिये वे ऋषिकुमार मानों हमारे अन्तः में बैठ गये हैं और फिर उनकी राम-कथा का गान तो आप सब सुनकर चित्र लिखे से रह जायेंगे, इसमें संदेह नहीं—" इतना कहते कहते उन्होंने जो अन्य व्यक्तियों पर दृष्टि डाली तो अपने इस लम्बे सम्भाषण पर कुछ संकोच हो गया। किन्तु श्रोताओं पर उनके वक्तव्य का प्रभाव सुन्दर ही पड़ा था।

तुरन्त ही एक और पत्र उन ऋषि कुमारों के निमंत्रण के लिये लिख दिया गया।

शंख और तूर्य के शब्द ने सूचित कर दिया कि प्रभु राम का रथ सन्निकट ही है। समस्त समुदाय उठकर उनके स्वागतार्थ चल पड़ा। प्रभु के रथ से उतरते ही सबने साष्टांग प्रणाम किया। प्रभु ने सभी को गले से लगा लिया। लक्ष्मण जब प्रभु से गले मिल रहे थे तो उन्होंने महसूस किया कि विशाल स्कंधों का मांसल भाग मानों घुल गया है। हड्डियां चुभने लगी हैं। प्रभु का स्वास्थ्य बहुत निर्बल हो गया है किन्तु अलग होते ही ज्यों ही उनकी दृष्टि चेहरे पर गई तो उन्होंने देखा कि ललाट के तेज में वृद्धि अवश्य हुई है।

आते ही काम की बातें हो निकलीं। प्रभु स्वयं अभ्यागतालयों-आतिथ्यालयों तथा भोजनालयों का निरीक्षण करने गये। राजवैद्य ने बताया कि आगत महापुरुषों में कुछ को आतुरालयों में रखा गया है, उनके वयस्क होने के कारण लम्बी यात्रा की थकान उन्हें हो गई है।

प्रभु के मुखमंडल से ज्ञात हो गया कि व्यवस्था से वे असंतुष्ट नहीं। संध्या हो गई और प्रभु ने अपाप की याद की।

राम—"अपाप! कहो इस क्षेत्र में कोई आकुल तो नहीं?"

अपाप को इसी प्रकार की एक घटना याद हो आई जब धोबी-धोबिन की कहानी उसके मुँह से सहसा निकल गई थी और उसके परिणामस्वरूप महासती सीता आज भी कहीं बनवास में जीवन व्यतीत कर रही होंगी। कुछ क्षणों तक उसके चेहरे पर विषाद की रेखा खिंच गई। उसका अर्थ प्रभु ने यह लगाया कि शायद कोई ऐसे व्यक्ति भी हैं जो निराकुल नहीं। वे बोले—"अपाप ! सुस्त हो गये। क्या कोई घटना हो गई है ?"

अपाप—"प्रभु की महान् कृपा से कोई भी व्यक्ति आकुल नहीं। निकट के एक ग्राम की तो दशा ही बदल गई है। वहाँ पर वैसे तो पहले ही से धन-धान्य की कमी न थी किन्तु उस दिन कोठारी जब धान्य के शकट लेकर वहाँ पहुँचे तो उन लोगों ने लेने से इन्कार कर दिया। उन लोगों की प्रभु के चरणों में इतनी आस्था है कि कहने लगे हमारे घर गोधन और अनाज से भरे हैं फिर प्रभु ही का दिया तो खाते हैं और अनाज की क्या ज़रूरत ? बड़ी कठिनाई से जनपद के पंचों से परामर्श करके कुल दो व्यक्ति ऐसे निकले जिन्हें कुछ धान्य लेने को तैयार किया जा सका। अभाव जैसी चीज राम-राज्य में हो भी कैसे सकती है !"

राम को अपनी प्रशंसा सुनकर कुछ अच्छा नहीं लगा। बोले—"अपाप ! राम-राज्य के गीत गाने में तुम सब बड़े कुशल हो। कभी यह भी सोचा कि उस गाँव में दो व्यक्ति भी क्योंकर ऐसे निकले कि राज्य का अनाज लेने को तैयार हो गये ?"

अपाप—"प्रभु ! वही तो कहना है कि वे दोनों व्यक्ति अगले दिन ही प्रान्ताध्यक्ष के पास पहुँच गये और राज्य के अनाज से भी अधिक धान्य राज्य कोठार में जमा कर आए। उस समय हम लोगों की बात रखने को ही उन्होंने उसे स्वीकार किया था।"

राम—"अच्छा यह तो कहो कि तुम लोग सेना-सी लेकर गाँव-गाँव क्यों घूमे हो ? क्या कोई आत्माभिमानी व्यक्ति इतने लोगों के सामने कुछ भी ख़ैरात ग्रहण कर सकता है ? राम यह भलीभाँति जानता है कि उसका एक भी प्रजाजन ऐसा नहीं जिसे स्वाभिमानी न हो।"

अपाप—"महाराज ! वास्तव में भूल हुई, भविष्य में ऐसा न होगा।"

राम—"आज ही, अभी चरों से कहो कि रात में गाँव-गाँव जायँ और खोज करें कि किस के घर में अभाव है ? कौन भूखे पेट सोया है ? किस की कन्या विवाह के योग्य है ? और किसे अर्थ की थोड़ी भी आवश्यकता है ? मत कहिये उनसे कि आप राज्य की ओर से कृपा करने आए है ।"

अपाप—"ऐसा ही होगा प्रभु !"

राम—"अपाप ! अन्यथा न समझो । राम के पापों को धोने के लिये तुम सबको श्रम करने की आवश्यकता है ।"

अपाप ने एकदम झुक कर पैर छू लिये और गद्गद् कण्ठ से बोला—"महाप्रभु ! अगर कभी पापों के धुलने की आवश्यकता हुई तो हम सबको प्रभु का चरणोदक लेना पड़ेगा । यह अति विपरीत बात इस मुखारविन्द से निकली कैसे ?"

राम भी आर्द्र हो गये, बोले—"अपाप ! तुम लोगों ने ही तो राम को स्नेह-तन्तुओं से बाँध रखा है वरना न जाने अब तक क्या......हुआ... होता ।" और धीरे-धीरे वाक्य समाप्त कर वे चुप हो रहे ।

अपाप प्रभु की सौजन्यता और सरलता से इतना प्रभावित हुआ कि खड़ा हो गया किन्तु चल न सका । कुछ ठहर कर बोला—"प्रभु ! आपके सामने बोलने का साहस न जाने कैसे हो जाता है ?"

राम—"क्यों, क्या राम के सामने बोलना कुछ अप्रीतिकर है ?"

अपाप—"नहीं महाप्रभु ! अपाप जैसा क्षुद्र व्यक्ति न जाने क्या-क्या कह जाता है और सागर के समान विशाल-हृदय प्रभु उसकी बात भी सुनने में अपना अमूल्य समय नष्ट कर देते हैं ।" वस्तुस्थिति का ध्यान अपाप को हो आया तो बोला—"महाराज ने अभी-अभी जो आदेश दिये हैं उनका अविलम्ब पालन होगा । अब समय अधिक हो गया । पीछे ये प्रधान खड़े हैं संभवतः प्रभु ने अभी तक आहार नहीं लिया है ।"

राम ने पीछे मुड़ कर देखा प्रधान मौन भाव से खड़ा था । वे बोले—"प्रधान ! क्या यज्ञ के दिनों में भी राम के भोजन की चिन्ता हो रही है ? पंडित से पूछा होता कि हमें उपवास रखना चाहिये या नहीं ।"

प्रधान—"पूछ लिया है महाप्रभु ! आज उपवास का दिन नहीं और असमय हो चला है ।"

राम--"प्रधान ! फिर असमय में भोजन न कराओ संभवतः कुछ
लाभ हो जाय। कल देखा जायगा।"

प्रधान--"पर प्रभु ! कल आपके उपवास का दिन है।"

राम--"यह तो और भी अच्छा है।"

अपाप से--"अच्छा, अपाप ! अब तुम जा सकते हो।"

अपाप--"जो आज्ञा महाराज !"

और प्रधान को वहाँ से खाली ही लौट आना पड़ा।
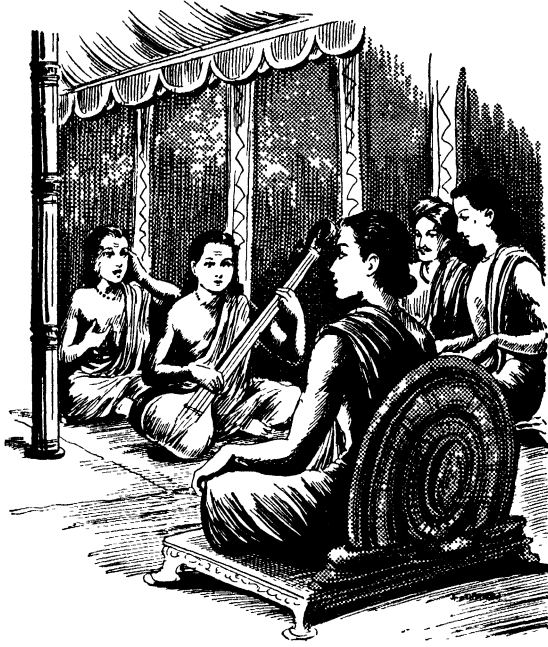
३३

अश्वमेध यज्ञ पूर्ण हुआ

चारों ओर होम-सामग्री और चन्दन की सुगन्ध फैल रही है। चतुर्दिश वेद वाक्यों से व्याप्त है। महाराज राम का अश्वमेध यज्ञ हो रहा है, यह जम्बू द्वीप के इस ओर से उस ओर तक विदित है। स्थान-स्थान के ऋषि-मुनि अपने आश्रमवासियों सहित आये हुए हैं। ऋषि-कुमार और ऋषि-कन्याओं के शुभागमन से नेमिशारण्य से सुरलोक को भी ईर्ष्या होना स्वाभाविक है। युग का सबसे बड़ा आकर्षण यह अनुष्ठान सुचारु तथा धार्मिक रूप से सम्पन्न हो रहा है।

योजनों दूर तक ग्राम निर्धूम हैं, क्योंकि वे इन दिनों महाराज राम के अतिथि हैं। उनको प्रात:कालीन दुग्धपान से लेकर रात्रिकालीन दुग्धपान तक समस्त आहार राज्य की भोजनशाला में करना होता है। एक विचित्र वातावरण पैदा हो गया है और यह समझ कर भी कि वह मृत्युलोक ही है विश्वास करना कठिन हो रहा है।

विशाल यज्ञशाला की शोभा अनुपम है। स्थान-स्थान से नदियों का जल कलशों में रखा है। चारों किनारों पर कदली पत्रों के तोरण बने हैं और मंगल सप्तघट रखे हुए हैं, जिन पर कन्याओं ने अनेक रंगों से चित्रकारी की है। कच्चे सूत का कलाया उन पर बँधा हुआ है। आचार्य तथा उपाध्याय वेद मंत्रों का उच्चारण कर रहे हैं श्रौर स्निग्ध सुगन्धित धूम्र वायु के साथ इधर-उधर डोल रहा है। इस यज्ञ और दृश्य को देखने देवता भी आ गये हैं।

यजमान के आसनों में से एक पर महाराज राम बैठे हुए हैं, किन्तु उनके वामांग के आसन पर महारानी सीता की स्वर्णिम मूर्ति विराजमान है। मूर्ति इतनी सजीव है कि मूर्तिकार उसका निर्माण कर स्वयं स्तम्भित रह गया होगा। यज्ञ की क्रियाओं के साथ राम का शरीर भले कुछ और निर्बल हो गया है पर उनके मुख का तेज निरन्तर वृद्धि पर है। राजकुल के व्यक्ति निकट ही आसनों पर बैठे हैं। उनके दक्षिण वृत्त में ऋषि-महर्षि अपने आश्रमवासियों सहित प्रसन्न एवं आनन्दमयी मुद्रा में आसीन हैं। निकट ही प्रतिष्ठित नागरिकों का कोष्ट है। वृद्धों का कहना है कि राम के राज्याभिषेक पर भी यह समाँ नहीं था।

राम होम-कुंड में आहुतियाँ छोड़ रहे हैं, ऐसा प्रतोत होता है मानो स्वयं भी यज्ञ में लय हो रहे हों। किन्तु लक्ष्मण के नेत्रों से स्वर्ण प्रतिमा के प्रति प्रभु के हृदय की उथल-पुथल छिपाये नहीं छिप सकती।

अन्तिम आहुतियाँ डाली जा रही हैं और शीघ्र ही यज्ञ पूर्ण होने वाला है। शत्रुघ्न के नेत्र ऋषियों के वृत्त पर बार-बार जा लगते हैं। सामने ही तो महर्षि वाल्मीकि अपने उन दो ऋषिकुमारों सहित बैठे हैं। धन्य है उनका रूप और उनका कंठ! शत्रुघ्न ने आज निश्चय कर लिया है कि सायंकाल होते ही प्रभु को उन ऋषि कुमारों से राम कथा अवश्य सुनवायेंगे।

धार्मिक क्रियायें पूर्ण हो चुकीं। महाराज एक लम्बी साँस लेकर मानो निश्चिंत हो गये। आज उनका भारी हृदय कुछ हल्का हुआ। पर फिर ज्यों ही उनके नेत्र प्रतिमा पर पहुँचे एक क्षण को वे विचलित-से हो गये। उन्हें दुख न होगा वे मर्यादा पुरुषोत्तम जो हैं।

सायंकाल का समय है और शत्रुघ्न महर्षि वाल्मीकि के स्थान पर जा पहुँचे। वे दोनों ऋषिकुमार पिछले कई दिन से रामकथा का गान कर रहे हैं। आज शत्रुघ्न ने महर्षि से उनको प्रभु राम के पास जाकर गान करने का अनुरोध किया। महर्षि मुस्का दिये और उन्होंने अनुमति प्रदान कर दी। ऋषिकुमारों को साथ लेकर शत्रुघ्न हवा पर चलते हुए प्रभु के शिविर में जा पहुँचे। वहाँ पर कई अन्य व्यक्ति उपस्थित हैं। उन दोनों कुमारों को देखते ही प्रभु के हृदय में उल्लास उमड़ पड़ा। उन्होंने आसन से उठ कर दोनों के सिरों पर प्रेम और आशीर्वाद का हाथ फेरा और अपने निकट ही बैठा लिया।

राम कथा का गान प्रारम्भ हुआ। कितना समय बीता बताना कठिन है। क्योंकि जब ऋषिकुमार रुके तो उपस्थित समुदाय के नेत्र गीले थे और राम की आँखों में भी प्रेमाश्रु स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहे थे। कथा वहाँ शेष हुई जहाँ महारानी सीता तपोवन को प्रस्थान कर गईं। राम ने एक गम्भीर श्वास लेकर कहा——

"ऋषिकुमारो! यह कथा आपने किससे ग्रहण की है?" कुछ रुक कर——"संभवतः महर्षि वाल्मीकि से ही न?"

ऋषिकुमार——"हां, महाराज! ऋषिराज ने ही इस कथा की रचना करके हमें बालपन से सिखाई है। क्या यह आपको रुचिकर लगी?"

राम——"रुचिकर! आपका एक-एक शब्द हमारे हृदय में अंकित हो गया है।" और अजाने उनका हाथ ग्रीवा में पड़ी मुक्ता-मालाओं पर जा पड़ा और दो मालायें उन्होंने निकालकर एक-एक दोनों कुमारों के गले की ओर बढ़ाई तो दोनों ही उठ कर सामने खड़े हो गये। राम के वात्सल्य को, जो अबाध रूप से पहर भर से हृदय से उछल कर गले तक आ पहुँचा था, हठात् धक्का-सा लगा। दो पल तक वे बोल भी न पाये। फिर कहा—— "ऋषिकुमार! आपने हमारा स्नेहोपहार अस्वीकार कर दिया, क्यों? क्या महर्षि का यही आदेश है?"

ऋषिकुमार अभी किशोर हैं, वे ऋषिराज के आदेश की बात सुन कर जिह्वा से मना करते रहे, पर मुख पर आये भावों ने उनकी चुगली

कर दी। राम ने कहा—"यह ठीक है महर्षि ने तपोवन के नियमानुसार आपको भेंट लेने के लिये निषेधात्मक आदेश दिया हो पर यहाँ तपोवन नहीं ?"

कुमार—"महाराज ! हम ऋषिबालक भेंट से परिचित नहीं, फिर आपका आशीर्वाद हमें किस भेंट से कम है।"

कुछ ठहर कर राम बोले—"हाँ, यह तो कहो कि क्या आप की रामकथा यहीं समाप्त हो गई ? महर्षि ने आगे कथा नहीं कही क्या ?"

कुमार—"रची है, आज्ञा हो तो उसे भी सुना दें।"

राम—(अधीर होकर) "तो रुक क्यों गये। आपकी कथा के अनुसार राम ने परम साध्वी सती सीता को तपोवन भेज दिया फिर उसके जीवन का आधार क्या रहा ?"

और राम के परमधाम के प्रस्थान तक की कथा भी ऋषिकुमारों ने उसी प्रवाह के साथ गा कर सुना दी। कथा के प्रथम भाग का जो प्रभाव न हुआ था वह इसका हुआ। कुछ क्षणों के लिये मृत्यु के समान शान्ति छा गई। राम के दोनों हाथ अकस्मात दोनों ऋषिकुमारों को अपनी ओर खींच लाए।

राम विचलित हुए और शीघ्र ही स्वस्थ हो गये। उन्हें महर्षि के दर्शनों की उत्कट चाह हो गई और स्वयं ही उठ कर चलने को उद्यत हो गये तो शत्रुघ्न ने कहा—"प्रभु ! एक साथ कहाँ चलने की तैयारी कर दी ?"

राम—"सोचता हूँ तनिक ऋषिराज वाल्मीकि के पास हो आऊँ। ऋषिकुमारों की कथा ने एक शंका फिर उत्पन्न कर दी है। सीता के सम्बन्ध में अब तो ऋषिराज से बात करनी ही पड़ेगी।"

शत्रुघ्न—"महारज ! संभवतः ऋषिराज सामयिक में व्यस्त हो गये होंगे। क्या यह अनुमति मुझे मिलेगी कि जाकर देख आऊँ ?"

राम—"अच्छा, यही सही। तुम्ही जाकर ऋषिराज के चरणों में हमारा प्रणाम कहो।"

शत्रुघ्न ऋषिकुमारों सहित महर्षि के स्थान की ओर चले तो राम को लगा कि मानो उनका हृदय ही चला चला जा रहा है। पर वे शान्त रहे।

रात्रि बढ़ निकली और राम अपने शयन-शिविर की ओर लौट आये। कुछ ही देर में शत्रुघ्न ने सूचना दी कि ऋषिराज वाल्मीकि साम-यिक आदि नियमित कार्यों में रत हैं और अच्छा हो कि प्रातःकाल ही उनके दर्शन किये जायँ। पर शत्रुघ्न राम के अन्तर्द्वन्द्व को नहीं पहचानते। राम क्या रात भर सो सकेंगे ?

३४

धरती धरती की गोद में लय

सूर्योदय हुआ ही है कि शत्रुघ्न एवं दो अन्य व्यक्ति महर्षि वाल्मीकि के शिविर के द्वार पर पहुँच गये, किन्तु महर्षि अभी तक प्रातः-कालीन सामयिक से निवृत नहीं हो पाये। अतः राजकुमार शत्रुघ्न प्रतीक्षा कर रहे हैं, पर आकुल हैं। प्रधान से यह सूचना उन्हें मिल चुकी है कि महाराज राम रात भर सो नहीं सके हैं।

शत्रुघ्न अब इस तथ्य से अवगत हैं कि वे दोनों ऋषिकुमार और कोई नहीं प्रभु राम के आत्मज हैं। किन्तु सब कुछ होते हुए भी ऋषि-कुमारों का रुख निरपेक्ष-सा रहा, यह बड़े क्लेश का विषय है। और भी ऊहापोह शत्रुघ्न के मस्तिष्क में हो रही थी कि सामने से ऋषिकुमार आते दिखाई दिये। तुरन्त ही शत्रुघ्न ने उन्हें गले से लगा लिया और महर्षि के सम्बन्ध में पूछा——

"कुमारो! महर्षि के दर्शन कब हो सकेंगे ?" ऋषिकुमार——"अधिक

विलम्ब न होगा, महाराज। हमारे कुछ ही पीछे वे भी नदी से लौट रहे हैं।"

शत्रुघ्न—"कुमार! जानते हो हम तुम एक ही रक्त के हैं?"

कुमार—"मानव मानव सभी एक समान हैं। फिर हमारे सम्बन्ध में तो माता अथवा महर्षि ही व्यवस्था दे सकते हैं।"

शत्रुघ्न—"सत्य में व्यवस्था अपेक्षित है क्या, मेरे कुमारो?"

कुमार—"देखिये, वे महर्षि आ रहे हैं। यह सब गूढ़ बातें उन्हीं से करना अधिक उपयुक्त होगा।"

शत्रुघ्न में वात्सल्य का भाव अति उग्र रूप से जाग्रत हो रहा था, महर्षि के देखते ही उन्हें प्रभु राम का स्मरण हो आया और आगे बढ़कर उन्होंने महर्षि को साष्टांग दंडवत् किया।

महर्षि के चेहरे की मुस्कान से प्रतीत हो रहा था कि वे शत्रुघ्न के आने की प्रत्याशा में ही थे। आशिष वचन कहकर उन्होंने प्रश्नवाचक दृष्टि से जानबझकर ऊपर देखा।

शत्रुघ्न—"ऋषिराज! महाराज राम आपके दर्शनों के अभिलाषी हैं। किस समय आपको शीघ्र ही सुविधा होगी?"

वाल्मीकि—"शत्रुघ्न! हम तो यहाँ आपके अतिथि हैं, अतः हमारा कार्यक्रम तो आपके ही हाथ में है। आप जब चाहें हमें ले चलिए।"

शत्रुघ्न—"नहीं ऋषिराज! आपका जाना उचित नहीं, स्वयं प्रभु-राम ही यहाँ आने को आतुर हैं। जब से ऋषिकुमारों से उन्होंने कथा सुनी है वे एक क्षण को भी विश्राम नहीं कर सके हैं।"

वाल्मीकि—"मैं समझता हूँ राम मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, पर वे दंड अपने आप को देना खूब जानते हैं, दूसरों को दंड देकर क्या कभी शांति उन्होंने पाई है?

शत्रुघ्न—"मैं ऋषिराज के आदेश की प्रतीक्षा में हूँ।"

वाल्मीकि—"तो यह कमंडलु कुटी में रखकर चलने को प्रस्तुत होता हूँ।"

उन्होंने कलात्मक ढंग से बनाई हुई कुटी में प्रवेश किया। अन्दर सीता अभी तक जप-जाप में संलग्न थीं। एक बार मुस्काकर ऋषि ने

उनकी ओर देखा और चौकी पर कमंडलु रख दिया। कुछ ही निमिष में वे बाहर निकल आए।

शत्रुघ्न के साथ-साथ महर्षि राम-शिविर की ओर चल दिये। अब तक ऋषिकुमारों की कथा के सम्बन्ध में समस्त व्यक्तियों को पता चल चुका था और प्रमुख-प्रमुख व्यक्ति रामशिविर की ओर चल पड़े थे।

राम बाहर ही टहल रहे हैं और इधर-उधर राजकुल के व्यक्ति खड़े हुए हैं। महर्षि को देखते ही राम ने प्रणाम किया और आशिष वचनों के बाद निकट की विचार-कक्ष की छोलदारी में सब चल पड़े।

उचित आसनों पर बैठकर राम ने ही पहले कहा—"ऋषिराज! बालकों ने कल सायंकाल दुर्भागी राम की कथा सुनाई। और तभी से राम आपके दर्शनों का अभिलाषी है। जो कुछ भी उस कथा में सुना क्या वह सब सच है? वह तो आपकी कही हुई कथा है न, मुनीश्वर?"

वाल्मीकि—"राजन! वह कथा ठीक ही है। वह तो घटनाओं पर आधारित है।"

राम—"मुनिवर! उसे सुनकर मुझे लगा कि कहीं मैंने कुछ भूल तो नहीं कर दी है?"

वाल्मीकि—"राम कभी भूल नहीं कर सकते, वे मर्यादा पुरुषोत्तम जो हैं। आदर्श राजा प्रजा का पिता होता है। वह भला अपने किसी पुत्र की भावना की क़द्र क्योंकर न करेगा, भले ही वह उसका कितना छोटा ही पुत्र क्यों न हो। राम का राज रूप पूर्ण है। आगे की पीढ़ियाँ उसका नाम लेकर पावन हुआ करेंगी।"

राम—"ऋषिराज! राम के मुँह पर उसके एक रूप की महिमा का इन शब्दों में वर्णन करके आपने हृदय की विह्वलता और बढ़ा दी है। स्पष्ट रूप से ही कहिये न कि पति-राम अपने कर्त्तव्य से च्युत रहा है।"

वाल्मीकि—"महापुरुष के मुँह से ऐसे ही शब्द निकल सकते हैं। पर क्या राजा-राम से पति-राम का संघर्ष अभी शान्त नहीं हुआ?"

राम—"ऋषिराज! मानव जीवन ही एक महान संघर्ष है। फिर मुझ जैसा सामान्य जीव किसी संघर्ष से कैसे बच सकता है।"

वाल्मीकि—"राजन ! इसमें सन्देह नहीं कि साध्वी सीता अपने धर्मपरायण पति की हर इच्छा को पूर्ण करके अपने को धन्य मानती है। उसकी कोई कामना शेष नहीं । और चाहिए ही क्या उसे ?—"

राम—"ऋषिराज ! क्या आपका यह मानना है कि सीता के साथ अन्याय हुआ है ?"

वाल्मीकि—"यह तो मैंने नहीं कहा कि सीता के साथ अन्याय हुआ है ।"

राम—"आप कहिये मुनिवर कि क्या सीता परम पवित्र हैं और उनके साथ व्यवहार के कारण राम लांछित है ?"

वाल्मीकि—"यह ठीक है कि सीता परम पवित्र और महासती है, पर राम के लांछित होने की कल्पना किसी समय इस बूढ़े के मन में नहीं आई ।"

राम—"महाराज ! यदि सीता पवित्र है तो क्या वह एक बार जम्बू द्वीप के इस सम्मानित समुदाय के समक्ष शपथ ले सकती हैं ?"

समस्त उपस्थित जन-समुदाय महाराज राम के इस अप्रत्याशित निर्णय से स्तब्ध रह गया। वाल्मीकि और स्वयं राम भी एक बार सकते की-सी स्थिति में आगये । ऋषि वाल्मीकि को भी यह निर्णय सम्भवतः रुचिकर न लगा पर तीर कमान से निकल चुका था और ऋषिराज एक साथ उठ कर अपनी कुटी की ओर चल दिये ।

कुछ ही देर में न जाने कितने तर्कों के बाद ऋषिराज महासती सीता को लिए वहाँ आ पहुँचे। दोनों के चेहरों पर एक अलौकिक आभा छा रही है। श्वेत परिधानों में सीता एक तपस्विनी के समान लग रही है ।

इतने वर्षों के बाद राम को सम्मुख पा सीता नें नयनों से प्रणाम किया । और एक बार वे विचलित हो गईं ।

निकट पहुँचकर ऋषिराज ने कहा—"राजन ! देवी सीता आना पसन्द नहीं कर रही थी । पर जब मैंने इन्हें बताया कि पति-राम और राजा-राम के बीच संघर्ष चल रहा है और इनकी उपस्थिति अनिवार्य है तो अन्यमनस्क होते हुये भी यह चली आई हैं ।"

राम चुप रहे। उनके विशाल ललाट पर स्वेद बिन्दु चमक निकले।

वाल्मीकि—"पुत्री! राजा राम संभवतः अपने निर्णय को तुम्हारी उपस्थिति में दुहराने में संकोच कर रहे हैं। वे भली-भाँति समझते हैं कि सीता परम पवित्र है, वे यह भी जानते हैं कि हर युग में सीता का अर्थ ही पवित्रता समझा जायगा, पर वे मर्यादा पुरुषोत्तम हैं, वे कौशलेश हैं, इसलिये बेटी एक बार उनकी द्विविधा मिटा दो, शल्य दूर कर दो। तुम साक्षात धरती की अवतार हो। तुम्हे यह लोक पाकर धन्य है, और स्वयं राम भी तुम्हारे अर्धांग बन कर धन्य हैं।"

इस वक्तव्य को सुनकर प्रतिमा के समान सीता के अधर हिले। उन्होंने कहा—"ऋषिराज! अग्नि परीक्षा की आवश्यकता भी पड़ी थी और आज शपथ देने का समय भी आ पहुँचा है। पर मैं यह नहीं समझ पा रही कि आज का यह समय क्योंकर आया? सीता रघुकुल की वधू बनकर गौरवान्वित है। वह अपने पति के कारण ही धन्य है। उसे इससे अधिक और कुछ नहीं चाहिए।"

उत्तेजना के कारण सीता को रुक जाना पड़ा कि तभी ऋषि-कुमारों के रूप में लव-कुश उनके सामने आ गये। नेत्रों में उनके जल भर आया, और फिर गुरुदेव के वाक्य उन्हें स्मरण हो आए। वे बोलीं—

"गुरुदेव! आपने अभी कहा था कि मैं धरती की पुत्री हूँ। वास्तव में क्या मैं मिट्टी ही हूँ? पर आपको अब कुछ भी कहने का कष्ट न करना पड़ेगा। मैं शपथ देने को तैयार हूँ। सुनिये महाराज राम! सुनिये उपस्थित रघुकुल के राजकुमार! आप भी सुनिये ऋषि, मुनि और उपस्थित व्यक्ति! यदि सीता प्रभु राम की अर्धांगिनी है और उस गौरव को उसने मन, वचन और कर्म से प्राप्त किया है तो हे पृथिवी माता! तुझी ने मुझे जन्म दिया तू ही मुझे अनन्त शान्ति की गोद में ले ले।"

भीषण भूकम्प हो निकला और प्रलय का सा दृश्य उपस्थित हो गया। कुछ काल तक काल की छाया छाई रही और जब वातावरण कुछ शाँत हुआ तो परम पावन प्रकृति प्रकृति में लय हो चुकी थी।

३५

काल ऋषि का आगमन

महाराज राम के अश्वमेध-यज्ञ की प्रशंसा सुरलोक में भी की जा रही है। जो देवता उसे देख कर लौटे हैं, वे मुक्तकण्ठ से उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। देवताओं के इस सम्मेलन में जबकि सब के मुखों पर प्रसन्नता की लहर थी, ब्रह्माजी कुछ चिन्तित से दिखाई पड़ रहे थे। चर्चा जब कुछ रुकी तो वे बोले—"देवताओ! आप कदाचित यह न जानते होंगे कि श्रीराम शीघ्र ही यहां आने को हैं। मुझे थोड़ी सी चिन्ता यह हो रही है कि उन्हें यह संकेत कैसे दिया जाय?"

एक देवता—"यह तो प्रसन्नता का कारण होना चाहिये कि राम का मर्त्यलोक में समय शेष हो गया हैं। देव! आप खिन्न क्यों हो रहे हैं?"

ब्रह्मा—"आप का कहना ठीक है, किन्तु यह तो स्वार्थ का दृष्टि-कोण हुआ। यह भी तो सोचिये कि अयोध्या की क्या दशा होगी? स्वयं

राम सीता को खो चुके, अपने दो भाइयों को दूर भेज चुके और अभी तो उन्हें अपने पुत्र लव कुश प्राप्त हुए हैं तो क्या उन्हें यहाँ आना सहज ही लगेगा ?" कुछ ठहर कर—"किन्तु हो भी क्या सकता है ? संसार-चक्र के नियम में व्यतिक्रम नहीं हो सकता । आप में से कोई तैयार है राम से मिलकर यह कहने के लिये ?"

कई सुर—"देव ! यदि ऐसी ही बात है कि राम को यहाँ आने में किसी कारणवश अच्छा न लगेगा तो क्यों न उन्हें और कुछ काल तक वहां रहने दिया जाय ?"

ब्रह्मा—"नहीं देवताओ ! ऐसा नहीं हो सकता । वे अपना शासन-काल समाप्त करके अकालमृत्यु से ग्रसित अपने पिता दशरथ का शेष राज्य-काल का उपभोग भी कर चुके । इसके अतिरिक्त अब जम्बू द्वीप में सर्वत्र शांति है । वहां पर आसुरी वृत्ति समाप्त हो चुकी, यही राम के जन्म लेने का ध्येय था ।"

—"तो फिर ऐसे अप्रिय कर्त्तव्य-पालन के लिये आप जिसे आदेश देंगे चला जायगा ।"

ब्रह्मा—"यही तो विचारणीय बात है कि कौन यह काम अपने सिर पर ले । वास्तव में यह कार्य महाकाल का है । आशा है वह ही यह भार ग्रहण करेंगे ।"

काल ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया ।

× × ×

अयोध्या में यज्ञ समाप्त होने के बाद अभी भी सामान्य स्थिति नही हो पाई । राजकुमार लव और कुश को पिता की आज्ञानुसार शासन का कार्य देखना पड़ रहा है । प्रारम्भ में उन्हें यह रुचिकर न लगा था किन्तु अब वे उसके आदी होते चले जा रहे हैं । लक्ष्मण का सबसे बड़ा काम इन दिनों राम के स्वास्थ्य का ध्यान रखना है । हनुमान को तो प्रभु के पीछे छाया की भांति लगे रहने के अतिरिक्त और कोई काम ही नहीं जान पड़ता है । राम भी राज्य की ओर से कुछ-कुछ आश्वस्त होते जा रहे हैं किन्तु वे अब चारों भाइयों के आठों पुत्रों को द्वीप भर में फैला देना चाहते हैं ।

दोपहर अभी ढल भी न पाया है कि अपाप ने आकर प्रभु को सूचना दी कि कोई ऋषि प्रभु से मिलने को आये हैं। राम ने लक्ष्मण की ओर देखा और दोनों ही द्वार की ओर चल पड़े। वहाँ काल ऋषि खड़े थे। उन्हें देखते ही राम को कुछ-कुछ भान हो गया किन्तु लक्ष्मण को पता न चला कि वे महाकाल हैं। दोनों बन्धुओं ने प्रणाम किया और कक्ष में पदार्पण करते करते ऋषि ने कहा—"राजन ! हम आपसे एकान्त में ही बातचीत करना चाहते हैं।"

राम—"ये मेरे अनुज लक्ष्मण हैं।"

ऋषि—"हम आपसे एकान्त में ही मिलेंगे।"

राम—"जो आज्ञा ऋषिराज ! लक्ष्मण ! ऋषिराज तुम्हारी उपस्थिति भी नहीं चाह रहे।"

लक्ष्मण—"ठीक है प्रभु ! मैं जा रहा हूं।"

ऋषि—"ठहरिए राजकुमार ! ऐसी व्यवस्था कर दीजिये कि जब तक हम और महाराज वार्तालाप करें कोई भी व्यक्ति यहाँ न आए।"

लक्ष्मण के चेहरे पर कुछ सुर्खी आई कि राम बोल पड़े—"ऐसा ही होगा ऋषिराज ! लक्ष्मण तुम स्वयं ही द्वार रक्षक बनो—" बीच ही में ऋषि बोले—"इतना ही नहीं, राजा राम ! यह भी कहो कि यदि कोई व्यक्ति भीतर आ गया तो वह दंडित होगा।"

राम—"यही सही ऋषिराज। लक्ष्मण ! कोई भी व्यक्ति अन्दर प्रवेश न करे। यदि कोई आयेगा तो हमारे हाथों दंडित होगा—"

ऋषिराज—"दंडित ही नहीं, कहिए आप के हाथों उसे समाप्त कर दिया जायगा।"

बात कुछ बिना बात ही बढ़ती जा रही है, यह देखते हुए राम ने ऐसा ही कह दिया। लक्ष्मण द्वार पर आ गये। कुछ ही देर हुई होगी कि दुर्वासा और उनके एक शिष्य वहाँ आ पहुँचे। और भीतर जाने लगे तो लक्ष्मण ने कहा—

"ऋषिराज ! महाराज राम एक आवश्यक मंत्रणा में व्यस्त हैं, अनुचर को आज्ञा कीजिए किस कारण दर्शन देने की कृपा की है ?"

दुर्वासा—"काम है राम से, जो कुछ कहना है उनसे ही कहेंगे। तुम कौन हो बीच में रोकने वाले ? हटो, हमें जाने दो भीतर।"

लक्ष्मण—"ऋषिवर ! मैं आपकी हर सेवा करने के लिये प्रस्तुत हूँ। प्रभु राम ने अन्दर जाने की निषेधाज्ञा दे रखी है।"

दुर्वासा—"राम हमारे लिए कभी कोई आज्ञा नहीं दे सकता। हमें मत रोको, देखो हम शान्त हैं तब तक शान्त हैं।"

लक्ष्मण जानते हैं कि दुर्वासा से अधिक शान्त ऋषि होना सम्भव नहीं पर वे यह भी जानते हैं कि राम के सामने जाकर इनकी सूचना देना अपना प्राणान्त करना है। उन्होंने फिर कहा—"महर्षि ! यदि मैं अन्दर जाऊँगा तो प्रभु की आज्ञा के अनुसार मार डाला जाऊँगा।"

दुर्वासा—"अरे युवक ! हमें ठगने का यत्न न करो। राम कभी ऐसी आज्ञा नहीं दे सकते।"

लक्ष्मण—"मैं आपसे सत्य ही कह रहा हूँ महाराज। यदि आप मेरा प्राणान्त चाहते हैं, तो अभी चला जाता हूँ।"

लक्ष्मण ने ऐसा कह तो दिया लेकिन जाने का कुछ उपक्रम न किया तो क्रोधित हो दुर्वासा बोले—"अगर तुम तुरन्त ही सूचना देने न गए तो हम ऐसा श्राप देंगे जिसमें तुम, तुम्हारा राम, तुम्हारी अयोध्या सब कुछ नष्ट हो जायगा। बोलो ?"

और कुछ निमिषों में ही लक्ष्मण ने निश्चय किया कि उनका खुद बलिदान हो जाना ही ठीक है। राम और अयोध्या के लिए कोई अपशब्द निकलना भी ठीक नहीं। उन्होंने तुरन्त ही ऋषि के पैर पकड़ लिये और कहा—"भगवन ! आप प्रभु राम को श्राप न दीजिये, अनुचर अभी भीतर जा रहा है।" और उनके पैर अन्दर की ओर मुड़ चले।

× × ×

ऋषि काल ने इधर उधर की बातचीत करके अपने आपको तैयार किया कि असली बात कह डालें तभी मुस्कराते हुए राजीवलोचन ने स्वयं ही कहा—"ऋषिवर ! मैं भूल रहा था, पर आपके प्रथम दर्शन से ही मुझे ध्यान हो आया।"

तब महाकाल बोले—"राजन् ! वास्तव में देवलोक अब आपके दर्शनों को आकुल हो रहा है। आप स्वयं ज्ञानी हैं।"

बातें होते होते वे द्वार की ओर मुड़े कि सामने लक्ष्मण—राम का चेहरा एक साथ पीला पड़ गया। वे बोले—

"लक्ष्मण, तुम ! तुम आगये।"

लक्ष्मण—"हाँ प्रभु ! मुझे आना पड़ा। बाहर ऋषि दुर्वासा कुछ समय से खड़े हैं।"

राम—"पर लक्ष्मण·····"

लक्ष्मण—"देव, सब कुछ सोचकर ही भीतर आया हूँ।"

३६

शेष सरयू में शेष हो गये

काल ऋषि को विदा करते समय महाराज राम ने कहा––"ऋषिवर ! लक्ष्मण भीतर चले आये । इनका कहना है कि यह सब कुछ सोच कर ही आये हैं, अब आपके आदेश पालन में विलम्ब होने का प्रश्न ही नहीं रहता ।"

काल ऋषि ने इस बात का कोई उत्तर न दिया । वे एक मलिन मुस्कान के साथ आशिष वचन कहते चले गये । अब राम महर्षि दुर्वासा के निकट पहुँचे और उन्हें झुक कर प्रणाम किया ।

दुर्वासा––"राम ! मालूम है तुम्हें हमें यहाँ खड़े-खड़े कितना समय हो गया । ये तुम्हारे अनुज जो द्वारपाल बने खड़े थे न जाने क्या-क्या कहते रहे हैं । तुम जानते हो, वैसे हमारा स्वभाव शान्त है, किन्तु यदि क्रोध आ गया तो ब्रह्मा भी उससे नहीं बच सकते ।"

राम—"बड़ा खेद है मुझे आपको मेरे कारण कष्ट हुआ, क्षमाप्रार्थी हूँ उसके लिए।"

दुर्वासा—"अरे, तुम्हारे कारण कौन कहता है, यह तो इनके कारण हुआ है।"

राम—"ऋषिराज ! मैंने ही इनसे कह दिया था कि कोई व्यक्ति अन्दर न आये क्योंकि अभी-अभी जो ऋषि गये हैं वे एकान्त में ही बातचीत करना चाहते थे।"

दुर्वासा—"तो क्या तुम्हारी निषेधाज्ञा हमारे लिए भी थी ?"

राम—"नहीं, ऋषिवर ! आप क्रोधित न हों, भला आपके लिए राम कोई आज्ञा दे सकता है, वह तो आपका अनुचर है। आज्ञा कीजिये देव !"

इन मधुर वाक्यों से दुर्वासा शान्त हो गये। उन्होंने कहा—"हमने इन पिछले १२ वर्षों में घोर तपस्या की है। वह पूर्ण हुई। उसके उपलक्ष में हम चाहते हैं कि तुम एक विशाल ब्रह्मभोज का आयोजन करो। जितने भी ज्ञात ब्राह्मण और साधु पुरुष हैं उनको आहार दो।"

राम—"जो आज्ञा ऋषिराज ! इसका प्रबन्ध शीघ्र ही किया जायगा।"

दुर्वासा—"किया जायगा ? तो क्या अभी कुछ समय लगेगा ? हमारा कहना है कि अविलम्ब आयोजन सम्पन्न किया जाय।"

राम—"हाँ, देव ! ऐसा ही होगा। मैं तुरन्त ही समस्त राज्य कर्मचारियों को उसकी व्यवस्था में लगाये दे रहा हूँ।"

दुर्वासा को इससे सन्तोष हुआ।

राम ने शीघ्र ही आठों मन्त्रियों को आदेश दे दिया कि ऋषि दुर्वासा की इच्छानुसार तुरन्त ही विशाल आयोजन का प्रबन्ध किया जाय। बड़े आयोजन की आदत राज्य कर्मचारियों को प्रभु के अश्वमेध-यज्ञ के समय से ही थी, अतः इसमें कुछ भी विलम्ब न हुआ।

एक बार फिर जम्बू-द्वीप के इस खंड में एक धार्मिक आयोजन की

चर्चा सर्वत्र फैल गई। भोजनालय, आतिथ्यालय आदि निर्मित हुए और ऋषि दुर्वासा उस समस्त आयोजन से अति प्रसन्न हुए।

आयोजन शेष हो गया, और सायंकाल को जब मन्त्रियों सहित चारों भाई एकत्र हुए तो लक्ष्मण को देखते ही राम को अपना आदेश याद हो आया और एक साथ सफल आयोजन का उल्लास उनके चेहरे से अन्तर्ध्यान हो गया।

लक्ष्मण के मन से तो वह आदेश एक क्षण के लिए भी दूर नहीं हुआ है। वे जानते हैं कि प्रभु को उस आदेश का पालन कितना कठोर होगा। उन्होंने खड़े होकर कहा—"प्रभु ! अब समय आ गया है कि ऋषि दुर्वासा के आने से पूर्व जो आदेश आपने दिया था उसे पूर्ण कर दिया जाय।"

राम चुप हैं। जानकी को तपोवन भेजते समय वे जितने स्वस्थ और बलशाली थे, आज वह स्फूर्ति कुछ मन्द पड़ गई है। मगर फिर भी मर्यादा का पालन हर मूल्य पर किया ही जायगा। प्रधानामात्य सुमंत्र को अभी तक उस दुर्घटना का ज्ञान न था। इस थोड़े से वार्तालाप और वातावरण की गम्भीरता से वे यह समझ गये कि कुछ अति अप्रिय काण्ड होने वाला है। उन्होंने पूछा—"महाराज ! राजकुमार सौमित्र किस आदेश की ओर इंगित कर रहे हैं ?"

राम ने ही उत्तर दिया—"मंत्रिवर ! राम को आज वह घटना आपको बतानी ही पड़ेगी। एक ऋषि हम से मिलने आये थे। वे एकांत में ही बात करना चाहते थे। आग्रहपूर्वक उन्होंने यह स्वीकार करा लिया कि जो व्यक्ति भी वार्तालाप के बीच वहाँ आ जायगा उसे हमारे हाथों समाप्त होना पड़ेगा। लक्ष्मण स्वयं द्वार पर नियुक्त थे। अकस्मात् ऋषि दुर्वासा आ गये और उन्होंने अवश्य किसी ऐसे श्राप की बात कही कि लक्ष्मण स्वयं...भीतर आने......को मजबूर हो गये।"

और दीर्घ श्वास लेकर राम ने फिर कहना प्रारम्भ किया—"अभी अभी उसी दुर्घटना का उल्लेख सौमित्र ने किया है।" वे फिर चुप हो गये। और समस्त उपस्थित जन भी कुछ न कह सके।

राम कुछ क्षणों में ही फिर बोले—"मंत्रिश्रेष्ठ ! अब वह समय आ

गया जब अगली पीढ़ी को राज संभाल लेना चाहिये । हम सबों को समय भी तो बहुत हो गया ।"

सुमंत्र—"महाराज ! महारानी सीता सदैव के लिए चली गई, राजकुमारों को अयोध्या से दूर भेज दिया गया और आज लक्ष्मण के सम्बन्ध में भी विचार करने का अवसर आ पहुँचा । पर मर्यादा पुरुषोत्तम के लिए 'हम सब' का प्रयोग करके विचलित होने का समय आ गया हो, ऐसा सुमंत्र मान कर भी नहीं मानना चाहता ।"

लक्ष्मण का साहस सीधे राम को सम्बोधन करने का न हुआ । वे बोले—"मंत्रिवर ! आप प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद पिताजी के समय से हम भाइयों के परामर्शदाता रहे हैं । लक्ष्मण को ध्यान है ऐसे ही एक बार माता सीता के मामले में अनुचर ने प्रभु से परामर्श करने की बात कही थी किन्तु उस समय वह अवसर नहीं आया । आज मैं यह कैसे सहन करूँगा कि मेरे कारण कुछ अन्यथा हो जाय । महाप्रभु ! लक्ष्मण आदेश उल्लंघन का अपराधी है और वह दण्ड के लिये प्रस्तुत है ।"

समस्त सभा विचलित हो गई । राम के एक दीर्घ श्वास का वेग हुआ पर वे मौन रहे ।

लक्ष्मण—"यदि लक्ष्मण में कुल का मान थोड़ा-सा भी होगा तो वह इन श्रीकरों से ही मुक्ति प्राप्त करना सर्वश्रेष्ठ मानेगा । देर का अवसर अब नहीं है, प्रभो ! "

सुमंत्र चुप है किन्तु उनका मस्तिष्क निरन्तर कार्य कर रहा है । वे राम के दुर्बल स्वास्थ्य को लक्ष्य करके लक्ष्मण की प्रार्थना के सफल होने की कामना नहीं कर रहे, कि राम बोल पड़े—"मंत्रिवर ! हमने निर्णय कर लिया—" राम के अप्रत्याशित निर्णयों की पृष्ठभूमि में सुमंत्र को किसी भारी अनिष्ट का भान हो निकला । और वे एक साथ चिल्ला उठे—"महाराज ! सुमंत्र ने अपने दीर्घ मन्त्रिकाल में किसी प्रार्थना की स्वीकृति के लिये आग्रह नहीं किया । उसके सौभाग्य से कभी ऐसा अवसर भी नहीं आया, किन्तु आज वह एक विनम्र निवेदन करने का अभिलाषी है । क्या उसे कह डालने की आज्ञा है ?"

राम—"कहिए मन्त्रिवर ?"

सुमंत्र—"धर्माचार में उल्लेख है कि यदि आप किसी को समाप्त करना चाहते हैं तो उसके निर्वासन से भी काम चल सकता है। क्या उस नियम का पालन राजकुमार लक्ष्मण के सम्बन्ध में नहीं किया जा सकता ?"

राम—"किया जा सकता क्यों मन्त्रिवर ! यदि आपका कहना हो कि किया जाना चाहिए तब एक बात है।"

सुमंत्र—"महाराज ने यह आदेश दिया था कि जो भी एकांत वार्ता के समय आयेगा वह समाप्त कर दिया जायगा, तो अपराधी को निर्वासित करके समाप्त कर देने का आदेश दे दिया जाय।"

राम ने कुछ विचार किया और कहा—"मन्त्रिवर ! दुर्भागी राम के लिये दोनों स्थितियाँ एक ही समान हैं। आपकी यही इच्छा है तो यही सही।"

और लक्ष्मण ने नियमित आदेश सुनने की प्रतीक्षा नहीं की। वे जानते हैं कि वह आदेश निकल तो आयगा लेकिन जर्जर भवन को खंडहर करके ही। अतः वे उठे और उन्होंने प्रभु की चरण धूलि मस्तक पर धारण की। तभी उन्होंने प्रभु कें हाथों का अनुभव किया और वे विशाल वक्ष पर लग गये। इस बार नेत्रों ने वर्षा नहीं की।

और तभी अयोध्यावासी सौमित्र को सरयू तट पर विदा करने एकत्र हुए जहाँ शेष सरयू में शेष हो गये।

३७

राम के परमधाम को प्रस्थान की तैयारी

लक्ष्मण चले गये और अयोध्या पर एक अपूर्व विषाद का वातावरण छा रहा है। प्रधान और अपाप महाराज राम के विचार-कक्ष के बाहर खड़े हैं और उनके चेहरों पर चिंता की रेखायें उभरी हुई हैं। धीरे-धीरे वे आपस में कुछ बातचीत कर रहे हैं।

प्रधान––"आर्य ! महाप्रभु ने, जब से राजकुमार लक्ष्मण गये हैं एक क्षण के लिये विश्राम नहीं किया है और न उन्होंने भोजन ही किया। उनके निर्बल शरीर के लिये यह अतिरिक्त तपस्या बड़ी कठोर है। आप कुछ निवेदन नहीं कर सकते क्या ?"

अपाप––"सौम्य ! मैं स्वयं निरन्तर इसी चिंता में व्यस्त हूँ। क्या किया जाय कुछ समझ में नहीं आ रहा। क्या प्रभु ने आज प्रातःकाल भी दुग्ध-पान नहीं किया ?"

प्रधान––"आज प्रातः अरे भाई उन्होंने तो राजकुमार के जाने के

बाद से किसी खाद्य अथवा पेय पदार्थ के दर्शन भी नहीं किये । बताओ तो अब क्या किया जाय ?"

अपाप—"क्यों न हम लोग राजवैद्य के निकट चलें ? क्या विचार है आप का ?"

प्रधान—"उचित ही है । किंतु प्रभु रुष्ट तो न हो जायेंगे ?"

अपाप—"नहीं मित्र ! इस ढंग से राजवैद्य को बुलाया जाय कि प्रभु अन्यथा न समझें ।"

दोनों ही राजवैद्य की ओर चल दिये । समस्त स्थिति उन्हें बता दी गई और निवेदन कर दिया गया कि वे शीघ्र ही प्रभु के दर्शनों को जावें और उन्हें भोजन कराने का परामर्श दें। राजवैद्य बड़े विचार में पड़ गये । बोले—"आप दोनों की भावना ईर्ष्या योग्य है । यहाँ आगमन के लिये मैं आभारी हूँ । पर आयुर्वेद-आचार के नियमानुसार बिना बुलाये हमारा जाना न शुभ ही है और न उचित ही ।"

राजवैद्य की इस बात से दोनों मौन रह गये पर अपाप को कुछ सूझ पड़ा और वे बोले—"वैद्यवर ! सदैव ही तो कोई न कोई अनुचर ही आप की सेवा में बुलाने के लिये आता है, स्वयं महाप्रभु ने कभी कष्ट किया हो ऐसा ज्ञान नहीं । फिर इस बार तो दो सेवक उपस्थित हैं ।"

राजवैद्य—"आर्य ! यह भी शुभ नहीं कि वैद्य को बुलाने के लिये दो व्यक्ति आयें । अतः आप दोनों अभी जाइये और मुझे बुलाने के लिये केवल एक का आना उचित होगा ।"

बात ठीक ही थी । दोनों लौट पड़े और शीघ्र ही अकेले प्रधान पुनः उपस्थित हुए । उन्होंने नियमानुसार श्रीफल और पुष्प भेंट किये और प्रभु को देखने के लिये निवेदन किया ।

राजवैद्य जल्दी ही महाराज राम के विचार-कक्ष के सामने पहुँचे और प्रधान तुरन्त ही अन्दर गये और निवेदन किया—"महाप्रभु ! राजवैद्य द्वार पर प्रतीक्षा में हैं ।"

राम—"राजवैद्य ? इस समय उन्होंने कैसे कष्ट किया ? उन्हें सादर भीतर लिवा लाओ । प्रधान ! तुम इस समय कैसे आये ? प्रतिहारी कहाँ है ?" इन प्रश्नों का उत्तर देने का प्रधान में साहस नहीं । वे आज्ञापाल-

नार्थ द्वार की ओर बढ़े और राजवैद्य को लिवा लाये।

राम––"पधारिये वैद्यवर !"

राजवैद्य––"यह ज्ञात करके महाराज का स्वास्थ्य ठीक नहीं, मैं चला आया।"

राम––"वैद्यवर ! राम का स्वास्थ्य तो ठीक है। कदाचित प्रधान ने अपनी उत्सुकतावश आपको कष्ट दे दिया है। बैठिये वैद्यराज।"

राजवैद्य––"महाराज का स्वास्थ्य कितने समय से निर्बल चला आ रहा है और यह ज्ञात करके मैंने यहाँ आना अपना कर्त्तव्य माना कि राजकुमार लक्ष्मण के जाने के बाद से महाराज ने कुछ भी खाद्य अथवा पेय आहार नहीं लिया है।"

राम––"आप पधारे हैं, यह तो अच्छा ही है। पर प्रधान की बातों पर मत जाइये। उन्हें राम के बारे में अतिरिक्त चिंता बनी रहती है।"

राजवैद्य––"नहीं महाराज ! धर्माचरण के लिये शरीर का स्वस्थ रखना परम कर्त्तव्य है। क्या मैं पाकशाला में किसी हल्के पथ्य के लिये कह दूँ ?"

राम––"वैद्यवर ! आपने कृपा की उसके लिये आभारी हूँ। आप और अधिक कष्ट न करें। हम स्वयं प्रधान को बुला रहे हैं।"

राजवैद्य––"तो फिर मुझे आज्ञा है महाराज।" और न चाहते हुए भी राजवैद्य को खाली हाथ ही लौटना पड़ा। प्रधान एक निरपराध अपराधी की भाँति राम के सम्मुख नीची गर्दन किये खड़े हैं।

राम––"प्रधान ! अब तुम्हारी चिंता इतनी बढ़ गई कि राजवैद्य तक को कष्ट करना पड़ा। अभी कुछ देर पहले अपाप और तुम क्या यही मंत्रणा यहाँ द्वार के बाहर कर रहे थे ?"

प्रश्न वास्तव में उत्तर मांगने के लिये किया भी न गया था और यदि होता भी तो प्रधान निरुत्तर ही रहते।

राम––"अच्छा, यह तो कहो प्रधान कि राम ने तो भोजन किया या न किया पर तुम स्वयं कितनी बार और क्या-क्या भोजन कर चुके ?"

प्रधान––"महाप्रभु ! दास––" राम बीच ही में बोल पड़े––"हम जानते हैं कि तुम इसका उत्तर न दे पाओगे। अच्छा अब यह करो कि

अपने मित्र अपाप को तुरन्त बुला लो ।"

प्रधान—"दास अभी आर्य अपाप को बुला लाता है किन्तु राजवैद्य के परामर्श के सम्बन्ध में क्या आदेश है ?"

राम शोकाकुल होते हुए भी मुस्का गये । बोले—"प्रधान ! राम को गृहिणी का अभाव तुमने कभी अनुभव नहीं होने दिया । पर भाई पहले अपाप को तो बुला लो, अभी एक आवश्यक बात कहनी है । भोजन की बात तो फिर भी हो सकती है ।"

प्रधान भारी पैरों से लौट पड़े । यह कोई प्रथम अवसर नहीं कि वह इस प्रकार निराश लौटे हों । अपाप के पास जाकर उन्होंने सब कुछ कह डाला । पर फिर भी दोनों को संतोष नहीं ।

अपाप आदेशानुसार प्रधान के साथ चल दिये । राम अब भी विचारकक्ष में इधर-उधर टहल रहे हैं । अपाप ने अन्दर प्रवेश कर प्रणाम किया ।

राम—"अपाप ! आशा है प्रधान से आपकी मंत्रणा पूर्ण हो चुकी होगी । अब एक कार्य शीघ्र करो ।"

अपाप—"जो आज्ञा देव ।"

राम—"सुनो तो सही । शीघ्र ही मंत्रिवर सुमंत्र से कहो कि वे किसी अश्वारोही को मधुपुरी भेज दें जो सौमित्र को—"और इतना कहते-कहते उन्हें लक्ष्मण का ध्यान हो आया । पर फिर सँभल कर वे बोले—"सौमित्र-शत्रुघ्न को यहाँ शीघ्र ही आने के लिये कह दें ।"

अपाप—"जो आज्ञा महाप्रभु ।"

अपाप को यह सोचने में देर न लगी कि कोई अति महत्वपूर्ण निर्णय का समय आ पहुँचा है । राजकुमार लक्ष्मण के जाने से पूर्व राजकुमार शत्रुघ्न को नहीं बुलाया गया था पर आज उन्हें शीघ्र बुलाने का आदेश दिया गया है । वह प्रणाम करते बाहर निकल आये ।

३८

श्रीराम परमधाम को

मधुपुरी से राजकुमार शत्रुघ्न आ पहुँचे और आदेशानुसार उनके दोनों पुत्र भी आ गये। राजकुमार भरत तथा उनके दोनों पुत्र भी अयोध्या में उपस्थित हैं। राजकुमार लक्ष्मण के दोनों पुत्र और लव कुश भी विद्यमान हैं। महाराज राम का दरबार लगा है। आठों मंत्री और परामर्शदाताओं के अतिरिक्त मुख्य-मुख्य अयोध्यावासी भी उपस्थित हैं।

एक विचित्र उत्साह और आनन्द का वातावरण उत्पन्न हो रहा है। हर किसी की जिह्वा पर आज यही चर्चा है कि महाराज राम आज अभूतपूर्व और अति महत्वपूर्ण घोषणा कर रहे हैं। शंख और तूर्य के नाद ने प्रकट कर दिया कि महाराज राम का पदार्पण होने जा रहा है।

राम के चेहरे पर उल्लास और प्रफुल्लता की रेखा फैली हुई है। उन्होंने आते ही कहा—"बंधुओ! आज अति प्रसन्नता का अवसर है कि

हम आपके समक्ष एक अति आवश्यक घोषणा कर रहे हैं। आप सबके सहयोग से अयोध्या में ही नहीं वरन समस्त जम्बू द्वीप में धार्मिक शासन विद्यमान है। किसी प्रजाजन को किसी प्रकार का कोई कष्ट नहीं। हर व्यक्ति अपनी इच्छानुसार धार्मिक क्रियायें करने को स्वतन्त्र है। और इस स्वतन्त्रता का उपभोग सानन्द किया जा रहा है। देश में धन-धान्य का अभाव नहीं। वर्षा समय पर होती है। हर व्यक्ति अपने कर्त्तव्य को समझता है और उसका पालन करता है।

"ऐसे राज्य में रह कर हर कोई संतुष्ट है। पर मर्यादा हर वस्तु की होती है। हमने काल के नियमानुसार अपना कर्त्तव्य पालन किया। आप लोगों की सेवा में कितने वर्ष व्यतीत हो गये। अब वह समय आ पहुँचा है जब हमें यहाँ से प्रस्थान करना चाहिये।

"अनुज लक्ष्मण और सती सीता उस लोक में हमारी प्रतीक्षा कर रहे होंगे। सौभाग्य से अगली पीढ़ी ने शासन-कार्य में प्रवीणता प्राप्त कर ली है और हमें भविष्य की चिंता किंचित मात्र भी नहीं है। अतः हमने निर्णय किया है कि कल प्रभात में सूर्योदय से पूर्व उस धाम को प्रस्थान करेंगे जहाँ पहुँचने की कामना हर मानस में होती है।

"वास्तव में इस सुअवसर के स्मरण कराने के लिये महर्षि काल को कष्ट करना पड़ा और उसी संदर्भ में अनुज लक्ष्मण हमसे पूर्व ही चले गये।"

बोलते बोलते उनके नेत्र भरत और शत्रुघ्न की ओर जा लगे तो उन्होंने देखा कि उनके मुख की प्रसन्न मुद्रा में परिवर्तन हो गया है तो उन्होंने कहा—"यह सुअवसर हर व्यक्ति के जीवन में आए इसकी कामना ऋषि-महर्षि भी करते हैं। किन्तु फिर भी राजकुमार भरत और शत्रुघ्न इसका स्वागत नहीं कर रहे जान पड़ते ?"

भरत और शत्रुघ्न—"प्रभो ! हम इस सुअवसर का स्वागत न करेंगे ऐसी तो कल्पना भी हम नहीं कर सकते किन्तु हमें एक निवेदन करना है।"

राम—"कह दीजिये।"

दोनों—"हमारा आयुकाल भी समाप्तप्राय है। क्या हमें प्रभु

पक्षियों का कलरव यह बता रहा है कि अयोध्या के नये शासकों को नगर को फिर बसाना पड़ेगा ।"

इसके तुरन्त बाद सौभाग्यवती और सौभाग्यशालिनी कुल-वधुओं ने महाराज राम सहित समस्त उपस्थित समुदाय के मस्तक पर टीका किया। शंख-झालर और तूर्य ध्वनि के बीच सब लोग प्रभु राम के पीछे सरयू की ओर चल पड़े ।